ISSN : 0975-8011

बुन्देली बसंत



2011

ISSN - 0975- 8011

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली बसन्त

अंक १२, १७ फरवरी २०११

।। श्री ।।

विमोचित प्रति

❋

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५१४१४५५, ०९९८१५०३०५५

❋

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

मोबाइल : ०९४२५४७४९६२, ०९७५५४९८९८९

e-mail : bsparmar1962@gmail.com

❋

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५८७९७७३

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषयाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९४२५१४२०६६

❋

सम्पादन सहयोग

डॉ. राजेन्द्र सिंह

छतरपुर (म.प्र.)

मोबाइल : ०९८७१७५१७३६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

महल परिसर, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  रामकुमार सोनी, गोवर्धन टॉकीज के पास,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : ०६८६३१५२६१०
  तुम हमें शावक दो, हम तुम्हें टाइगर देंगे।
  (चित्रकार श्री रामकुमार सोनी की मंशा है कि यदि बाघों को बचाना है तो सरकार को देश के संभ्रान्त व वन्य जीव प्रमियों को बाघ के शावक पालने को देना चाहिए, जिससे उन्हें संरक्षित व संवर्धित किया जा सके।)

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, जिला सहकारी संघ मुद्रणालय, छतरपुर
  ☎ : ०६७१३३४३३१३

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

अनुक्रमणिका

भाषा, साहित्य एवं आलोचना

बुन्देली गद्य

परम्परा और संस्कृति

इतिहास और पुरातत्व

बुन्देली काव्य

अन्य

संपादकीय -

बुन्देली के क्षेत्र में विगत एक वर्ष से मानकीकरण को लेकर बहुत सी कार्यशालाओं और संगोष्ठियों का आयोजन किया गया है, जिसमें विद्वान् इकट्ठे होते हैं, अपने-अपने परचे पढ़ते हैं और चलते बनते हैं। कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आया है। इस संदर्भ में मेरा मानना है कि मानकीकरण की चिन्ता छोड़कर हमें रचनात्मकता की ओर सक्रिय होना जरूरी है। मानकीकरण में बुन्देलखण्ड की अति क्षेत्रीय भिन्नता आड़े आ रही है। कुछ विद्वान् ओरछा क्षेत्र की बुन्देली को मानक मानने की बात करते हैं, तो कुछ सागर क्षेत्र की बुन्देली को। कुछ छतरपुर के आसपास बोली जाने वाली खटोला को। जबकि बुन्देली के इन छोटे-छोटे क्षेत्रों में कुछ न कुछ विशिष्टताएँ हैं। सर्वस्वीकृत व सर्वमान्य भाषा स्वरूप सतत् रचनाकर्म और लोकग्राह्यता से बनेगा। मैं सोचता हूँ कि मानक स्वरूप न बनने के पीछे आड़े आ रही है, अति संकुचित मानसिकता। हमें रचना लिखते समय यह बात अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि अति सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के अर्थ को पाद टिप्पणी में दिया जाए जिससे उस शब्द को व्यापक क्षेत्र में जाना-समझा जा सके। सतत् सतर्क व परिमार्जित रचनाशीलता से मानक बुन्देली का-स्वरूप उभरेगा। इस सन्दर्भ में श्री गुणसागर सत्यार्थी की इस बात से सहमत हुआ जा सकता है कि ईसुरी को मानक का आधार मानकर हम उनकी व्यापक रचना दृष्टि को अपनायें। बुन्देली भाषाविद् डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी ने मानकीकरण की दिशा में बढ़ाने हेतु कुछ व्याकरणिक सुझाव प्रस्तुत किए हैं, जो विचारणीय हैं। इन सुझावों को दृष्टिगत रखकर यदि हम रचनाओं का सृजन करें, तो बेहतर परिणाम सामने आ सकते हैं। वैसे भाषा का संस्कार लोक व्यवहार से तय होता है, उसे जबरदस्ती लागू नहीं किया जा सकता, हम उसे परिमार्जित कर स्वयं अपना सकते हैं, जिससे लोक प्रेरित हो सकता है।

बुन्देली की रचना यात्रा में विगत कुछ सालों से विधागत वैविध्य आया है, जो स्वागत योग्य व संतोषप्रद है। आज बुन्देली में ललित निबंध, एकांकी, नाटक, प्रहसन, व्यंग्य, कथाएँ तथा संस्मरण लिखे जा रहे हैं। इनके कथ्य भी समसामयिक व लोकोपयोगी हैं। काव्य में भी वस्तुगत विविधता आई है। आज बुन्देली कविता में पर्यावरणीय चिन्ता, भ्रष्टाचार की विषबेल का वर्णन, नारियों की दुर्दशा, राजनीतिक भाई भतीजावाद, दहेज तथा आर्थिक विषमता के स्वर मुखरित हो रहे हैं। इसके साथ प्रसन्नता के क्षण भी दृष्टव्य हैं। शिल्प की दृष्टि से छांदिक परम्परा का अनुकरण जबर्दस्त दिखाई देता है, नई जमीन तोड़ने की आवश्यकता है। बुन्देली में ग़ज़ल तथा हाइकू तो आ रहे हैं, लेकिन नई तर्ज पर लयबद्ध काव्य की कमी है। आज बुन्देली ने राष्ट्रीय स्तर पर अपनी आवाज बुलन्द की है। प्रसन्नता का विषय है कि साहित्य अकादमी नई दिल्ली ने बुन्देली के दो वरिष्ठ रचनाकारों डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी 'दद्दा' टीकमगढ़ तथा डॉ. रामनारायण शर्मा झांसी को पुरस्कृत किया है।

बुन्देली की सतत् समृद्धता से जहाँ एक ओर इस लोकभाषा को व्यापकता मिलेगी, वहीं हिन्दी भी इसी के साथ विस्तारित हो रही है, क्योंकि हिन्दी को जीवन रस तो लोकभाषाओं से ही प्राप्त होता है। आज हिन्दी व्यापकता की ओर है, और इस व्यापकता में बुन्देली, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, भोजपुरी,

छत्तीसगढ़ी, मालवी, बघेली जैसी अनेक लोकभाषाओं का योगदान है। लोकभाषाओं में ही जीवन के संचित अनुभव वाचिक परम्परा में अवस्थित हैं। जिससे कथ्य ग्रहण कर हिन्दी का संसार गहन व व्यापक हो रहा है। हमें इसी दृष्टि को केन्द्र में रखकर बुन्देली को प्रोत्साहित करना है।

बुन्देलखण्ड की साहित्यिक परम्परा प्राचीन व समृद्ध है। यहाँ गाँव-गाँव में रचनाकार रहे हैं, उन्हें राजाश्रय प्राप्त रहा है। अनेक पाँडुलिपियाँ अभी भी बस्तों में बँधी है, इन्हें बचाने की जरूरत है। इसके लिए हम सबको अपने सम्पर्क क्षेत्र का सर्वेक्षण कर पाँडुलिपियाँ प्राप्त करके उन्हें संरक्षित करना चाहिए। नई पीढ़ी में साहित्य के प्रति रुचि कम हो रही है, इसे प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। नए लेखकों में स्त्रियों की भागीदारी नगण्य है, इसे भी बढ़ाने के लिए हम सबको प्रयास करने चाहिए।

बुन्देली रचनाकारों को पहले प्रकाशन के लिए दिक्कत रहती थी लेकिन अब अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन् सतत् रूप से होने लगा है। बुन्देली पीठ सागर से 'ईसुरी', हटा से 'बुन्देली दर्शन' तथा दमोह से 'बुन्देली अर्चन' नियमित रूप से 'बुन्देली बसन्त' के साथ वर्ष में एक बार प्रकाशित हो रही हैं। इसके साथ छतरपुर से एक त्रैमासिक 'अथाई की बातें' पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ है। इन प्रकाशनों से काफी हद तक सहूलियत हुई है। अब रचनाकारों को नया रचकर अपनी बुन्देली को नई ऊँचाइयाँ देने की आवश्यकता है। इन पत्रिकाओं में पुराना न भेजें। नया सिरजें व भेजें, तो हम सबकी भलाई होगी।

बुन्देली माटी के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सरकारी स्तर पर काफी प्रयास हो रहे हैं। विशेष पैकेज घोषित हो रहे हैं, इनका सदुपयोग हो, इसके लिए हम रचनाकारों की समाज के प्रति यह जवाबदेही है कि इसका सही इस्तेमाल किया जाए। इस अँचल में स्त्रियों की दुर्दशा राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित होती है। बलात्कार तथा दहेज हत्याओं के प्रकरणों में लगातार बढ़ोत्तरी चिन्तनीय है। शिक्षा की कमी से स्त्री-पुरुष लिंगानुपात घट रहा है। यहाँ उड़ीसा व आदिवासी अँचलों से स्त्रियों को लाकर ब्याह रचाया जा रहा है। इस दौर में घटती बालिकाओं की संख्या को रोकने के लिए सामुदायिक प्रयत्नों की आवश्यकता है। आज स्वार्थपरता, संकीर्णता तथा आत्ममुग्धता की प्रवृत्ति अँचल में बढ़ रही है, इसे रोकने हेतु लोक सांस्कृतिक आयोजनों को और विस्तार देने की आवश्यकता है।

इस साल छतरपुर में विश्वविद्यालय स्थापित करने की घोषणा की गई है, जिससे बुन्देली के विकास व शोध की आशा बँधी है। नया विश्वविद्यालय खुलेगा तो शिक्षा के द्वार खुलने के साथ क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप अनुसंधान को बल मिलेगा।

बुन्देली संस्कृति, साहित्य, कलाओं तथा इतिहास के संवर्धन हेतु बुन्देली विकास संस्थान के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्ना राजा' के साथ हटा के श्री पुष्पेन्द्र हजारी जी, टीकमगढ़ के महाराज मधुकरशाह, दमोह, झाँसी, महोबा तथा सागर के बहुत से उत्साही साथी सतत् रूप से संलग्न है। इससे उम्मीद है कि बुन्देली लोक संस्कृति को इस वैश्वीकरण की दौर में हम नई स्फूर्ति व ताजगी से अपनी भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करने में सफल होंगे।

बहादुरसिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की

लुभावनी, नाचती एवं गाती बुंदेली-बसंत की क्या कहना

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित, सुरम्य, लुभावनी, नाचती एवं सुरम्य, लुभावनी, नाचती एवं गाती, ११वीं सोपान पर अग्रसर, बुन्देली विकास संस्थान बसारी (छतरपुर) म.प्र. की प्राण प्रतिष्ठा, १७ अप्रैल २०१० विपुल सामग्री सँजाये, सुदृढ़। सु-संपादन वाली 'बुन्देली-बसन्त' की क्या करुना है? अर्थात् बुन्देली विकासोन्मुखी गहना है। इस फूलती-फलती पत्रिका हेतु अनेकानेक हार्दिक शुभकामनायें। बधाइयाँ। कुछ बुंदेली-मिठास की आपकी खुशी बढ़ाने के लिये इस प्रकार हैं -

'बुन्देली बसन्त' की जै-जै बोले खूबईं चमक रयो है भाल।।
नोनो गेट अप-गा रऔ-नए रऔ ले मस्ती ठुमके की चाल।।
छै खण्डन में भरे-दिखे हैं लेखन कवितन गहरे ताल।।
'सीकर' संपादक जू सिंह की मेहनत रंग लाई है लाल।।

– डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

सीकर भवन, न्यू दतिया पब्लिक स्कूल, ठंडी सड़क, दतिया (म.प्र.)

बुंदेली बसंत अंक ११ मिला। हार्दिक आभार। बुंदेली भाषा, साहित्य, परम्परा और संस्कृति, गद्य, इतिहास और पुरातत्व, एवं काव्य खण्डों के अंतर्गत संग्रहणीय एवं पठनीय सामग्री आपने उपलब्ध करायी है। बुंदेली धरती के विविध राग-रंग एवं वैभव अपने समूचे सौन्दर्य के साथ इन रचनाओं में सहज उपस्थित है। बुंदेलखण्ड अंचल के सभी प्रतिष्ठित रचनाकार इस आयोजन को दिव्य बना रहे हैं, राह और भी महत्वपूर्ण हैं। गुणसागर सत्यार्थी, कांतिकुमार जैन, बरसैंया जी, शरद सिंह के आलेख विशेष पसंद आयो। काव्य एवं गद्य रचनाएँ सभी दिल को छूने वाली है। आपका संपादकीय इस समस्त आयोजन की भूमिकाहै, जनगणना वर्ष में बुन्देलखण्डवासियों से भाषा के कालम में बुंदेली दर्ज कराने का आह्वान प्रेरणादायी है। आपके इस भागीरथी प्रयास की जितनी प्रशंसा की जाये कम होगी। पुनः बधाइयाँ।

– प्रो. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

आपके द्वारा प्रेषित 'बुन्देली बसन्त' प्राप्त हुआ। जिसे पढ़कर बुन्देलखण्ड के लोकजीवन में समाहित हो गया। आप इसके माध्यम से पूरे बुन्देलखण्ड को जागृत व झंकृत करने का काम कर रहे हैं, मेरी ओर से आदरणीय दादा (मुन्नाराजा) को हार्दिक बधाई दें।

– डॉ. सुनील केशव देवधर

शिवाजी नगर, आकाशवाणी पुणें (महा.)

'बुन्देली बसन्त २०१०' प्राप्त हुआ, धन्यवाद। आपके सफल सम्पादन में प्रकाशित 'बुन्देली बसन्त-२०१०' में मुझे बुन्देलखण्ड जनपद की अनेक नव, अविस्मरणीय, चिन्तनीय एवं दिशायुक्त जानकारियाँ प्राप्त हुई। कृति में भाषा, साहित्य एवं आलोचना, बुन्देली परम्परा और संस्कृति, बुन्देली गद्य, बुन्देलखण्ड का इतिहास और पुरातत्व, बुन्देली काव्य तथा अन्य में समस्त जनपद के इतिहास, गद्य, पद्य, संस्कृति, आलेख, भाषा व क्षेत्र की चिन्ता तथा बुन्देली में साहित्य की विभिन्न विधाओं का संकलन व केवल स्तुत्य है, अपितु अन्य जनपदों हेतु अनुकरणीय एवं प्रेरणादायी भी है। आपकी कलम से, विचारों से, बुन्देली जनपद के साहित्य व संस्कृति को बचाने के प्रयासों से तथा बोलियों में लुप्त होते संस्कारों के संकलन के प्रयासों से निःसन्देह अन्य जनपद शिक्षा प्राप्त कर अपनी अपनी बोलियों को बचाने का भगीरथ प्रयास करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

एक सुझाव भी देने का दुःसाहस कर रहा हूँ। मन में लम्बे समय से एकविचार कुलबुला रहा है। जो मूर्तरूप नहीं ले पाया है। अभी कम से कम मध्यप्रदेश की प्रमुख चार जनपदों बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, मालवा व निमाड़ी के अपनी बोलियों को समर्पित कम से कम ११-११ व्यक्तियों का एक महासंघ बने, जिससे प्रदेश की बोलियाँ निकट आकर लोकभाषाओं के संवर्धन, संरक्षण एवं स्थायित्व का संयुक्त कोई अभियान चला सके।

– जगदीश 'जोशीला'

अम्बिकापुरी, गोगावाँ, तह. खरगौन (मध्य निमाड़)

बुंदेली बसंत २०१० के लिए आभारी हूँ, इसके माध्यम से आप बुन्देली संस्कृति के समृद्ध इतिहास भाषा साहित्य तथा संस्कृति से जुड़ी अत्यंत उपयोगी और बहुमूल्य सामग्री को जगजाहिर कर रहे हैं, ऐसे सुधी रचनाकार भी प्रकाशित हो रहे हैं, जो समय के अंधेरे में ओझल हो ये थे। संस्कृति के जितने व्यापक आयाम और अनुभव हो सकते हैं, कल उन सबको इस स्मारिका के बहाने बहुगुणा बना रहे हैं। निश्चय ही इससे बुंदेली की बहुआयामी समृद्ध संपदा को जानने-खोजने का मार्ग प्रशस्त हुआ है, अन्य अंचलों को भी इससे प्रेरणा मिली है, और वे भी सक्रिय हुए हैं।

– डॉ. महेन्द्र भानावत

३५२, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुरा (राज.)

बुंदेली बसंत अंक-११ मिला, धन्यवाद। यह अंक बुन्देली साहित्य, संस्कृति, परम्परा आदि की दृष्टि से बहुत मूल्यवान है। इसे देख-पढ़ कर स्पष्ट होता है कि आपने इतनी विपुल सामग्री को एकत्र करने में कितना परिश्रम किया है। इससे बुन्देली इतिहास और समाज के प्रति आपकी निष्ठा और समर्पण का भाव उच्चतर स्थिति तक पहुँच गया है। आपका सम्पादकीय विचारों से भरा है और वह पाठक का ध्यान आकर्षित करता है। बुन्देलखण्ड के विकास की चिन्ता स्वाभाविक है, क्योंकि स्वराज्य तो हमने इसीलिए लिया था कि देश का प्रत्येक अंचल विकसित हो, शिक्षित हो और अपनी संस्कृति बचा सके। आपने नानाजी देशमुख के

प्रयासों की सराहना की तो ठीक ही की। मेरे प्रति उनका स्नेह था, और मैंने स्वयं चित्रकूट में उनके कार्यों को देखा था। क्या नाना जी के कार्यक्रमों का अन्य गाँवों में विस्तार नहीं हो सकता? यदि हमारी सरकारें ईमानदारी से कार्य करें तो सब कुछ सम्भव है। केन्द्रीय सरकार ने विकास के लिए धनराशि दी है। क्या ऐसी कोई व्यवस्था है जो उसे भ्रष्टाचार से बचा सके? दुर्भाग्य, भ्रष्टाचार की नाली में सारा धन बह जाता है। हर शहर-गाँवों में ऐसी समिति बने जो भ्रष्टाचार पर अंकुश रखे और विकास का ध्यान रखे।

– डॉ. कमल किशोर गोयनका

ए-९८, अशोक विहार, फेज-१, दिल्ली ११००५२

पूरी पत्रिका पढ़ी, इसमें डॉ. दिनेश चन्द्र दुबे की कहानी पढ़ी और मन इसकी मार्मिकता से आन्दोलित हो गया। मैं सम्पादक मण्डल को प्रकाशन हेतु बधाई देती हूँ।

– वीथिका अरविंद, *६, सिविल लाइन, सागर (म.प्र.)*

आपके सुचिन्तित सम्पादकत्व में बुन्देली बसंत ने साहित्यिक पत्रिकाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। पठनीय सामग्री की इतनी विविधता और किसी पत्रिका में उपलब्ध नहीं होती। आलोचनात्मक आलेखों में डॉ. हरिविष्णु अवस्थी, डॉ. रामनारायण शर्मा, पं. गुणसागर सत्यार्थी, और डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी के आलेख भाषा-साहित्य चिन्तन के नये आयाम उद्घाटित करते हैं तो ऐतिहासिक आलेखों में डॉ. लखनलाल खरे और डॉ. के.पी. तिवारी ने मध्यकालीन इतिहास के दो प्रमुख बुन्देली व्यक्तियों के बारे में शोध-पूर्ण सूचनायें प्रस्तुत की हैं। डॉ. तिवारी के आलेख में कवीन्द्र केशव को रीति युग का अन्तिम कवि कहा है (पृ. ११४) क्या यह सही है?

बुन्देली गद्य-खड में आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल और डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन' के ललित निबन्ध और डॉ. दुर्गेश दीक्षित की कहानी की भाषिक संरचना और कथ्य की मौलिकता पढ़ते ही बनती है। अन्य गद्य रचनायें भी ठीक-ठाक हैं। माँ लक्ष्मीव्रत : विधि एवं कथा की लेखिका ने वाक्य-रचना में सावधानी नहीं दिखाई। पृ. ५७ पर वाक्य है 'रानी ने गड़ा खों आग में डारत भई' इसके आगे वाक्य है - रानी के चेरी (दासी) ने गड़ा खों आग में से उठाकें दूध में बुझा कें आँचर के छोड़ में बाँधत भई। दोनों वाक्यों में ने विभक्ति गलत दी गई है। इसी प्रकार दूध, बुझा, बाँधत शब्दों के बुन्देली रूप दिए जाने थे। अन्य रचनाओं में भी रचनाकारों ने तत्वमय या तद्भव शब्दों के बुन्देली भाषा के रूप देने में असावधानी का परिचय दिया है।

इस अंक की सभी कवितायें पढ़कर उनकी साफ-सुथरी कहन की जितनी सराहना की जानी चाहिए, मैं उतनी नहीं कर पा रहा हूँ। उनकी सरस अभिव्यक्ति मन को बाँध लेती है।

आपको, आपके सहयोगी डॉ. के.एल. पटेल और डॉ. हरिसिंह घोष को इस सर्व सुन्दर प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई।

– डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही'

देवीपुरम, शिवपुरी (म.प्र.)

बुन्देली बसन्त २०१० की प्रति मिली, अच्छा लगा। पत्रिका में सुन्दर सामग्री सँजोई गई है। मैंने अपनी कृतियों में बुन्देली साहित्य और संस्कृति की सतर्क वकालत की है। बुन्देली साहित्य और संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितना कि हिमालय का अग्रज विन्ध्याचल पर्वत। यहाँ सतयुग त्रेता, द्वापर के पुराणैतिहासिक अवशेष अब भी अपनी गौरव गाथा बनाये हुये हैं। आपका यह भगीरथी प्रयास एक दिन अवश्य ही सफल होकर मान्यता प्राप्त करेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

– महाकवि श्री अवधेश, *४२५, नई बस्ती, झाँसी (उ.प्र.)*

बुन्देली बसन्त का अंक ११ मिला। कृपया बहुमूल्य अंक भिजवाने के लिए धन्यवाद स्वीकारें। यह प्रकाशन बुंदेली भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की बहुत सेवा कर रहा है। इसके माध्यम से बुंदेली की वह मूल्यवान संपदा उजागर हो रही है, जो यातो वाचिक संपदा के रूप में थी या जनजीवन में व्याप्त थी। आपका यह अनुष्ठान प्रणम्य है, प्रशंसनीय है।

– युगेश शर्मा, *११, सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, चूना भट्टी, भोपाल*

आपके द्वारा प्रेषित बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा करने वाली पत्रिका मुझे उपलब्ध हुयी। यह पत्रिका कई वर्षों से प्रकाशित होने वाली एक ऐसी पत्रिका है जो बुन्देलखण्ड की संस्कृति की रक्षा करती है। यहाँ की लोक-परम्परायें, रीति-रिवाजों तथा उच्चादर्शों को संरक्षण प्रदान करती है।

– राधाकृष्ण बुन्देली,

विजय पुस्तक भण्डार, महेश्वरी देवी रोड, बाँदा (उ.प्र.)

आदरणीय, आपके श्रम और बुन्देली के प्रति स्नेह-श्रद्धा से रची-पगी 'बुन्देली बसन्त' से पहला और सुखद परिचय हुआ। पूरी पत्रिका आद्योपांत संग्रहणीय सामग्री के साथ विस्मृत करती हुई सामने आई कि बुन्देली धरती से इतनी सशक्त-समृद्ध सामग्री समाहित किये हुए पत्रिका से हमारा पूर्व में परिचय क्यों नहीं हो सका? पं. गुणसागर 'सत्यार्थी' तथा डॉ. जगदीश प्रसाद रावत का बुन्देली भाषा के मानक स्वरूप पर चर्चा करना अच्छा लगा। यहाँ एक बात और है कि हम सभी को (केवल कुछ लेखकों और कवियों को ही नहीं।) बुन्देली भाषा के प्रति अपना प्रेम बढ़ाना ही होगा। अब देखिए हम और आप दोनों लोग बुन्देली भाषा जानने-समझने-बोलने में किसी तरह की कठिनाई महसूस नहीं करते फिर भी हमारा यह पत्राचार खड़ी बोली में ही हो रहा है। आपकी सम्पादकीय भी खड़ी बोली में हैं, पत्रिका के लेख भी खड़ी बोली में हैं। अब हम सभी बुन्देली भाषा को, बोली को अपने आपसे दूर करते जा रहे हैं। हमें इसके विकास के लिए खुद को और युवा पीढ़ी को जोड़ना ही होगा। 'बुन्देली गद्य' का स्तंभ और 'बुन्देली काव्य' ने इस भाषा की मध ुरता और समृद्ध शब्दावली से परिचय तो करवाया ही, शब्द सौन्दर्य और शब्द भण्डार में वृद्धि भी की। 'इतिहास और पुरातत्व' स्तम्भ का अपना विशेष सांस्कृतिक महत्व दृष्टिगोचर हुआ।

– डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर

११०, रामनगर, सत्कार के पास, उरई जिला जालौन (म.प्र.)

हरौ निबौला चौथे पहरें झोंकन मद् बगराबै

- आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

रात को चौथो पहर है, नीम को जौ बिरछा अपनी मीठी मद भरी सुगन्ध के झोंका पै झोंका झौंके जारऔ। जा इमरत रस से भरी बैहर में सबइ डूब रए हैं, ऐसी सोने सी नोंनी बेरा में, नीम का असल हितू कौआ व्याकुल है, बेचैंन है। का कौनऊँ आफत आसमानी खबर सें खबरदार कर रऔ है? का कौनऊँ आपदा आबे बारी है?...

जौ घर के दुआरें बिसाल नीम कौ बिरछा, हमाए दुःखन-सुखन कौ संगी साथी है। ई के नीचें हम चैन में सोये हैं, बचपने में रोये हैं और फिर रोउत-रोउत चैंन से सोये हैं। कभऊँ-कभऊँ सुन्न बैठे रए हैं। और फिर उछाव में भरकें कछू गाँवन लगे, बिना सुर-ताल की सुर करें। निबौरीं खात, काँव-काँव करत कौवन के झूँड़ के झूँड़ और क्लिक्-क्लिक् करतीं निबौरियँन के बीजन कौ स्वाद लेतीं वे गिलैरीं आनन्द मनाउती हमनें इतै देखीं हैं। हमनें इतैइ डार की खखोल में उलटे लटके अपने चैनुँअन कों चुनाउती, लाड़ लड़ाउती सुआ-सुआवनी देखीं हैं और सुनी हैं उन चैनुंअन की 'कुल-कुल' की धुनें जिनकी आँखन नैं अबै बाहर की दुनियाँ देखी नैंया। सावन-भादों में कारीं कारीं घटान से भरी संजा बेरां मुकटधारी मोरन की केंकों-केंकौ सुनी है और सुनी हैं जबाब में उन नाग महाराज की फुसकारें, जिनकों नीम के जा बिरछा ने अपनी छाती में उंनके बैरियँन से छिपा कैं राखो है, ऐंसई कैउ रंग हमने जा नीम के बिरछा तरें देखे-सुने हैं।

महाराज 'विक्रमादित्य' की सभा के नौ रतनन में सें एक हते 'अमर सिंग।' वे बड़े विद्वान माने गये। उनको बनाओ कोस 'अमर कोस' बहुत प्रसिद्ध है। ऊ कोस में, वा बेराँ नीम के विरछा के जो जो नाँव चलत ते वे सबई नाँव लिखे हैं। उन नाँवन में एक नाँव है 'निबन्ध' है। 'निबन्ध' कहत है बीना की खुटिया कों, बा खुटिया जी सें बीना के तारन को कस कें और ढीले करकें ठीक सें सुर मिलाये जात। जा खुटिया से सुख कौ अनुसासुन राखौ जात वा खुटिया को कहत है 'निबन्ध'। 'निबन्ध', गीत कों सोउ कहत है गीत में बँधी रती है, भावनाएँ। 'सद्-वृत्ति' सोउ 'निबन्ध' है, जो अपनेउ विवेक के खूँटा पै टिकी रहत है। अब देखत हैं नीम कों तो दिखात है कै नीम कौ विरछा एक संगै सब है, नीम बीना की खूंटी है, नम सद्वृत्ति है और गीत है नीम।

नीम गाँव के जीवन में सुद्धी और स्वास्थ की बटौना बाँटत रहत है। नीम ने गाँव की करुवाट खुद पी लई है, सो गाँव ने नीम के गाँव पै 'अरिष्टपुर से लगाकें' 'नीमखेरा', 'नीमडाँडौ' और 'नीमगाँव' जैसे महमा बतावे वारे 'सबद' सुनाकें अपनों सीस झुकाऔ है। नीम के बिरछा की छाँई, गाँव के ऊपर माई के आँचर की छाई सी छाई है। 'अमर सिंह' नें नीम के बिरछा कों एक नाँव 'मालक' बताऔ है। 'मालक' है अधकार में करबे बारौ अमरसिंह नें नीम के कैउ गाँव बताए हैं, उनमें एक नाँव है 'पारिभद्र'। नीम है साँसउ सर्वतो भद्र - सबकों सब तरा सें भलौ करबे बारौ बिरछा।

नीम जो सब कौ करै भलौ, सब तराँ से करै भलौ और सदाँ सर्बदा से भलौई, करत रऔ होबै, ऐसे बिरछा पै रिखियँन मुनियँन कों छोड़ कें, बड़े बड़े कबीसुरन ने कभऊँ किरपा-द्रिष्टी नइँ डरी। जा नें डारी, बुरी निंगा डारी, नीम के बिरछा को बींध बे लाने इनके तरकस सें एक से एक पैने बान निकरे हैं। एक कबी जू कह रए हैं -

"यश्च निम्बं परशुना, यश्चैना मधु सर्पिणा।
यश्चैनं गंधमाल्याद्यैः सर्वस्य कटु रेव सः।।

(नीम तो है कडुवा, सब के लाने कडुवा। कुल्हारी से काटे बाके लानें कडुआ, जो घी-सहत सें सीचें बाके लाने कडुआ और जो नीम को माला चन्दन से पूजे बाके लानेंउ जो नीम कडुआ है सो कडुआ) एक दूसरे कबी जू फरमाउत है -

तं देवेन विवेक शून्य मनसा, निर्मूल्य चूत द्रमम्।
स्थाने तस्य तु काक-लोक वसतिः निम्बः समारोपितः।।

बे कै रए हैं के "बिधना कौ विवेक खतम हो गओ है, काय सें के उन बुढ़ऊ नें आम कौं तौ जरमूर सें उखार कें ऊकी जांगा पै नीम को बिरछा जौ कौअन को घर है, बाय रौप दओ है।" ऐसी ना जानें कित्ती बातें नीम नें सुनी है और झेली हैं, कोउ नें नीम के लानें दो मीठे बोल नइं बोले, ई सें नीम को रोम-रोम करवाट सें भर गऔ, पै बाह रे नीम, करवाट बाहरइ बाहर रन दई, भीतर तौ इमरत बसाँय रए और बाहर फेंकौ तौ इमरत फैंकौ हित भरी इमरत, कल्यानकारी इमरत।

गाँव की धरती ने नीम कों जीभर कें प्रेम करौ है, गीत गाये हैं, और अबै ऊ नीम की मँहमा गाउत रत है। धरती सें जुड़े रिखी बाल्मीक जू के राम जू सीता जू कों चित्रकूट की सोभा दिखा रए हैं तो उनकी आँखन को फूल नीम के बिरछा को देख कै सुख मिलौ बे सिया जू को बता रए हैं कै देखौ पर्वत महाराज की सुन्दरता को नीम बढ़ा रए हैं। (अयो. ६४/६१०)

सीता महरानी की निगा नीम पै गई ती के नइं गईती, जातौ महाराज बाल्मीक जू नें बताई नँइया, पै जा बुन्देली माटी की बिटियन की आँखन में नीम जरूर बस गऔ है। आज जब बेटी ससुरार के सातउ सुखन में माइ-मायकौ सुमरत है, सावन में बुलाबे के लाने सँदेसौ पहुँचाउत है, ऊको नीम के फरबे की याद जरूर आ जात है - बा कहत है -

"माई री... कच्ची नीम की निबौरी पकी नीम की निबौरी
सावन बेग बुलइयो रे ऽ ऽ..."

फिर माई के घर मायके आबे पै बेटी जब अपनी सहेली कौं ससुरार कौ वैभव बखानत है तो बताउत है कै 'बो हमाव घर ऐसौ बैसौ नइया, उतै हमाए दुआरें इत्तौ बड़ौ नीम कौ बिरछा है के बा नीम से हाथी बाँध सकत है। दुआरे के ओई बिरछा सें तुमाए रसिया जीजाजू की लीला घोड़ी बाँदी जात है।

"लीली सी घोड़ी गज नीम सें बँधाई। रसवारी के भौरा हों ऽ ऽ ऽ...'

काए ना आबै नीम की मीठी याद? जाकी मीठी छाइं में मीठौ बचपना बीतौ होबै, बा नीम की सुरत तौ हमेसाँ मिठियई रै है। नीम नैं सुखन में दुखन में संग दऔ है, आज दै रऔ है उर काल फिर दै है। काल जब बड़न के असीस फल हैं, पैर भारी हू हैं, तौ सेजन पै नीम के हरे पत्ता संग दैहैं। जब सोंने सौ बौ दिन आहै तौ मीठी पीरें झेलने पर है और नीम के पत्तन की कड़वी-मीठी धूनी सैहैने परहै। पुरखन सैं चली आ रीत है, सबने सहौ है, सबई सहत हैं, चाँए बे बाणभट्ट के महाराज तारापीड़ की रानी विलासबती होबें, या होबें हरजू भैया कीं गैंदारानी।

नीम जितै रहत है उतै भलौइ करत है। जानकार बताउत हैं के 'सीतला माई' नीम के कौंरे पत्तन की माला धारन करतीं हैं। 'निम्ब पल्लब धारिनी' देवी हैं। सो सीतला के उन रोगिन की बे तकलीफ काम कर देतीं हैं। जौ लोक विस्वास है, जाके पाछें सोच है बौ सोच बिग्यान को विचार है के नीम के पत्तन में रोग के बीजन कौ नास करबे को गुन रात है, आयुर्वेद जौई मानत है। नीम कौ गाँव में 'देबी माता कौ बिरछा' मानो जात है, भरपूर आदर दओ जात है। नीम के नए बिरछा 'घुल्ला' कौं कोऊ टोरै, नुकसान पौंचाय, तौ फिर ऊकौं पूरे गाँव की 'थू-थू' सैहने परहै। काय सें के बे मानत हैं, वे जानत हैं के नीम को बिरछा, देवी माई को अनौनो छनौनों लाड़-लड़ैती बिरछा है। उनने नातौ 'आगम'...... पढ़े हैं और ना 'श्रीविद्याकवि कुलार्णतन्त्रन' के नाँव सुने हैं, जो गहरौ ग्यान तौ उनन नें अपने बूढ़े बुजुर्गन से सुनौ है, सो मानत आरए हैं। मान रए हैं।

गाँव के प्यारे दुलारे नीम की कुण्डली कौनऊ पग्गड़धारी पंडतजू ने बनाई है जो तौ जानत नइँयाँ, हाँ इतनौ जरूर मानत कै खुले आकास के नैंने सोबे बारे नखत और बिरछा कौ सम्बन्ध और उनकौ गुप्प-चुप्प रहत जाने बिना, चैन से सो नइं सकत हैं। जमुना-किनारें कालपी के पास एक गाँव है परासन। कहत हैं ई गाँव परासन में वेद-व्यास जू के पिता 'परासर जू' महाराज को आसरम हतौ। उन महाराज परासर जू नें होराशास्त्र नाँव को जोतिस कौ ग्रन्थ लिखौ है। ऊ ग्रन्थ में 'नखत' और बिरछन की भीतरी सम्बन्ध बताऔ है। परासर जू ने बताऔ है के नीम को नखत है भाद्रपदा। सूरज जब भाद्रपदा नखत में हूँहैं और चन्द्रमा भाद्रपदा नखत में हूहै, तब यानि जौ समय होत है चैत महिना में अमावस के आसपास, तब नीम फूल है और फलहै। और फिर सूरज जब सातईं राशि कन्या में आहै और चन्द्रमा भाद्रपदा नखत में आहै, यानि जो समय होत है भादों महिना में पूनों के पास पास। सो नीम कौ वैभव चैत्र और भादों के महिना में दिखै है। और एक बात और नीम के सुभाव के विषै में सोऊ बताई है, नीम के नखत भाद्रपदा के स्वामी हैं, 'अहिर्बुध्न' बादरन की बिजली कौ 'अहिर्बुधन' नाँव है, जासें जो इशारौ है के बादरन की बिजली कौ नीम के बिरछा की तरफ खिंचाव दूसरे बिरछन सें जाँदाँ है। बस हम तौ इतैकई बात बता रए, हम कौनऊँ चतुर जोतसी तो है नइयाँ, आँगे के चतुर सुजान जोतसी चार हाँत आँगौं होनेई हैं।

दूसरन की जिन्दगी सुखी बनी रैहे जाके लानें अपनी पूरी जिन्दगी लगाबे बारे, अपने देश के सदा से होत आरए हैं। सुश्रुत माधव और 'बाग-भट्ट' ऐंसई नाम हैं जिननें अपनी पूरी उमर दीर्घायु और स्वास्थ्यप्रद वनौषधियन की खोज में लगा दई है, उनने नीम के गुन-धर्म खोजे औ जानौ के नीम की जर, तना, बकला, पत्ता, कोंपें, सीकें, फल (निबौरी), फूल, बीज, गोंद, मल, तेल, जे बस नीम के उत्पाद शरीर के कौनऊँ नइँ कौनऊँ उत्पाद को शमन करबे बारे हैं, बे कौनऊँ रोग की दबा हैं। बैसे साधारन में नीम त्वाचा के रोगन कों रामबान है ईसें नीम कौ एक नाँव है 'पिचुमर्द'।

अपने देश की देव-भाषा में 'काक-फल' है नीम। नीम का बिरछा कोओं को बहुत प्यारो है। नीम की निबौरियन के सच्चे रक्षिक हैं बे। जितै नीम उतै बे। नीम की खोज भई कागा जू उतै मौजूद। हमाये उन पुरखन नें जिनकी आँखें ऊपार कौ देख लेत ती उन आँखन में कागा की कारी 'करतूतन' के पाछें छिपी सोने सी जोत देखी ती, पहचानी ती, और कै ऊ जंगल की जड़ी बूटियन कौं कौआ के नाँव से जोर दओ तौ। बात-पित्त-कफ इन तीनउँ दोखन कों हरन करबे बारी गुर्च को 'काकमाची' और घुँघची कौं 'काक-चिंचा' कही है।

नीम के साँचे सखा कागाजी की बड़े बड़े रिखियन नें जस गावौ है। 'दीर्घतमा' नाँव के रिखी महाराज नें तो कौवा कों 'दिव्य सुपर्ण' और 'बृहत्' जैसे आदर देबे वारे शब्दन से सन्मान दओ है। बे रिखी महाराज कौआ-जू कौ अहसानमान रए हैं कै जल के भीतर होबे बारी ओर वदन कों हमै कौआ जू ने बताऔ है, जा किरपा उनकी है कै हमें जौ ग्यान मिलौ है - ''दिव्य सुपर्ण वायसं बृहन्तम्, अपां गर्भं दर्शत मोषधीनाम्'' (ऋग १/१६४/५०)

भुनसारौ हो रऔ है। नीम के हरीरे पत्तन पै पीरी सुनैरी-सुनैरी सूरज की किरनें नाँच उठी हैं। सतरँगी टोपी लगाएँ 'कठकोला' जू नीम छाल कौं खोद खोद कैं उनके गुण-धर्मन की खोज करन लगे हैं पूँछ ऊपर उठाए गिलैरी रानी नीम की गरी कौ नाश्ता करन लगी हैं भौरां फूलन की मधु से अपने प्याले भर चुके हैं, मधु-मक्खी खुशी में झूम-झूम कैं कछू गुनगुना रई है। नीम अपनों सर्वस बाँटे जा रऔ है, बिना रुके, बिना थकैं बाँट रओ है उनैं जिनैं नीम की साँसन की चाहना है, उनै जिनै नीम के तन की जरूरत है। यही नीम की पैचान है।

नीम कौ पता नइयाँ के ऊ के खिलाफ, बड़ौ खड़यंत्र रचो जा रओ है। बे जिनकी बुध्दी कौ बुध्दत्व सैं, बुद्ध सैं कौनऊँ लैबौ

देबो नइं रऔ, बे बनारए हैं नीम कौ 'अपनी बुध्दी की संपदा' बे लूटबे बारे, देवी के विरछाकौं 'पेटेन्ट' के नाँग-फाँस में फाँस

बे ईकी जुगाड़ लगा रए हैं कै गाँव के घाव पै नीम पत्ता लगाबे के लानैं सात समुन्दर पार के प्रभुअन सें, गाँव की आज्ञा लेने पर है। नीम जासें बेखबर है। चौथो पहर बीत रऔ है, नीम झौकन मद बगरा रऔ है। दीन और दुनियाँ दोनों कौ दूत, नीम कौ साँचै सखा कौआ चौकन्ना हो गयो है। ऊकों खबर हो गई है। कौआ महाराज कौनउँ साधारण पंछी तौ हैं नइँया, वे समुन्दर के पेट की जरत आग 'बाडवानल' देवता की धुजा के ऊपर बैठ कें चारऊ तरफ निगाँ डारबे बारे हैं, को आ रऔ को जा रऔ, जो उनसें जाँदा को जानत। जानबे बारे तौ बताउत हैं कै कौआ जू तौ आने बारे कों आबे से पैलैंइ जान लेत। सो उनकों खबर होगइ है, सो बे बेचैन हो रए हैं। बे चिल्ला चिल्ला कें कै रए हैं "होशियार, सावधान, होस में आओ जगौ, आलस छोड़ौ, एक संगै हो जाऔ, विचार करौ सर्वतोभद्र नीम पै संकट आ रऔ है, मोय आहट सुना रई है, नीम पै आफत आ रई है। नीम है बिसनू भगवान कौ रथ, टूट सकत है, सब मिल करौ ऐसौ जतन कें जौ बचौ रए, टूटै नइं।।"

और कौआ दूर और दूर आसमान में उड़त जारऔ है। हर्रो निबौला चौथे पहरें झोंकन मद बगरा रौ है। बगरांय जा रऔ है।

- ५/२, कालिदास, नूतन विहार कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

एक निर्धन कृषक लछई की सत्य कथा -

लछई की लिडेर

- भानु प्रताप शुक्ल 'भानु'

(पुराने समय में कृषि कार्य पारम्परिक पद्धति, हल बैलों द्वारा, सुगम, सस्ती,सरल, विधियों, द्वारा आत्म-निर्भरतापूर्वक सम्पादित किया जाता था, जिसमें परिवार के सभी का जन बच्चे से सहयोग होता था। आज पाश्चात्य संस्कृति के विकास, प्रचार, प्रसार ने इसे, पूर्णतः खर्चीला, यांत्रिक एवं जोखिम भरा-टैक्टर, थ्रेसर का पराश्रयी बना दिया है। जो एक सीधे सरल, आर्थिक क्षमता विहीन, यांत्रिक ज्ञान रहित कृषक के लिये आर्थिक सम्पन्नता से परे, जोखिम भरा है। मशीनरी अनभिज्ञता के कारण सीधे, सरल किसान कभी को कभी अज्ञतावश शारीरिक एवं आर्थिक क्षति भी उठानी पड़ती है। इस कविता में ऐसे ही एक निर्धन कृषक 'लछई' का गल्ला की पारम्परिक ढंग से मढ़ाई करते हुए वर्णन है।)

टटियँन सें, लाँकन के, टूट रये सुमेर।
सेड़न के लग गये, बयारन में ढेर।।
करबे श्रम घर जुटे, अन्न के कुबेर।
जुटे अन्न के कुबेर।।

नैंदई तरईंयन की छँईयाँ में दाँय।
हो गई दुपरिया पै तनकउ न भाँय।।
तप रई तबा सी, तरे सें धरनि।
बैठे मलारे जे! टटियँन पै गाँय।।
बिटिया लै आई, कलेबा खाँ बेर।
टटियँन सें लाँकन ...।।१।।

बालन की चरर-मरर, चाँचर कौ राग।
लरसी-गुलाल भरे, खेलत जे! फाग।।
श्रम के रंगराग रंगो चोला सरबोर,
पगिया के छोर परे, सुरती के दाग।।
गोंनन के पैर गुँईयाँ डारे तरेर।
टटियँन सें लाँकन ...।।२।।

'पुनियाँ' ने 'छनुवाँ' के हाँतन पठा।
बासौ पठै दओ महेरौ-मठा।।
खाकें डकर गये, अदन सौ तपो-
-पी गये जे! नरवा कौ पानी उठा।।
इन! कैसो संतोषी को दई? दिलेर?
टटियँन सें लाँकन ...।।३।।

छोड़ रई दुपरिया, लू-लपटन की झार।
माँथे से चू रई पसीना की धार।।
ठाँड़े उसाबे तिबारे पै आज।
'हिराऔ मोंतीं' बिछा रई बयार।।
सरस लई 'गोरी' नें, छापौ उखेर।
टटियँन सें लाँकन ...।।४।।

साँजौ सब ढोंन लगे, बना बना जोड़।
मची मोंड़ा-मोंड़िन की, आपुस में होड़।।
मच गई खलबली, परी पिरीं दिखाय-
छिटियँन सें छूटत न, साँजे कौ छोर।।
जुटा दैबे उसेंड़ा 'लछँई' की लिड़ेर।।
टटियँन सें लाँकन ...।।५।।

भूसा के ब्यारे में लग गये पहार।
मारे पकर कें, पचा ऊमें! चार।।
भेंसें बदल दईं बमूँरन की छाँव।
बदियँन हाँ भर कें, अकरियँा दईं डार।
'डियूटी' में इनकी! परो नईंयाँ फेर।
टट्टियँन सें लाँकन ...।।६।।

- संदीप साहित्य सदन, कंचनपुरा, निवाड़ी जिला टीकमगढ

जालौन की पहली महिला क्रान्तिकारी ताई बाई

- डॉ. कुमारेन्द्र सिंह सेंगर

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए हुई क्रान्तियों अथवा संघर्षों में भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम-१८५७ का विशेष महत्व है। यह अपनी शैली और अंग्रेजी साम्राज्य को हिला देने के कारण अनूठा माना जाता है। इस स्वाधीनता संघर्ष में मात्र सैनिकों ने ही भागीदारी नहीं कि अपितु देश के समूचे वर्गों ने अपनी सामर्थ्य लगाकर इस संघर्ष को अमर कर दिया। बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के साथ-साथ छोटी-छोटी रियासतों ने भी भाग लिया। सामन्त, पूंजीपति वर्ग के लोगों की हिस्सेदारी रही तो मजदूर, किसान भी पीछे नहीं रहे।

सन् १८५७ की क्रान्ति में सभी अपनी क्षमता से अधिक आहुति देने की तत्परता दिखा रहे थे। उत्तर प्रदेश का जनपद जालौन भी किसी दृष्टि से इस संघर्ष में पीछे नहीं रहा। छोटे-छोटे संघर्षों के अतिरिक्त सन् १८५७ में जनपद जालौन क्रान्तिकारियों की कर्मभूमि बन कर उभरा, यहां तक कि क्रान्ति की समस्त गतिविधियां बुन्देलखण्ड में अलग-अलग संचालित न होकर एकजुट रूप में कालपी से संचालित होने लगीं। नाना साहब, तात्या तोपे, रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर साहब आदि की रणनीति यहीं पर बनती और क्रियान्वित होने लगती। इन सबसे अलग जनपद जालौन का नाम इस बिन्दु पर आकर ज्यादा आभासित प्रतीत होता है कि इन सभी प्रसिद्ध नामों से बहुत पूर्व जनपद की पहली महिला क्रान्तिकारी ताई बाई ने इस आन्दोलन में सक्रियता दिखा कर क्षेत्र के क्रान्तिकारियों के मध्य एक अलख जगा दी थी। यह जनपद जालौन का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि इस क्षेत्र के ऐतिहासिक महत्व की ओर इतिहासकारों ने ध्यान नहीं दिया। यह और बात है कि कुछ साहित्यकारों और संस्कृतिप्रेमियों के द्वारा समय-समय पर इस क्षेत्र की महत्ता को सामने लाया जाता रहा है।

जनपद जालौन के इतिहास में ताई बाई की स्मृति को मिटाने का कार्य तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों द्वारा ही शुरू कर दिया गया था। ताई बाई के द्वारा लगातार सात माह तक क्रान्तिकारी सरकार के रूप में कार्य किया गया। यह दुस्साहस अंग्रेजों को नागवार गुजरा, इसी कारण से ताई बाई से सम्बन्धित समस्त दस्तावेज, वस्तुओं यहां तक कि जालौन स्थित उनके किले को सन् १८६० में जमींदोज करवा दिया। अंग्रेजी सरकार की इस कायरतापूर्ण कार्यवाही के बाद भी इस वीर महिला की वीरता का वर्णन करते हुए तत्कालीन झांसी डिवीजन के एक अंग्रेज अधिकारी जे० डब्ल्यू० पिंकने ने लिखा भी था कि वर्ष १८५८ के प्रारम्भ होते-होते दबोह और कछवाघार के कुछ भागों को छोड़ कर पूरा जालौन जिला ताई बाई के अधिकार में आ गया था।

उत्तर प्रदेश का जनपद जालौन सन् १८५७ के समय आज की स्थिति में नहीं था। सन् १८३८ में जालौन पर अंग्रेजों का अस्थाई अधिकार हो गया था। जालौन के राजा की मृत्यु पश्चात यहां उत्तराधिकार की समस्या सामने आई। राजा की पत्नी ने एक बालक गोद लेकर राज्य करने का विचार किया मगर उसकी अनुभवहीनता और आपसी झगड़ों में यहां की स्थिति बिगड़ गई। तब स्वर्गीय राजा बालाराव की पत्नी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से जालौन की रियासत को संभालने का आग्रह किया। तत्पश्चात सन् १८३८ में यहां प्रशासक नियुक्त कर दिया गया। इसी दौरान सन् १८४० में गोद लिए बालक गोविन्दराव की मृत्यु हो गई। इस बार अंग्रेजों ने रानी को पुनः किसी को गोद लेने की अनुमति नहीं दी और जालौन रियासत को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। इसी वर्ष अंग्रेजों ने जालौन को जिले के रूप में मान्यता प्रदान की। इसके बाद तमाम सारी कार्यवाहियों और गतिविधियों के बाद अंग्रेजों ने सन् १८५३ को कालपी तथा कोंच को भी जनपद जालौन में शामिल कर लिया।

जनपद जालौन की पहली महिला क्रान्तिकारी ताई बाई जालौन रियासत के स्वर्गीय राजा बालाराव की बहिन थीं। ताई बाई का विवाह सागर के नारायण राव से हुआ था परन्तु विवाहोपरान्त ताई बाई अपने पति सहित जालौन के किले में ही निवास करने लगीं। राजा बालाराव की मृत्यु पश्चात उनकी पत्नी रानी लक्ष्मीबाई के द्वारा शासन का संचालन उचित रूप से नहीं हो पा रहा था, इधर परिस्थितियों के विषम होने के कारण जालौन को अंग्रेजों ने अपने अधिकार में भी ले लिया था। ताई बाई अपने पूर्वजों का ऐसा अपमान नहीं देख पा रहीं थीं। अंग्रेजों से बदला लेने के लिए उनके भीतर स्वाधीनता क्रान्ति का अंकुर फूटने लगा इसी कारण उन्होंने गुपचुप तरीके से अपनी योजना को क्रियान्वित करने का विचार बनाया।

कानपुर में क्रान्ति की शुरूआत होने की सूचना ६ जून १८५७ को उरई पहुंची। इसके पश्चात यहां भी क्रान्तिकारियों ने कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। क्रान्ति का आरम्भ होते ही जालौन के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन ब्राउन ने भागने में ही अपनी भलाई समझी। कैप्टन ने भागते समय गुरसराय के राजा केशवदास को पत्र लिख कर जालौन में शांति स्थापित करने में सरकारी अधिकारियों की सहायता करने को कहा। राजा केशवदास मौकापरस्त व्यक्ति था, उसने अपने पूरे कार्यकाल में उसी का साथ दिया जिसका पलड़ा भारी होता था। इससे पूर्व वह अंग्रेजों की दया पर ही गुरसराय पर अपना राज्य चला पा रहा था। कैप्टन के पत्र के बाद केशवदास

ने जालौन में ताई बाई तथा अन्य क्रान्तिकारियों के तेवर देखे तो उसने ताई बाई का साथ देने में ही अपनी बधाई समझी। कैप्टन के पत्र की भाषा में फेरबदल करके उसे सरकार चलाने के अधिकार-पत्र के रूप में परिवर्तित कर लिया। केशवदास ने अपने दोनों पुत्रों के साथ जालौन आकर अन्य सरकारी अधिकारियों को भगा कर किले पर अधिकार कर लिया। केशवदास के इस कृत्य को ताई बाई आदि ने क्रान्तिकारियों का सहयोग समझकर धन-बल से उसकी सहायता की। इधर ताई बाई अन्य क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन करने लगीं और राजा केशवदास पर विश्वास कर बैठीं।

केशवदास की कुछ गतिविधियों से लगता कि वे क्रान्तिकारियों के पक्ष में हैं तो कभी लगता कि वे अंग्रेजों के पक्ष में हैं। इस बारे में एक घटना को प्रमुखता से देखा जाता है। जालौन में क्रान्ति के पश्चात दो अंग्रेजी डिप्टी कलेक्टर पशन्हा और ग्रिफिथ को बन्दी बना लिया गया था। जब तक कानपुर में नाना साहब, तात्या तोपे क्रान्तिकारी के रूप में और जालौन में ताई बाई की सक्रियता रही तब तक केशवदास ने इन अंग्रेज अधिकारियों को बन्दी बनाये रखा। अंग्रेज नाराज न हो जायें इस कारण से केशवदास ने उन्हें मारा भी नहीं और फिर कानपुर में क्रान्तिकारियों की पराजय के साथ ही केशवदास ने दोनों अंग्रेज अधिकारियों को परिवार सहित सकुशल कानपुर पहुंचा दिया।

इस घटना के बाद से ताई बाई को विश्वास हो गया कि केशवदास अंग्रेजों के लिए कुछ भी कर सकता है। इधर पराजित क्रान्तिकारी कानपुर से भागकर कालपी आ गये। तात्या तोपे भी अक्टूबर १८५७ को ग्वालियर के विद्रोही सैनिकों के साथ जालौन आ पहुंचे। ताई बाई ने तात्या तोपे के साथ मिलकर केशवदास को वापस गुरसराय जाने पर विवश कर दिया। इस घटना के बाद तात्या ने ताई बाई के पांच वर्षीय पुत्र गोविन्द राव को जालौन की गद्दी पर बिठा कर ताई बाई को संरक्षिका घोषित कर दिया। इस कार्यवाही से जालौन में क्रान्तिकारियों की सरकार का गठन हो गया और पेशवाई राज्य की स्थापना हुई। ताई बाई ने इसके बाद भी अपनी गतिविधियों को विराम नहीं लगने दिया। क्रान्तिकारी गतिविधियों के आगे के संचालन हेतु ताई बाई ने तात्या तोपे को तीन लाख रुपये की सहायता प्रदान की।

क्रान्तिकारियों की सरकार बन चुकी थी और ताई बाई ने सफल संचालन के लिए प्रधानमंत्री तथा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की। ताई बाई ने अद्भुत क्षमता से अत्यल्प समय में एक बड़ी सेना का गठन करके उसे तात्या तोपे के साथ कानपुर पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। कई हमलों में विजय भी प्राप्त हुई परन्तु पूर्ण अधिकार प्राप्त न हो सका। अन्ततः दिसम्बर में एक युद्ध में इस सेना की भयानक पराजय हुई। यह सेना हताश मन से वापस लौट आई। ताई बाई यह भली-भांति समझती थी कि यदि इस समय हिम्मत हारी तो क्रान्तिकारियों में जोश पैदा करना मुश्किल हो जायेगा। इस कारण से ताई बाई ने अपने व्यक्तिगत जेवरों और कीमती वस्तुओं को बेचकर प्राप्त धन से सेना का पुनः गठन किया।

जालौन में क्रान्तिकारियों का स्वतन्त्र राज्य पहले से ही स्थापित था, ताई बाई ने सहयोग के लिए चरखारी नरेश से सहायता मांगी। अंग्रेजों के हितैषी चरखारी नरेश ने सहायता देने से मना किया तो ताई बाई ने तात्या तोपे के नेतृत्व में अपनी सेना के द्वारा चरखारी पर विजय प्राप्त की। अपनी समूची सेना के खर्चों, युद्ध खर्चों, वेतन आदि का भार ताई बाई स्वयं ही उठाती रहीं। अपनी सूझबूझ और कुशल नेतृत्व क्षमता के कारण ताई बाई ने सम्पूर्ण जनपद में अंग्रेजों का नामोनिशान भी न रहने दिया।

ताई बाई की बढ़ती शक्ति से अंग्रेज भी परेशान थे। एक ओर क्रान्तिकारी घटनाएं हो रही थीं और रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहब आदि की गतिविधियों के साथ-साथ ताई बाई का शासन अंग्रेजों को रास नहीं आ रहा था। इस समय तक कालपी क्रान्तिकारी घटनाओं के संचालन का केन्द्र बन चुका था। मई १८५८ में कोंच के युद्ध में क्रान्तिकारियों की पराजय से अंग्रेजों को जनपद में पुनः घुसने का मौका मिला। कोंच में अंग्रेजों की विजय उनकी कूटनीति के कारण नहीं अपितु सैनिकों की अनुशासनहीनता के कारण हुई। इस पराजय के बाद तात्या तोपे वापस आने के स्थान पर ग्वालियर चले गये। इधर ताई बाई असमंजस में थी और अंग्रेज भी जालौन के स्थान पर कालपी किले पर कब्जा करना चाह रहे थे। इसका कारण एक तो वे क्रान्तिकारियों की शक्ति को सीधे तौर पर कम करना चाहते थे और दूसरी ओर ताई बाई के साथ संघर्ष में अंग्रेज अपनी शक्ति को कम नहीं करना चाहते थे।

कोंच में विध्वंस करने के बाद अंग्रेजों ने सीधे कालपी की ओर रुख नहीं किया और न ही सीधे तौर पर ताई बाई से युद्ध किया। अंग्रेजों ने नई कूटनीति का इस्तेमाल करते हुए ताई बाई के सहयोगियों को मिटाना शुरू कर दिया। इसके लिए उन्होंने युद्ध का नहीं वरन् नरसंहार का सहारा लिया। सबसे पहले हरदोई के जमींदार अंग्रेजी सेना के कोपभाजन बने। भयंकर लूटपाट और नरसंहार किया, एक दर्जन से अधिक क्रान्तिकारियों को खुलेआम पेड़ से लटका कर फांसी की सजा दे दी गई। अंग्रेजों का नरसंहार जारी रहा, अब वे ताई बाई से सीधे न टकराकर जनता को निशाना बना रहे थे। ताई बाई ने नरसंहार को रोकने का उपाय भी किया किन्तु अंग्रेज सीधे-सीधे युद्ध भी नहीं कर रहे थे इस कारण ताई बाई के समक्ष दिक्कत भी आ रही थी।

अन्ततः ताई बाई ने नरसंहार रोकने के लिए मई १८५८ को अपने पति और पुत्र के साथ आत्मसमर्पण कर दिया। अंग्रेजों

ने ताई बाई की जालौन की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली। राजद्रोह और विद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें तथा उनके सहयोगियों को आजीवन कारावास की सजा सुना दी। ताई बाई की लोकप्रियता और शक्ति से घबराकर अंग्रेजों ने उन्हें बंदी जीवन बिताने के लिए जालौन से बहुत दूर मुंगेर-बिहार- भेज दिया गया। यहीं पर कैदी जीवन बिताते हुए उनकी मृत्यु सन् १८७० में हो गई। ताई बाई की मृत्यु के बाद भी अंग्रेज उनकी लोकप्रियता और शक्ति से घबराते रहे। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि उनकी मृत्यु के बाद उनके कैदी बेटे को पढ़ने के लिए तो इलाहाबाद भेज दिया गया किन्तु उनके बंदी पति को जालौन में रहने की आज्ञा नहीं दी गई।

वर्तमान में ताई बाई को अंग्रेजी कोप के कारण कोई जानता भी नहीं है। एक छोटे से स्थान पर उन्होंने अपनी कार्यक्षमता और कुशल सैन्य संचालन से अक्टूबर ५७ से मई ५८ तक स्वतन्त्र सरकार की स्थापना कर उसका संचालन किया। जनपद जालौन की इस क्रान्तिकारी महिला को लोग इस कारण से भी नहीं पहचानते हैं कि अंग्रेजों ने यथासम्भव जालौन से ताई बाई से सम्बन्धित सभी वस्तुओं, दस्तावेजों आदि को समूल नष्ट कर दिया था। इसके बाद भी उनकी छवि, लोकप्रियता भले ही रानी लक्ष्मीबाई जैसी न रही हो किन्तु जनपद जालौन के निवासियों के मन-मष्तिष्क में ताई बाई की छवि आज भी बसी हुई है। अंग्रेजों द्वारा लिखे गये क्रान्तिकारियों के भ्रामक इतिहास को पुनः लिखने और सामने लाने की आवश्यकता है, कुछ इसी तरह की पहल की आवश्यकता ताई बाई के गौरवशाली इतिहास को सामने लाने की है। जनपद जालौन की पहली महिला क्रान्तिकारी ताई बाई को इन्हीं समवेत प्रयासों के माध्यम से ही देशवासियों के सामने लाया जा सकता है, तभी हम सभी अन्य वीर-वीरांगनाओं की तरह ही ताई बाई को भी याद रख सकेंगे।

- प्रवक्ता-हिन्दी विभाग, गांधी महाविद्यालय,
उरई-जालौन, (उ०प्र०)

कउँ आज गाँधी होते

- डॉ. शंकरलाल शुक्ल

कउँ आज गाँधी होते।
देख के अपनें देश की हालत,
फूट-फूट कर रोते।
सपनें की हो गईं वे बातें,
जे गाँधी ने बतलाई,
आग लग गई उन सब में,
जिनके लाने लरी लराई।
हवा हो गई सत्त अहिंसा,
नाच रई नंगी हो हिंसा,
विदा हुये देशी पहरावे,
भजन तुमाये केवल रै गये,
गाँधी जैन्ती पै गावे।
देशभक्ति औ जनसेवा की,
हवा हो गई बातें,
कुर्सी हथयावें खों चल रईं,
तरा तरा की बातें,
सत्ता मिल जावै केवल
देश भाड़ में जाये
जीखों जाँ मिल जावैं मौका
तरधिंट्टा खां जाये।
दलित, गरीब और कोढ़ी,
गाँधी के लिए आज भी रोते,
कउँ आज गाँधी होते।।१।।

आदर्श डरे सब घूरे पै,
कोऊ न काऊ मानें,
जैसे मिले सो तैसें लेंने
केवल कुर्सी खों जानें।
आज आदमी को, नेता जे-
कच्चौ मांस चबा रये,
जिनको होनै तौ सर्कस में
वे सरकार चला रये।
कैतौ बैठें खुद कुर्सी पै
या घरवारी बैठावें,
क्या मजाक जो और दूसरे
कुर्सी खों छू पावें।
अक्षरधाम में आग लगै,
मंदिर रघुनाथ का टूटै,
इनखौं का परवाह देश खौं -
कोऊ आँकें लूटै।
ये छिप छिप के खुद उनके
मददगार होते।
कउँ आज गाँधी होते।।२।।

बापू के सपने, रामराज्य के -
इन्ने टुकड़े कर डारे,
तीनउँ बन्दर औ बकरी खौं,
इन्ने मारे हैं भाले।
कैसौं मजाक है संसद पै,
दुश्मन हमला बोले,
बापू ये तेरे कपूत थे,
कुछ न मुँह से बोले।
बार बार दबते घुटते,
और मरते सीमा पर,
कितनी मांगें सूनी होतीं-
रोज रोज सीमा पर,
राजनीति की इनकी रोटी-
कश्मीर तबे पर पकती,
इसीलिए कश्मीर समस्या,
कभी न हल हो सकती,
दुश्मन का स्वागत कर खुद ये-
बीज युद्ध के बोते।
कउँ आज गाँधी होते।।३।।

- भाण्डेर, जिला दतिया (म.प्र.)

हरदौल-चरित

(ख्याल-लमटेरा मिश्रित गायकी में)

प्रथम भाग

- देवकी नन्दन 'शान्त'

ओरछा राजवंश दीवान, वीर हरदौल गँवाय प्रान,
बना बुन्देलखण्ड की शान;
कथा आरम्भ इतैं सें होय,
का कैसें भव बीच ओरछा, जान सको न कोय।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(१)

भाभी जू खों माँ जैसो, हरदौल ने पूजो है।
चम्पा खों बेटा जैसो, कोऊ और न दूजो है।।
मगर होनी सें को जीतो, घड़ा कब तक रातो रीतो,
चुगलिया मों कैसे सीतो;
ओरछा चुगलखोर पोंचो,
चुगली नें मर्यादा कौ झीनों परदा नोंचो।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(२)

राजा दिल्ली गये हते, उनसें जाकें बोलौ।
घर में का हो रओ तुमाए, देखौ आँखें खोलौ।।
महल में पोंचो नृपत जुझार, छूट रई ती आँखन सें झार,
ईर्ष्या भड़की झुलसो प्यार;
बुलाओ रानी खों तत्काल,
बोलो हमसें कैदो रानी सच्चौ-सच्चौ हाल।
रो रई रानी है! नृपत का ठानी है...२।।

(३)

काय रात हरदौल ओरछा, तज एरच रानी।
का तुमाव देवर सें रिश्ता, है अचरज रानी।।
अगर तुम सच्ची हौ रानी, तौ फिर किस बात की हैरानी,
दूध सें अलग करौ पानी;
सुनकें राजा के तीखे बैन,
काँप उठो रानी उर, भीग उठे अँसुअन जल नैन।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(४)

धीरज धरके हिम्मत करके, समझावै रानी।
कण्ठ सूख रओ रै-रै कें, थर-थर काँपै बानी।।
प्राणपति सुनौ हमाई बात, जिये तुम देवर मेरौ कात।
पुत्र सौ मानूँ उए मैं तात;
तुमै बौ मानै पिता समान, लक्ष्मण सौ देवर है मेरौ,
तोरे कुल की शान। रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(५)

तू पतिव्रता है तौ राजा बोलो, देओ प्रमान।
मैं भी तौ देखूँ तुम दोनों, कितने निष्ठावान।।
रसोई राजा बनवाई, अलग सें थारी सजवाई,
संखिया जा में मिलवाई;
पतिव्रता नारी देखत जात,
अँसुआ बैरए गंगा-जमुना से कम्पित हैं गात।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(६)

बुलवाओ हरदौल लला खों, जैंबे के लानें।
छिपकें खड़ी देख रओ तो, राजा भौहें तानें।।
सिंह सी चाल चले हरदौल, लग रए सबै भले हरदौल,
बीच संघर्ष पले हरदौल;
पूँछ रए कर धोकें हरदौल,
भौजी भइया खों बुलाव का, है खाबे कौ डौल।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(७)

थारी लैकें चम्पा आई, बोली खाव लला।
भौजी बिन भइया के, कैसें भोग लगाइँ भला।।
तात भइया फिर खालेंगे, व्यस्त हैं अभी न आवेंगे;
बे अबै फर्ज निबाहेंगे;
शुरू तुम करौ लला जेवनार,
थारी धर दई सामें, पंखा झल रई, सोचै नार।।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(८)

देखो लाला नें भौजी खों, और पूँछ बैठे।
मोखों जा बताव भौजी, तुम दुखी काय सैं हो।
का कछू भइया नें कै दई, बात आखिर ऐसी का भई,
खबर कीनें न तोरी लई;
अबईं दुख दूर करौ तोरौ,
तैंनें भौजी अबलौं भुजबल नईं देखो मेरौ।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(९)

ई के आँगें और कछू न, सुन पाई रानी।
सुत से देवर के आँगें हैं, रई पानी-पानी।।
तातमत खइयो जौ खाना, कि ई मैं ज़हर मिले नाना,

मगर हरदौल नहीं माना;
पूँछ रओ रानी मोय बताव,
कीनें कई कै ज़हर मिलाकें, खाना परसौ जाव।।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(१०)

कोऊनें भर दये कान तुमाए, भइया के भइया।
मोरे और तुमाये ऊपर, शक कर रये भइया।।
उनईं नें कई परीक्षा देव, पतिव्रता हो तौ जौ विष लेव,
लला खों अपने हाथन देव!
तबई कहलाईं तो सुहाग;
तबई सें अँसुआ बैरए भइया, बुझे न मन की आग
रोरई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(११)

भौजी तैनें मोखों मइया, जैसो प्यार दओ।
मैंने बदले में तोए पीड़ा कौ हार दओ।।
बड़े भइया मो पिता समान, वहीं तोरे सुहाग की शान,
बचाइँगौ मैं कुल की आन;
मन में मत रन्ज करौ भौजी,
जनम जनम मैं तेरो सुत, बन आऊँगो भौजी।
रो रई रानी है नृपत का ठानी है...२।।

(१२)

अगर किसी ऐरे गैरे ने, कई होती जा बात।
तोरे चरनन में भौजी रख, देतो बाकौ माथ।।
जोड़कर हाथ खड़ी रानी, भाग्य से भौत लड़ी रानी,
चित्र मानिन्द जड़ी रानी,
दबाकें अपने मन कौ ज्वार,
तौल-मौल कें शब्द बोल रई, सुन रओ नृपत जुझार।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(१३)

मैं भी तो संग ज़हर खाऊँगी, या तैं भी मत खा।
झूठे हम पे चाल-चलन के, दोष लगे लाला।
ज़हर मत भूल के खा भौजी, पतिव्रत धरम निभा भौजी,
भाई को ये समझा भौजी;
ओरछा की रक्षा करना,
बुन्देलों के बलिदानों पर, मत शंका करना।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(१४)

तुरतई भोग लगा लाला नें, मौमें कौर दओ।
उड़ गओ पंछी खाली पिंजरा, द्वारे टँगो रओ।।
ओरछा मच गई हाहाकार, दाऊ की है रई जैजैकार
जीत कें हारो नृपत जुझार;
सुआ मैना नें जान दई,
नौ सौ ज्वानन नें कटार, निज पेट में घोंप लई।
रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।

(१५)

मैंतर बाबा नें तुरतई, हाथों में ली थारी।
'जय हरदौल लला की' कैकें, जूठन मौं डारी।
होंठ पे नाम लिए हरदौल,
बबा मैंतर खुद भए हरदौल, जिन्दगी खूब जिए हरदौल;
ओरछा नाम अमर हो गओ,
जानै की की के कितने कलंक लाला धो गओ।
रोरई रानी है, नृपत का ठानी है...२।।
खत्म न होत कहानीहै, अमर हरदौल निशानी है।
बात न नई पुरानी है, रो रई रानी है, नृपत का ठानी है...।।

(१६)

गाँव-गाँव बुन्देलखण्ड में, पीपल के नैंचें।
बन चौंतरा दो-दो, दूल्हा दूल्हन खों खैचें।।
कहे दूल्हा चबूतरा सें, न बदलूँ कभी पैंतरा मैं,
बनूँ हरदौल की तरह मैं;
दुल्हन माँगे चबूतरा सें, रहूँ प्रतिपल पतिव्रता मैं,
जियूँ जीवन चम्पा सा मैं।
धन्य बुन्देलखण्ड माटी, जहाँ मान्यताओं से निर्मित चली ये परिपाटी।
'शान्त हरदौल' लला की जै, लला की अमर कला की जै,
ओरछा राम लला की जै...।।

द्वितीय भाग - भानैजन कौ व्याव

कछू दिना के बाद, भओ तय भानैजन कौ व्याव।
कुंजा सें कई पति नें लैबे, भात ओरछे जाव।।
चली दतिया सें कुंजा बैन,
मदद जेठे भइया सें लैन,
ओरछा उनैं नेंवतौ दैन,
न बोलै मौं सें नृपत जुझार, करकें सुधि हरदौल कुँअर की-
सिर देहरी पे मार, बहनियाँ रोई है, न मेरौ कोई है।।१।।
करुणा करकैं कुंजा कै रई माया झूठी है।
भई निराश कैरई आस मायके की छूटी है।।
उठी रो-रो कर रई पुकार,
जियत न आईं तोरे द्वार,
आज सें नातौ खतम हमार,
बैरई आँखन अँसुअन धार, जब हरदौल कौ लखो चौसरा-
व्याकुल भई अपार, बहनियाँ रोई है, न मेरौ कोई है।।२।।
बैन तुमाई भइ अनाथनी, भइया भटक रई।
मारो मूँड़ चौंतरा सें तौ, 'आभा' नें जा कई।।

बैन सब चिन्ता छोड़ो आज।
ब्याव के साजौ उम्दा साज।
करूँगौ भानैजन की काज।।
नैबतो है हमखाँ स्वीकार, मड़वा भीत भात परस कैं,
करवाओ जेवनार, बहिन क्यों रोती है, दुखी क्यों होती है।।३।।
चाँउर धरे चौंतरा पे, घर बहिना गमन किया।
अँसुआ आँखन के नईं रुक रए भओ बेचैन जिया।।
बेरछा से आ गई बारात,
ममा हरदौल कराई पाँत,
किसी खौं नैनन नई दिखात,
बराती चहुँ दिशि रहे निहार, कन्यादान में पाँच गाँव दए,
वर के पाँव पखार, बैन घर आए हैं, काज सम्हाए हैं।।४।।
टेक ठान कें दूल्हा बैठो, कौर नईं टोरै।
जब लौं मामा दरशन न दें, कर दोइ जोरै।।
मचल कें बैठो, दरशन हेत,
नैंग ना और काउ सें लेत,
टेर लौरे मामा खों देत,
धरकें दूल्हा के आँगें थार, दओ नेंग हरदौल ललानें,
मच गई जै-जैकार, बैन घर आए हैं काज सम्हराए हैं।।५।।
भओ न अबलौं, और कभउँ न हुइए जा जावौ।
सबनें शीश झुका दाऊ खौं 'लोकदेव' मानौ।।
कोउ कें जब-जब होत ब्याव,
कात सब जाव आरछौ जाव,
नेवतो दैके 'लला' बुलाव,
बनकें मामा आते हरदौल,
ब्याव के सारे इन्तजाम
खुद कर जाते हरदौल
अचम्भौ भारी है - रीत जा जारी है।
परम्परा प्यारी है।।
धन्य बुन्देलखण्ड माटी, जी की खुशबू में बस गई जा,
सौंधी परिपाटी,
'शान्त' 'हरदौल लला' की जै, लला की अमर कला की जै,
ओरछा रामलला की जै...।।६।।

- १०/३०/२, इन्दिरा नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

पैरो जौ केसरिया बानो

- पं. राजकुमार पुजारी

पैरो जौ केसरिया बानो, जो अमूल्य है गानों।
अलगाववाद फैलो देशन में, कै रव सबई जमानों।
नफरत आपस में फैली है, ईखों तुम पैचानों।
वैभव ज्ञान इतै पैलऊँ सें, ग्रन्थन सोऊ बखानों।
तप उर त्याग की ओढ़ चूनरी, कछू करवै की ठानों।।

लग रई इज्जत दाव हमारी, देश की दशा बिगारी।
डूबे हते और डूबे फिर, कर्जा हो गओ भारी।
आतंकवाद की जड़े हैं गैरी, भ्रष्ट भये संसारी।
मैंगाई ने नसें टोर दई, कै रए नर और नारी,
रिश्ते अब नैंचे धन ऊपर, साँची कयें पुजारी।।

आओ सब मिल देश बनायें, नैतिकता अपनायें।
ईमानदारी सत्य अहिंसा, के ही हम गुन गायें।
पहरेदार बने हम वतन के, अपनो राष्ट्र बचायें।
आतंकवाद अलगाववाद उर, भ्रष्टाचार मिटायें।
नफरत की दीवार टोर कें भाई चारा लायें।।

भइया अपनी ओर निहारो, स्वारथ को जग सारौ,
हम हैं को काहे खों खाये, अपने मन में विचारौ।
नजर झुका कें तनक देख लो, मिल जे मुरली वारौ।
मन मोहन के दरशन करें, जीवन धन्य तुमारौ।
चौबीसई घंटा जो जग रऔ, ऊसें करो वतकारौ।।

- पुजरयाना, पृथ्वीपुर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

अपने बिरछन की का कइये?

- प्रभुदयाल श्रीवास्तव 'पीयूष'

बेरी- जी की बाट भीत दिन हेरी, फरी रसीली बेरी।
करत हती हरसाल अँगोंनी, आसों फरी अबेरी।
बन्न बन्न के पंछी जुर रए, खूँदे डारत देरी।
गदराने बेरन के लाने, सुआ लगा रए फेरी।
जल्दी जल्दी बीन लेव प्रभु, बेरा होत कुबेरी।

मउआ- मगरे पै बोलत है कउआ, चलौ बीनबे मउआ।
हम लयँ लेत निखन्नी पिरिया, तुम लै लेव गुटउआ।
करीं न चोंख जायें चोरी सें, उबराने कइ ठउआ।
अपने अपने सबइ बीन रए, बारी बरइ बरउआ।
उजर न जायें रखा लिइयौ प्रभु, नातर हुयै हँसउआ।

बर- ठाँड़े हैं फैला कें बइँया, दै रए सीतल छइँयां।
डारन डटे किलोरें कर रए, चिरवा और चिरइँया।
तपन हिया की हर लेती हैं, सीतल सुखद डरइँयाँ।
इनके तरें बैठबे सबकौ, मन लेबै ललचइँयां।
जो आ जायें सरन प्रभु इनकी, परबें चइँयां मइँयां।

बरिया- देखौ चलीं पूजबे बरिया, लै पूजा की धरिया।
धर हरदी चाँउर बरगोला, दूब फूल की पुरिया।
ईंगुर बूँदा पीरौ डोरा, अठवारीं उर चुरिया।
लाल दुपाइ लाल मौं हो रऔ, ओढ़ें लाल चुनरिया।
बर पूजत बर माँगत हे प्रभु, बर की बड़ै उमरिया।

- चित्रांश कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

महाराजा छत्रसाल द्वारा रचित रेखता

- उदयशंकर दुबे

पन्ना नरेश महाराजा छत्रसाल वीर योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ और कवि थे। उन्होंने अपने बाहुबल से बुन्देलखण्ड के एक विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार कर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। मुगल बादशाह औरंगजेब के जीते जी (वर्तमान रहते हुये) ही छत्रसाल ने उनके राज्य के कुछ भागों पर कब्जा कर लिया था। उनका पूरा जीवन संघर्षों की कहानी है। निरंतर युद्धों में रत होते हुये भी छत्रसाल ने अपनी प्रजा की सुख-सुविधा का ध्यान रखा। अपने राज्य के अन्तर्गत उन्होंने नये नगरों को बसाया, धार्मिक स्थलों, महलों और किलों का निर्माण कराया, स्थान-स्थान पर कूप, बावड़ी, तालाब बनवाने के साथ बाग-बगीचों को लगवाया। वीरसिंह के पश्चात् छत्रसाल ही ऐसे राजा हुये जिन्होंने बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक निर्माण कार्य कराया।

महाराजा छत्रसाल कवि हृदय थे। संघर्षमय जीवन में उन्होंने अपने हृदयगत भावों को कविता के माध्यम से प्रकट किया। भक्तिपरक रचनाओं के साथ ही उनके द्वारा रचे गये नीति-उपदेश परक छंद उपलब्ध हैं। महाराजा छत्रसाल के दरबार में कवि-पंडितों का जमघट लगा रहता था। छत्रसाल स्वयं कवि थे। तत्कालीन बुन्देलखण्ड में एक मात्र छत्रसाल ही ऐसे राजा थे, जिन्होंने कवियों पंडितों और अपने योद्धाओं को दोनों हाथों से संपत्ति प्रदान की थी। आज भी लोगों के पास दान या भेंट स्वरूप दिये गये ताम्रपत्र (दानपत्र) सुरक्षित हैं। संत अक्षर अनन्य ने छत्रसाल को विचक्षण ज्ञानी कहा है - 'क्यो तेति में सुपनो जगभासत, छत्र नरेस! विचच्छन ज्ञानी'' ऐसे विचक्षण ज्ञानी'' महाराज छत्रसाल की कविताओं का, श्री वियोगी हरि ने सर्वप्रथम संपादन कर प्रकाशित कराया था। यद्यपि उनके पूर्व चरखारी के राजा जुझार सिंह ने अपने पूर्वजों की यशः कीर्ति हेतु संवत् १९६६ वि. में चरखारी खास, प्रेस से छत्रविलास नाम से एक ग्रंथ छपवाया था। यह एक संग्रह ग्रंथ है। जिसमें महाराजा छत्रसाल रचित १. श्री राधाकृष्ण पचीसी, २. कृष्णावतार के कवित्त, ३. रामावतार के कवित्त, ४. रामध्वजाष्टक, ५. हनुमान पचीसी, ६. महाराज छत्रसाल प्रति अक्षर अनन्य के प्रश्न ७. दृष्टांती और फुटकर कवित्त, ८. दृष्टांती तथा राजनीतिक दोहा समूह संकलित हैं।

श्री वियोगी हरि जी ने उपर्युक्त ग्रंथों के साथ पन्ना राज दरबार पुस्तकालय से प्राप्त छत्रसाल रचित छन्दों को संपादित कर एक महत्वपूर्ण भूमिका सहित ग्रंथावली का प्रकाशन कराया था। इस ग्रंथावली में छत्रसाल द्वारा रचित द्रोपदी शतक के प्राप्त कुछ छंदों को भी रखा गया है। डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह ने अपने 'ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल ग्रंथ में श्री वियोगी हरि द्वारा संपादित छत्रसाल ग्रंथावली को यथावत प्रकाशित कर उसे सर्वसुलभ बना दिया है।'

बुन्देलखण्ड में हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों की खोज का कार्य करते समय मुझे दतिया में स्वर्गीय बाबूलाल गोस्वामी के संग्रह में महाराज छत्रसाल का बंदूक धारण किये हुये तेजस्विता पूर्ण चित्र देखने को मिला था। मेरे मित्र डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह उसी समय (सन् १९९२-९३ ई. में) महाराज छत्रसाल पर सामग्री संकलित कर रहे थे। वे इसी संदर्भ में दिल्ली से दतिया आये। मैं उनको साथ लेकर श्री गोस्वामी के पास (श्री बिहारी जी मंदिर) गया और उनसे छत्रसाल के चित्र को डॉ. महेन्द्र जी को उपयोग हेतु दे देने का आग्रह किया। श्री गोस्वामी जी ने वह चित्र श्री महेन्द्र जी को सहर्ष सौंप दिया जो उनके ग्रंथ ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल में प्रकाशित हुआ। डॉ. सिंह की पत्नी श्रीमती प्रतिभा सिंह चित्र निर्माण में अत्यंत दक्ष हैं। महाराज छत्रसाल के उक्त प्राचीन चित्र की अनुकृति उन्होंने परिश्रम पूर्वक तैयार कर हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद (उ.प्र.) को सहर्ष भेंट स्वरूप प्रदान किया जो आज हिन्दुस्तानी की शोभा बढ़ा रहा है। डॉ. महेन्द्र सिंह के ग्रंथ प्रकाशनोपरांत मुझे दतिया में ही मेरे एक साथी श्री कंठमणि बुधौलिया, अधिवक्ता, कुंजनपुरा दतिया, के संग्रह को देखते समय एक जीर्ण-शीर्ण पानी में भीगी हुई हस्तलिखित प्रति को पढ़कर आश्चर्य और प्रसन्नता हुई, कारण था, यह महाराज छत्रसाल की रचना थी। मैंने इस प्रति की प्रतिलिपि करने के लिये अलग रख दिया। चूँकि इसके पूर्व श्री बाबूलाल गोस्वामी जी के संग्रह में छत्रसाल का चित्र प्राप्त हुआ था, अतः इस प्रति की पूरी प्रतिलिपि तैयार करना उचित समझ कर मैंने पूर्ण प्रतिलिपि तैयार कर लिया। दतिया में ही एक छोटा सा प्रणामी मंदिर था जो अब भी वर्तमान है। इस मंदिर के दो कमरों में अंजाम प्रेस था जिसके संचालक श्री राजाराम वर्मा थे। ये अंजाम साप्ताहिक पत्र निकालते थे। मैं भी कभी-कभी दतिया के प्राचीन कवियों के विषय में टिप्पणी लिखकर अंजाम में प्रकाशनार्थ दे दिया करता था। मैंने श्री वर्मा जी से प्रणामी मंदिर की दमनीय स्थिति के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया कि पहले यह मंदिर धन-धान्य से सम्पन्न था। प्रणामी पंथ के लोग आया करते थे। इस मंदिर में भी हाथ की लिखी किताबें थीं जब मंदिर की देख-रेख करने वाली डोकरी (बुढ़िया) का स्वर्गवास हो गया तो मंदिर उजाड़ हो गया, जिसके हाथ जो लगा, वह उठा ले गये। संभव है, छत्रसाल के रेखता की प्रति प्रणामी मंदिर में रही हो और प्रणामी पंथ के किसी 'सुन्दर-साथी' ने प्रतिलिपि तैयार कर मंदिर में रख दिया हो। इस प्रति के उपलब्ध हो जाने से छत्रसाल की प्रेम लक्षणा भक्ति का पता चलता हैं। प्रति में प्राप्त 'रेखता' इस प्रकार है-

श्री गनेस जू नम्ह।।

श्री कृष्णाय नमः।।

अथ श्री महांराजाधिराज सत्रसाल.... सो लिष्यिते।।
रेषता वि.... भरि..... सषी आइ सबै परिहर....।।
पुकारे है हरी हरि हरि।.... तरस मेटौ दिलंदर के।।१।।
..................फिर। सम्हारि किरि परे।।.....।।'
अहो चाही जुही वेली। अहो माली... चमेली।।

जु तुलसी संग नित खेली। कहां है वे हिजू हेली।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटो दिल आँदर की।।६।।
अहो कालिन्द्र का प्यारी। कि हौ पिय अंग अनुरागी।।
कहौ किनि भेद हा हारी। लुके किनि कुंज वनमाली।।
मिहिर कै दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।७।।
सुदरसन सेवती षूझे। गुलाबन चंपकन बूझे।।
तुम्हैं कहुँ सामने सूझे। जिनौ सौ प्रांत आरुझे।।
तिमिर कै दै दरस प्यारे। तरस मैटों दिलंदर की।।८।।
विलोके सघन वन उपवन। न देखे स्याम सुन्दर घन।।
तमारे से चढ़े तन मन। अरे किति मित्र जीवन धन।।
मिहिर कै दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।६।।
सखी इक बीच मैं पाई। किसा तिहि आपनी गाई।।
कछु मुहि गर्व ना आई। वहीं सै छैल छुटकाई।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटो दिलंदर की।।१०।।
तहां तक लौं गई सिगरी। महातम रास जह मजरी।।
बिछोहे छोट सौ पजरी। मुरक जमनाइ फिरि डिगरी।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।११।।
भरे एते कपट कारे। इसी तैं होउबे कारे।।
मनमथ मनमथन वारे। किया ऐता कहर क्यों रे।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।१२।।
छबीले छैल रसकाइल। इतौ दुख क्यौं दिया दाइल।।
घुमाए ज्यौं घुमै घाइल। करी तेरे इसक माइल।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।१३।।
पुलिन पर ही सकल वेली। कि लीला हाव सौ खेली।।
सुहयौ कर कांम की चेली। बड़ी अनुराग अलबेली।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।१४।।
तजे का कुल तजे बाबुल। तुजै तक हम तजे बिलकुल।
तूं कीनी गोपका व्याकुल। तूं देखन कौ चसम आकुल।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।१५।।
सुनी है दीन मौ बांनी। हिया दिदार दिल जांनी।।
मिले सषियां निरख दानी। सु सूरत देख मन मांनी।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे।। तरस मैटी दिलंदर की।।१६।।
लखी छव सोहनी मितकी।। बुझानी तपन सब दिल की।।
रुचि रुच खेल गत नित की। जु अछिर ब्रह्म के हित की।।
मितिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैढी दिलंदर की।।१७।।
झनंकी घुंघुरू पाइन। टंनकी किंकिनी चाइन।।
भरी ब्रह्मंड धुनी झाइन। बताओ भेद सौं भाइन।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे।। तरस मैटी दिलंदर की।।१८।।
वहिस वढ वढिन ते हारे। उघट संगीत ततकारे।।
गतन भरभर परन पारे। बजे मंजीर ततकारे।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।१६।।
सरूपन प्रति सरवी दयौ दूयौ। परसपर करत छयौ-छयौ।।
गहीं रस मैं मगन ह्यौ ह्यौ। यहाँ आनंद प्रगट च्यो-च्यौ।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।२०।।

निरजे रास बंध मांडिल। किया भूषित यही मंजिल।।
थके नभ नषत सस (ससि) मंडिल। रहे मड सप्त सुर मंडिल।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।२१।।
मनौ घन दामिनी सोहै। वराक मनोज रत को है।।
विलोकत ही मनै मोहै। कहा उपमा न कवि ढोहै।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।२२।।
किती पुरहूत कित हूरै। सरीगत क्यौ करै चूरै।।
हंसैरो तांन मुख पूरै। सुरांगिन राग मद चूरै।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर थी।।२३।।
कबी मुख चंद उजियारी। खुली नग ज्याल झलकारी।।
मटकत त्यौं मुकट धारी। ताटक पंचम जु बलहारी।।
मिहिर कर दै दरस प्यारे। तरस मैटी दिलंदर की।।२४।।

रेखता दूसरी टेक के -

इलाही नूर कौ आला। इसक है कहर का प्याला।।
पियै मंमद मस्त मतवाला। कि दरसै इंसक हकताला।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर जु उझकनाक।।१।।
परे दानैन के बरबस। कि झारे काम के तरकस।।
दहे सब अंग बिन आतस। करौ क्या दिल हुआ बेबस।।
कहा मैमत छके छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।२।।
कठिन है प्रेम का पीना। रहै बस अपनै जी ऊना।।
जलै भर आहि सै सीना। कलेजा करकसा कीना।।
कहा मैमत छके छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।३।।
सहज गिरनेर से गिरना। सहज दरियाउ का तिरना।।
सहज है सूर का भिरना। सहज असधार पै फिरना।।
कहा मैमत छकै छव सौ। छका तौ फिर नु छकना का।।४।।
दरस की जिकर लागी है। फिकर सौ भूक भागी है।।
विरह की ज्याल जागी है। कि जालिम इसक आगी है।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।५।।
अकल सब आपनी खोयैं। न नैना नींद भर सोवैं।।
कहै है हाइ कर रोवै। कि दिल महबूब मुख जावै।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।६।।
जू धर सौ सिर उतारै। जु सिर विनि पागु धारै।।
जु विन सिर धर समारैगा। जु घर-घर आग वारैगा।।
कहा मैमत छकै छव सौ। छका तौ फिर उझकना का।।७।।
लसै महबूब की मूरत। गरूरी मैन की चूरत।।
सोहाई सोहनी मूरत। जू आसिक आहि कौ पूरत।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।८।।
कि मुख महताब उजियारी। कि जुलफै नागिनी कारी।।
कि है दो नैन के भाले। करेजै साल से साले।।
कहा मैमत छकै छब सों। छका तौ फिर उझकना का।।६।।
कि अबरू-अबर दो बंजर। करे पुरजे कतल मंजर।।
किया है जलम तन जंजर। हुआ है मास बिन पंजर।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१०।।
लिया मजनू इसक लाहा। कि इक हक रूप रस चाहा।।

कि लैलै लैल दिल दाहा। बुलाद्दी खल्क मुख आहा।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।११।।
हुआ हाफिज मुलक जाना। कि इक हक तलवा मसताना।।
कि दुनिया दुंद करमाना। जुतै इनसान यह आना।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१२।।
तरीका इसक दा जालिम। किसा मनसूर का मालिम।।
चड़ा सूरी हुवा सालिम। जु आसिक इसक मैं आलिम।।
कहा मैमत इकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१३।।
न जानै और बिन मोमिन। इसक दी राह जानी जिन।।
पपीहा से रटै निसि दिन। चकोरा तिसि चहे चांदन।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१४।।
पतंगी जोत ज्यों झंपै। न आसिक मरन कौ कंपै।
न मुरसद सरम मै चंपै। कि मुख सै तुहीं तुहीं जंपै।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१५।।
जिन्हीं आलम इलम दाना। जिन्हीं महिबूब पहिचाना।।
इलाई कहरसा माना। तिनी जग जहर कर जाना।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१६।।
कही यह मत्त जो बांनी। पुरान कुरांन पर मांनी।
निसानी नेह की जानी। कि आसिक दिल अवा दानी।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१६।।
सुनै सतगुर वचन संचे। कि काका कुकर तै वंचै।।
पछेले पंथ सब कचे। जु पंचम इसक दिल पके।।
कहा मैमत छकै छब सौ। छका तौ फिर उझकना का।।१८।।

रेखता तीसरी टेक के -

पाहिल कछू सहल सा जाना। अलहि दिल इलम मसताना।।
छका छवि हाक मत माना। दिया मासूक द्रग धाना।।
जिसै बीती वही जानै। कहे ते कौन मानैगा।।१।।
द्रगौ सै जदि हियै आया। मदन ऊँचा टसर लाया।।
अवा सा तेई तन तापा। न रोया जाइ नहिं गाया।।
जिसै बीती वही जानै। कहे ते कौन मानैगा।।
भुलानौ खान अरु पाना। मुसिकिल पंथ पहिचाना।।
भला था जिहिर का खाना। बुरा है इसक जुल साना।।
जिसै बीती वही जानै। कहे ते कौन मानैगा।।३।।
हुआ वर विरह दुत पीरी। न आवै नींद ढुक नीरी।।
पलक ताती पलक सीरी। पलक पल माझ पल जीरी।।
जिसै बीती वही जानै। कहे ते कौन मानैगा।।
हुआ गरकाब जब तोमै। रहा नहि भेद दिल दो मैं।।
कहा का ब्याल कित कोमैं। तुही बाहिर तुही मो मैं।।
जिसे बीती बही जानै। कहे से कौन मानेगा।।५।।
मिला जब रंग मै पानी। तजी तब आपनी सानी।।
गहै उस रंग की बानी। इसारत जानि यौ जांनी।।
जिसे बीती वही जानै। कहै सै कौन मानेगा।।६।।
निमष की षांन जो डूबै। जो होवे निमष आरुबै।
जिसै बीती वही जानै। कहे सै कौन मानैगा।।७।।
उडै ज्यौं कीट लै भ्रंगी। करै तिह आपु सौ रंगी।।
मिलै जब अैसा सतसंगी। करै अर वाह सो चंगी।।
जिसै बीती वही जानै। कहै सै कौन मानैगा।।८।।
हो तिल सुमन खुस वोई। कहां वा फिर इसम सोई।।
मुहबति गत इसी होई। कहौ को एक क्यौ दोई।।
जिसै बीती वही जानै। कहे सै कौन मानैगा।।६।।
किह कही जिन्हों गाया। उड़ाई ख्याब की माया।।
जिन्हों कह इस्क यह पाया। उन्हैं वह पंथ बतलाया।
जिसै बीती वही जानै। कहे सै कौन मानैगा।।१०।।
करी जिन दूर मगरूरी। कि जिनि कुल कांन चक चूरी।।
खलक मुख डार कै धूरी। लई जिन प्रेम मगरूरी।।
जिसै बीती वही जानै। कहै सै कौन मानैगा।।११।।
जिसै सब जगति आधीना। प्रबल पंचम जु परबीना।।
सु पंजा सिंग सिर दीना। इल्म दे आपना कीना।।
जिसै बीती वही जानै। कहे तै कौन मानेगा।।१२।।

रेखता चौथी टेक के -

सुरंगी सीस पै पगिया। कलंगी परम मन ठगिया।।
जवाहर जोत जगमगिया। कि आसिक चित्त कौ ठगिया।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१।।
तुही मन चिंमन जुबजारी। कि मुख पर मोह छब वारी।।
जुलफै नाग ह्वै कारी। कि मुज पर लहर सी डारी।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।२।।
कसीसै भौंह कों भर कै। कि मारे नैन सर करकै।।
सकौ धीरज न अब धरकै। परे वर नीर द्रग ढरकै।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तू मेरा।।३।।
लटकनी लटक तैं चालै। कि नथनी नाक मै हालै।।
कि नेजे नजर के घालै। न बूझै तूं मेरे हालै।।
अरे मासूक बेदरदी। किया तू का हाल तूं मेरा।।४।।
गया मग भूल चहुंधाका। परा मुसक्यात का डांका।।
कि ले सर पंच दल हांका। लुटा मों दिल सहर बांका।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तू मेरा।।५।।
कटाछों छैद कर सीना। कि नाहक दरद क्यों दीना।।
हुवा ज्यौं आब बिन मीना। गुनाहा ना कछू कीना।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तूं मेरा।।६।।
किया तूं खलक कौ रोसन। कि बंदा मोह जन सोसन।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तू मेरा।।७।।
बढ़ी चित चाह दिल भर की। करेजें कर्क सी कर्की।।
गई सुध भूल सब घर की। सम्हार न रही कछू घर की।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तूं मेरा।।८।।
जला हौं विरह तेरे सौं। डरौं इस जग बखेड़े सौं।।
बचौं क्यौं इस्क घेरे सौं। जियौ तुव मैं हेंरडे सौं।।
अरे मासूक बेदरदी। किया का हाल तूं मेरा।।६।।
अरे मिहबूब गुल प्यारे। तुसी जग जोत उजियारे।।
दरस दै नैन के तारे। परे घाइल तेरे मारे।।

अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१०।।
तुझै मैं रैन दिन गाया। मुझे जूं ताव सौं ताया।।
तुझै टुक दरद न आया। विछोहा कहा फुरमाया।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।११।।
परी कुल कांन को गरदी। चढ़ी मुह इस्करी जरदी।।
हुवा तन हाल ज्यौं हरदी..........................।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१२।।
मुजै तूँ रैन दिन खटकै। कि उर पर नीर भरि ढरिकै।।
कि थर थर थर थरा थरकै। न छाती बज्र की दरकें।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१३।।
कहा हम ख्वाब कर जानै। हमें ख्याबी न पहचानै।।
हुये हम इस्क मस्तानै। कहै सब लोग दीवानै।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१४।।
जहूदों के गिले गेले। हमेसा कहर झर झेले।।
जु इस्की मार्ग तजि खेले। तू सरियत पंथ बग पेले।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१५।।
कहर दे दहर की बाजी। करैगा किया कजा काजी।
मेरा दिल हक सै राजी। हसैगा क्या हमै पाजी।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१६।।
कि महदी बाध सिर वानै। सुनाए बांच फरमानै।।
लरवाये नूर मक्का नै। नहीं अब और मन मानै।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल मेरा।।१७।।
जगी अरवांन जो सोई। पिया की सूरत कर रोई।।
मिलावा मूल का होई। कहां हम लाज सी खोई।।
अरे महबूब बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१८।।
प्यारे प्रैम छकि परतीं। उसासी हाइ की भरतीं।।
बिछुरना जरन सी जरतीं। जुगिर मुरछयाइ ज्यौं परतीं।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।१६।।
जु पंचम इस्क दिल पके। उसी महबूब छबि छके।।
गदेले कुकर के धके। कि दरिया लहरि के नके।।
अरे मासूक बेदरदी। किया क्या हाल तूं मेरा।।२०।।

- अपूर्ण प्रति

प्रति अपूर्ण एवं प्रारंभ में पानी पड़ जाने से यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह प्रति कहाँ पर लिखी गई और लिपिकार कौन था। रेखताओं में पंचम नाम मिलता है और ग्रंथारंभ में महाराजा छत्रसाल का नाम लिखा है। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या छत्रसाल ने पंचम नाम से रेखताओं को लिखा या किसी पंचम नामक कवि ने रेखता लिख कर उसे महाराजा छत्रसाल को समर्पित कर दिया। इस ग्रंथ की दूसरी प्रति बहुत खोज करने पर भी उपलब्ध न हो सकी। इन रेखताओं के भावों से तो यही लगता है कि यह छत्रसाल द्वारा लिखे गये हैं। 'रेखता' फारसी का शब्द है। हिन्दी शब्द सागर में इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है -

रेखता - संज्ञा पु. (फा.) - अरबी, फारसी, तुरकी आदि के शब्दों से मिश्रित प्रारंभिक उर्दू के पद्य।'' बुन्देलखण्ड के अधिकांश रीतिकालीन कवियों ने 'रेखता' लिखा है जिनमें रसनिधि, भगवतरसिक, भारतशाह आदि कवियों रेखता लिखा है। स्वामी श्री भगवत रसिक जी तो छतरपुर में ही रहते थे। उन्होंने अपने अनन्य रसिकाभरण ग्रंथ में पांच प्रकार के रेखता परिनिष्ठित भाषा में लिखा है, यथा - रेखता, केसी, रेखता-परतो, रेखता-मन रंजन, रेखता मदन मोद, और रेख विधु वदनी। भगवत रसिक कृत एक रेखता उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत है -

रेखता मनरंजन -

कर नेह नैन लगाइ कै फिर मान करना किन वदा।
तजि रोस दोस लगाइबो सजि मोदमय मंगल सदा।
अपराध बिन अपराध धरबौ सीख तौ यह किन दई।
धर ध्यान गति मुख मीन बैठी मनहु कुउ जोगिन नई।
रसरीति प्रीति प्रतीत विसरी कठिन कुच संगति किये।
यह जानि अब परसी नहीं लगि जाइ कहु मेरे हिये।
सुनि वैन आतुर नैन फेरे रसिक भगवति यौ कही।
हसि कंचुकी बंध खोलि लिपटी मनहु घन दामिनि लपटी।।

- अनन्य रसिका भरण, छंद सं. ३

काशी के रामरंगकवि ने बाल्मीकि आभास रामायण का शुभारंभ रेखता से ही किया है -

राग अहंत ताल छंद रेखता -

गनपति के चरन पूज लाल चंदन दूब सों।
सुभ काज करन सिद्धि बुद्धि घरुणि सों।।१।।
वानी वचन विसाल औ रसाल रसभरी।
दिल में करो खुशमाल शब्द जाल ख्याल सों।।२।।

महाराज छत्रसाल, स्वामी प्राणनाथ के शिष्य थे। उन्हीं के आशीर्वाद से छत्रसाल को राज्य, धन-धान्य, वैभव प्राप्त हुआ था। प्राणनाथ द्वारा प्रवर्तित प्रणामी पंथ को छत्रसाल ने स्वीकार कर लिया था। उसके प्रचार-प्रसार में पूर्ण योगदान किया था। दूसरी टेक के रेखता की दो पंक्तियों को पढ़ने से तो यही प्रतीत होता है कि ये रेखता छत्रसाल द्वारा लिखे गये हैं -

कही महमत्त जो बांनी। पुरान कुरान पर मानी।
निसानी नेह की जानी। कि आशिक दिल अवादानी।

महामति प्राणनाथ की रचना कुलजम स्वरूप सर्वधर्म समन्वय का आदर्श ग्रंथ है। छत्रसाल एक कुशल कवि थे। उनका दरबार कवियों से भरा था। छसाल ने जहाँ अन्य ग्रंथों की रचना की वहीं पर उन्होंने उस युग में प्रचलित 'रेखता' की भी रचना की होगी। विद्वानों और अनुसंधित्सुओं को इस पर विचार करना चाहिए जिससे पंचम शब्द का सही रूप से निराकरण हो सके।

- ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया, जिला मिर्जापुर (उ.प्र.)

सूर्य विग्रह का विकास और छतरपुर का सूर्य मंदिर

- राकेश व्यास

अपने पुरातात्विक और आध्यात्मिक महत्व को सहेजे, विशाल भवनों के पीछे छुपा, अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था के बाद भी गौरवशाली, खड़ा है छतरपुर का सूर्य मंदिर। शायद बहुत लोग वहां जाते भी न होंगे, न दर्शन के लिये और न ही अध्ययन के लिये। जैसा कि विज्ञ पाठक जानते ही होंगे कि बुन्देलखण्ड में सूर्य पूजा का महत्व प्राचीन काल से ही रहा है और यही कारण है कि यहां पर सूर्य विग्रहों या चक्रों वाले अनेक मंदिर पाये गये हैं। खजुराहो के मंदिरों में स्थापित सूर्य विग्रहों पर पर्याप्त लिखा गया है और बुन्देलखण्ड के सूर्य मंदिरों पर भी जानकारी उपलब्ध है, पर इनमें स्थापित सूर्य विग्रहों पर और अधिक चिन्तन की आवश्यकता है। भारत में मूर्तिकला का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है और यहाँ के मनीषियों ने मूर्ति विज्ञान पर पर्याप्त लिखा है। भारतीय मूर्ति विज्ञान में वैदिक दार्शनिक सिद्धान्त और पौराणिक कथानकों को मूर्ति शिल्प का आधार बनाया गया है। अनेक मनीषियों का मत है कि कला चार चरणों में विकसित होती है। ये चरण, प्रारम्भिक या प्रिमिटिव, उत्कर्ष या क्लासिकल, पाम्परिक या रोकोको तथा यान्त्रिक या मेकेनिकल माने जाते हैं। अब प्रश्न यह भी उठता है कि भारतीय मूर्ति कला के सम्बन्ध में किस काल को इसके उत्कर्ष का माना जाये और किसको पारम्परिक या यान्त्रिक्। यदि उत्तर या दक्षिण भारतीय मूर्तियों को ध्यान से देखा जाये तो पता पड़ता है कि मूर्ति विज्ञान पर अनेकों ग्रंथों और सिद्धान्तों के बाद भी कलाकार कहीं न कहीं अपनी छाप स्पष्ट रूप से छोड़ देते हैं तथा वे अपनी रचनाशीलता और कल्पना को भरपूर अभिव्यक्ति दे पाते हैं। अब यदि सूर्य विग्रह को ही देखें तो विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग वैदिक और पौराणिक कथानकों को शिल्पियों ने अपनी मूर्तियों में अभिव्यक्त किया है।

सूर्योपासना की परम्परा हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन है, ऋग्वेद में आता है ''सूर्य आत्मा जगत्स्वस्थुषश्च''। सूर्य प्रथम आदित्य है और एकमात्र प्रत्यक्ष देव भी, इसीलिए सूर्य और विष्णु दोनों ही आदित्य शब्द से अभिहित हैं। सूर्योपनिषत में सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का ही रूप माना गया है - 'एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः'। वैदिक आर्यों के प्रधान देवता इन्द्र थे, जो कि पराक्रमी थे; कालान्तर में यह स्थान सूर्य को मिला जो कि प्रकाश का प्रतिनिधित्व करते हैं और प्रकाश आध्यात्मिक गुण का परिचायक है। यह परिवर्तन पराक्रम पर आध्यात्म की विजय के रूप में ही देखा जाता है। ईसवी काल गणना प्रारम्भ होने से पहिले ही सूर्य देव की पूजा प्रतीक चिन्हों, चक्रों आदि के रूप में आरम्भ हो चुकी थी। पुरातन सिक्कों और मुहरों पर ये प्रतीक चिन्ह अंकित मिलते हैं। वैदिक युग के सूर्य देव रोग एवम् विष निवारक हैं, इनकी शारीरिक रोग निवारण की सामर्थ्य का वर्णन अनेक ऋचायों में मिलता है। भविष्य पुराण की एक कथा के अनुसार साम्ब के कुष्ठ रोग निवारण हेतु शकद्वीप से मग ब्राह्मणों को द्वारिका बुलाया गया था। ये सूर्योपासक ब्राह्मण थे जिनका उल्लेख प्राचीन ईरान के धार्मिक इतिहास में भी आता है। साम्ब ने विधिवत सूर्य मंदिर की स्थापना कराई। इस पौराणिक कथानक का महत्व यह भी है कि यह चौथी शताब्दी ईसा पूर्व का माना जाता है। वराहमिहिर ने भी प्रतिमाप्रतिष्ठापन में सूर्य देव की प्रतिमा की प्रतिष्ठा का अधिकारी मग ब्राह्मणों को ही माना है। बौद्ध और जैन परम्परा में भी सूर्योपासना देखी जाती है, यही कारण है कि भाजा, महाराष्ट्र के बौद्ध गुफा मठ और जैन मतावलम्बी अनन्त गुफा, उड़ीसा में सूर्य का अंकन मिलता है।

ऐसा लगता है कि चार-पांच सदी ईसा पूर्व में ही सूर्य विग्रह के निर्माण और स्थापना के प्रति विशेष लोकरुचि प्रारम्भ हो चुकी थी और इसे राजकीय प्रश्रय प्राप्त था। अब सूर्य विग्रह की बात करें तो उत्तर और दक्षिण भारत के विग्रहों में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। दक्षिण भारतीय शैली का ही अनुसरण श्रीलंका में भी होता दिखाई देता है। उत्तर भारतीय शैली में किसी कारणवश सूर्य विग्रह में चरणों व पैर के नखों का दिखाई देना अशुभ माना गया जबकि दक्षिण भारतीय शैली में गढ़ी गई स्थानक प्रतिमाओं में चराण अनाव्रत दिखाये गये हैं। एक और विशेषता जो दक्षिण भारतीय शैली को अलग करती है वह है - उदरबंध। श्रीलंका के एक सूर्य विग्रह में उदरबन्ध के साथ घुटनों तक के उपानह भी बनाये गये हैं।

वराहमिहिर ने सूर्य प्रतिमा का वर्णन करते हुए लिखा है कि इसके नासिक, ललाट, उरु, जंघा और वक्ष उन्नत होने चाहिये। वेष उदीच्य और पाद से उदर तक का भाग ढंका हुआ होना चाहिये। इसके दोनों हाथों में कमल, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में माला तथा स्मितयुक्त प्रशन्न मुख बनाने चाहिये। वराहमिहिर के अनुसार एक हाथ ऊँची प्रतिमा शुभ, दो हाथ की धन देने वाली और तीन हाथ की प्रतिमा क्षेमं और सुभिक्ष के लिये होती है। इन्होंने रथारूढ़ सूर्य, सारथी, अश्व, प्रतिहार आदि के बारे में कुछ नहीं लिखा है। सूत्रधार मंडन द्वारा लिखे गये ग्रन्थ रूपमन्डन में सूर्य को नवग्रहों में प्रथम और प्रधान ग्रह के रूप में स्थान दिया गया है। सूर्य सभी लक्षणों से युक्त, आभूषणों से विभूषित, मस्तक पर किरीट तथा श्वेत कमलधारी दो भुजाओं वाले बनाने चाहिये। पाप का नाश करने वाले सूर्य के स्वरूप को वर्तुल बिम्ब के मध्य बनाना चाहिये। सूर्यदेव को सात घोड़ों वाले

रथ पर आरूढ़ करना चाहिए। प्रायः सूर्य देव के दो प्रतिहारों दन्डी और पिंगल का वर्णन मिलता है पर मंडन ने आनन्द, अन्तक को प्रथम दो की भांति मुख्य प्रतिमा के दायें-बायें तथा चित्र, विचित्र, किरणाक्ष और सुलोचन को मंदिर के चार द्वारों पर स्थान दिया है। ईसा पूर्व की सूर्य प्रतिमायें प्रायः चार अश्वों द्वारा चालित रथ पर आरूढ़ बनाई गयी हैं। गंधार से ऐसी ही एक प्रतिमा प्राप्त हुई है, वहीं मथुरा से प्राप्त स्थानक प्रतिमा में घुटने तक के उपानह बनाये गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल में सूर्योपासना को एक नवीन दिशा मिली और इसका प्रचार-प्रसार हुआ। हूण शासक तोरमाण भी सूर्य भक्त था, उसकी मुद्राओं और सिक्कों पर सूर्यचक्र अंकित था। इसने अपने पुत्र का नाम भी मिहिरकुल रखा था, जिसका सीधा सा अर्थ सूर्यवंश होता है। मुल्तान में इसने एक सूर्यमंदिर का निर्माण कराया था और इसके ग्वालियर के एक लेख में भी मंदिर निर्माण का वर्णन मिलता है। सूर्यदेव के विग्रह के साथ ही मिलने वाली अन्य प्रतिमाओं और उनके महत्व की जानकारी भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मुख्य प्रतिमा के पाश्र्व में उनकी पत्नियों ऊषा और प्रत्यूषा को गढ़ा जाता है। कहीं-कहीं इनके नाम ऊषा और संज्ञा भी मिलते हैं। प्रतिहारों में दंडी और पिंगल को विशेष स्थान प्रायः सभी मंदिरों में मिलता है, पर अन्य प्रतिहार सब जगहों पर नहीं देखे जाते हैं। ईसा के बाद की सदियों में बनी प्रतिमाओं में रथ में चार के स्थान पर सात अश्व और सारथी अरुण दिखाई पड़ते हैं। सूर्य की रोग विनाशक क्षमता को अनेक स्थानों पर उल्लिखित किया गया है। प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान के लेखक वासुदेव उपाध्याय के अनुसार बारहवीं सदी की गड़हवा की प्रतिमा के पार्श्व में अश्विन (अश्वमुख) की आकृति खुदी है, जो कि घट लिये हुये हैं। अश्विनीकुमार देवताओं के चिकित्सक माने जाते हैं। गुप्तकाल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक पूरे भारत में अनेक अद्वितीय सूर्य मंदिरों का निर्माण हुआ। जिनमें कश्मीर में मट्टन तीर्थ का मार्तण्ड मंदिर, कोणार्क, ओसियां, धौलपुर, हिसार और खजुराहो के मंदिरों का सम्बन्ध सूर्य पूजा से रहा। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी पुरातन मंदिरों में नवग्रहों के साथ या स्वतंत्र रूप से सूर्य विग्रह प्राप्त होते हैं। इन मंदिरों एवम् इनमें स्थापित विग्रहों के अध्ययन से हमें तत्कालीन आध्यात्मिक दर्शन, मूर्तिशिल्प और मंदिर के निर्माणकर्ता के प्रयोजन का पता चलता है।

छतरपुर के सूर्य मंदिर का शिखर पूरी तरह ढह चुका है और सामने का अलिंद भी अभी का बनाया हुआ लगता है। गर्भगृह के द्वार पर सजावट का पूर्ण अभाव है, पर द्वार के शीर्ष पर एक विशिष्ट चिन्ह दिखाई देता है। मेरे अनेक प्रयासों के बाद भी सूर्य मंदिर के द्वार पर ऐसे किसी चिन्ह का उल्लेख कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। परन्तु यह प्रतीक चिन्ह अवश्य ही महत्वपूर्ण लगता है क्योंकि मूर्तिशिल्प में विग्रह की अभिव्यक्ति उसके विशेष चिन्ह से भी होती है, जैसे कि विष्णु के लिये स्वास्तिक, शिव के लिये त्रिशूल, ब्रह्मा के लिये कमण्डलु और लक्ष्मी के लिये श्रीफल्। इस विषय पर और शोध आवश्यक है। मंदिर के गर्भगृह में सूर्य विग्रह सामने की दीवार से टिका कर स्थापित किया हुआ है। एक ही शिलाखंड से गढ़े गये इस विग्रह को त्रिआयामी प्रभाव दिया गया है, जिससे लगता है कि एक पीठ पर मूर्ति को टिकाया गया है। पार्श्व में सहायक मूर्तियां, उनके महत्व के क्रम में खोदी गई हैं। यहां पर स्थापित स्थानक सूर्य विग्रह अवश्य ही तीन हाथ ऊँचा है और यदि वराहमिहिर के मन्तव्य को मानें तो यह मंदिर राज्य में शुभ और सुभिक्ष की कामना के लिये ही स्थापित किया गया होगा। एक विग्रह एक शीश और दो हाथों वाला बनाया गया है। दोनों बाजू चूंकि तोड़ दिये गये हैं, इसलिये हाथों में लिये हुये कमलपुष्प अब दिखाई नहीं दे रहे हैं, पर ऊपर की ओर उठे हुये हाथों में अवश्य ही कमल पुष्प रहे होंगे। विग्रह के शीष पर किरीट, कानों में कुंडल और बाहु में केयूर स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। किरीट और अन्य प्रसाधनों में भारतीयता है, विशाल नेत्र, उठी हुई नासिका और चिबुक अत्यन्त आकर्षक दिखाई पड़ रहे हैं। शरीर सुगठित है, चेहरा भरा-भरा है और दृष्टि सीधे सामने की ओर है, जैसा कि भक्त को आशीर्वाद देने को सदा तत्पर है। गले में अति सुगढ़ दो स्वर्णाहार और नाभि के नीचे तक जाती एक पुष्पमाल है। कमर में रत्नजटित मेखला और कमर के नीचे अन्य आभूषण हैं। पैरों में उपानह हैं, जो अवश्य ही ईरानी शैली के हैं। पैरों की उँगलियाँ दिखाई नहीं पड़ रही हैं। विग्रह उदीच्य वेष में है, ऊपर का शरीर भी अँगरखे से ढँका हुआ है तथा पीठ के पीछे से आता हुआ दुपट्टा दोनों कुहनियों के ऊपर से होकर नीचे की ओर लटक रहा है। यहाँ की एक और विशेषता यह है कि शीर्ष के पीछे का प्रभामंडल सूर्याकार है।

सूर्य भगवान अश्वों द्वारा खींचे जा रहे रथ पर खड़े हुये हैं, सामने उनके सारथी अरुण खड़े हैं। यहां पर जो विशिष्टता है, वह है रथ में बारह अश्वों का जुता होना। ईसा पूर्व की मूर्तियों में चार और बाद में सात अश्वों द्वारा खींचा जाता हुआ रथ बनाया गया है। यहां पर पांच अश्व सामने और सात उनके पीछे दिखाई दे रहे हैं। बारह अश्वों द्वारा रथ का खींचा जाना अद्भुत है और शायद कहीं और ऐसा नहीं है। सात अश्वों से सप्ताह के सात दिनों का सूर्यरश्मि के सात रंगों का अर्थ लिया जाता है। यहां पर बारह अश्वों से मूर्तिकार का तात्पर्य वर्ष के बारह महीनों से हो सकता है क्योंकि एक वर्ष में सूर्यदेव बारह राशियों में प्रवास करते हैं। अरुण के दोनों ओर एक पुरुष और एक स्त्री घुटने के बल बैठे आराधनारत दिखाई देते हैं। प्रायः मंदिर बनवाने वाले राजा-रानी या श्रेष्ठी और उसकी पत्नी को इस प्रकार से नमन करते बनाया जाता था। इनके पार्श्व में दायें ओर ऊषा और बायें

ओर प्रत्यूषा खड़ी हैं। इनकी भाव-भंगिमा मोहक है, गले में कंठा और हार है, कमर में करधनी है, कलाई में कंगन और बांह में बाजूबन्द पहने हुये हैं। दोनों की त्रिभंगी मुद्रा में अनुपम लास्य हैं। सूर्य देव की ओर वाले हाथ में उन्होंने दंड लिया हुआ है और दूसरा हाथ अपने घुटने पर रखा हुआ है। ऊषा के पीछे सूर्यदेव के प्रतिहार दंडी खड़े हैं और प्रत्यूषा के पीछे पिंगल खड़े हैं। दंडी की पूरी वेषभूषा ईरानी है, सर पर ऊँचा टोप और नुकीली दाढ़ी है। ये अपने एक हाथ में कलम और दूसरे में मसीपात्र लिये हुये हैं। दूसरी ओर पिंगल की वेषभूषा भारतीय है, उनके सर पर मुकुट, गले में माला, कलाई में अक्षमाल और एक हाथ में दंड है। इनके पीछे दोनों ओर दो अश्वमुख पुरुष खड़े हैं, जो कि देवताओं के चिकित्सक अश्वनीकुमार हैं। इनके सर पर मुकुट और गले में अक्षमाल है। सूर्यदेव के रोगनाशक विग्रह के साथ इनका होना उचित ही है।

अश्विनीकुमारों के शीर्ष पर बैठे हुये हाथी बनाये गये हैं, जिनका मात्र आगे का भाग दिख रहा है। सूर्य विग्रह के साथ अन्य स्थानों पर भी हस्ति या केवल हस्तिसुंड मिले हैं और विद्वानों की राय है कि ये सूर्य के साथ हस्त नक्षत्र के सम्बन्ध को दर्शाते हैं। वैसे भी भारतीय मूर्तिशिल्प में हस्ति सौभाग्य और वैभव के द्योतक हैं। इनके ऊपर दोनों ओर काल्पनिक जीव शरभ बनाये गये हैं। जो कि उत्तर से दक्षिण तक, सभी कलात्मक मंदिरों में देखे जाते हैं। इनके ऊपर दोनों ओर गन्धर्व नृत्यरत और वीणा वादन करते हुये बनाये गये हैं। यद्यपि ऊपर के इस भाग में तोड़-फोड़ अधिक हुई है पर लगता है कि दो किन्नर पुष्पमाल लिये हुये माल्यार्पण हेतु तत्पर हैं। अन्य गौण प्रतिमाओं को छोड़कर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विभेद जो यहां दृष्टिगोचर होता है वह है सूर्यविग्रह के शीर्ष पर और उसके दांयें-बायें, तीन चतुर्भुजी आसन्न प्रतिमायें। यद्यपि इन प्रतिमाओं पर तोड़-फोड़ और समय का असर अधिक हुआ है, पर उनके आयुध और वेष-भूषा के आधार पर लगता है कि ये ब्रह्मा, शिव और विष्णु ही हैं। दांयीं ओर दाढ़ी और ऊँचे टोप जैसे शिरोवस्त्र वाले ब्रह्मा, बीच में त्रिशूल और सर्प लिये हुये शिव की बाईं ओर किरीट और चक्र के कारण विष्णु ही हो सकते हैं क्योंकि जैसा मैंने पहले भी लिखा है कि सूर्योपनिषत के अनुसार 'एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः', ये सभी एक हैं। ऐसा भी हो सकता है कि मेरे ऐसा सोचने से कई विद्वतजन सहमत न हों, पर यदि इससे नये शोध को दिशा मिलती है और सत्य उजागर होताहै तो मुझे अतिप्रसन्नता होगी। पर यदि मेरा सोचना सही है तो यह बात ही छतरपुर के इस सूर्यमंदिर और इसकी रचनाशीलता को दूसरों से भिन्न और अद्वितीय बना देगी।

जो हो, इतना तो स्पष्ट है कि मूर्तिकला के उत्कर्ष का प्रतिनिधि, सूर्यदेव का यह विग्रह रोगनाशक, क्षेमकारक, सौभाग्य और वैभव देने वाला है। जैसा कि मूर्तिकला के सूत्रकारों का मन्तव्य है, वैसी ही शिल्कार की कल्पना और कला की पाषाण में अभिव्यक्ति का एक अनूठा उदाहरण है।

- द्वारा विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास, नरसिंहपुरवा, छतरपुर

मेरे घरै धंधक रई होरी

- पं. रतिभानु तिवारी 'कंज'

उनकें रोजउं मनें दिवारी, मोरे घरै धँधक रइ होरी।
उनकी पौर अटारी हँस रइ, सूनी डरी टपरिया मोरी।।

वे तौ हलुआ रबड़ी सूँटें, दूध धरें कुत्ता नौंरा खौं।
अदपेटां सोबें हम रोजऊँ, तरस रए कौरा कौरा खौं।।
उनकी मटका कैसी थोंदें, मोरी सब हड़ँवार दिखा रइ।
पिचकौ पेट बैठ गय चबुआ, किलकोंटन की उनें सुजा रइ।।
कछू बुलक रय मोंन भोग में, कै रइ ती कलुआ की ओरी।
उनकें रोजउं मनें दिवारी, मोरे घरै धँधक रइ होरी।

उनके घर में सूरज ऊँगौ, मोरे घरैं लगी लौलइयाँ।
सागर ऐंन हिलोरें लैरव, रीती सूकी डरी तलइयाँ।।
बड़ी बड़ी नदियंन कौ पानूँ, सबरौ ओजू जेइ अचै गय।
हमें चुरू भर जुरौ न पीबे, हम प्यासे के प्यासे रैगय।।
मोरे रीते डरे कुठीला, बेतौ गाड़ें धरें तिजोरी।
उनकें रोजउं मनें दिवारी, मोरे घरै धँधक रइ होरी।

धरमराज रीने से बैठे जुरजोधन गरजें ललकारें।
द्रोणाचार्य उसाँसें लैरय सोचें औ लाचार विचारें।
चीर दुःशासन खैंचै रोजऊँ, द्रोपदि ठांड़ी गलयारे में।
भीम नकुल झपनी सी डारें, अर्जुन दुकत फिरें चारें में।।
और आँदरी आँखन सें धृतराष्ट्र निहारत रत बरजोरी।
उनकें रोजउं मनें दिवारी, मोरे घरै धँधक रइ होरी।।

घोरे तरस रए दाने खों, ओजू गदा पँजीरी खा रय।
बगला चल रए चाल हंस की, बाज परेवा खों शरमा रय।।
लयें मसाल फिरै अँदयारौ, और आँदरे गैल बता रय।
कोयलिया रन लगी उपासी, गूँगा भोर प्रभाती गा रय।।
बे तौ धरें धरउअल उन्ना, फटे चींथरा पैरें गोरी।
उनकें रोजउं मनें दिवारी, मोरे घरै धँधक रइ होरी।

- बुन्देली धाम, ग्रा.पो. नैंगुवा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

राजा मर्दन सिंह वानपुर का चँदेरी मोह

- डॉ. काशीप्रसाद त्रिपाठी

बानपुर के राजा मर्दन सिंह, ओरछा के महाराजा मधुकर शाह (सन् १८८४-१५६२ ई.) के ज्येष्ठ पुत्र रामशाह के बंशज थे। रामशाह जो १५६२ ई. में ओरछा के राजा बने थे, उन्हें सम्राट जहांगीर ने १६०५ ई. में गद्‌दी से हटा कर तीन लाख रुपया वार्षिक आय की बार की जागीर दी थी। रामशाह बार में स्थापित हुये किले के निर्माण की तैयारी की कि सन् १६१२ ई. में स्वर्गवासी हो गये। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके मृत ज्येष्ठ पुत्र संग्रामसिंह के ज्येष्ठ पुत्र भरतसिंह बार जागीर के जागीरदार बने थे। वह बड़े पराक्रमी एवं महत्वाकाँक्षी थे। उन्होंने सन् १६१६ ई. में चंदेरी के सूबदार गोदा राय पर चढ़ाई कर उसे लड़ाई में पराजित कर, चंदेरी प्राप्त कर सन् १६१७ ई. में उसे अपनी राजधानी बनाली थी।

भरत सिंह ने चंदेरी का राजा बनते ही, चंदेरी राज्य को ४प्रशासनिक इकाइयों में दुदाही संभाग, हर्षपुर (बांसी) संभाग, गोलकोट (ईशागढ़) संभाग और भानगढ़ संभागों में विभक्त कर सुव्यवस्थित शासन स्थापित कर लिया था। भरत सिंह के छः छोटे भाई भी थे। जिन्हें क्रमशः कृष्णसिंह को बांसी, रूपसिंह को विजरौठा कीर्तिसिंह को ककराना, ध्रुव सिंह को उड़ेसरा, चंद्रभान को जामुन-धाना एवं मानसिंह को डाँग बरौदा की जागीरें दे दी गई थी।

सन् १६३० ई. में भरत सिंह की मृत्यु के पश्चात् क्रमशः देवीसिंह (१६३०-६३), दुर्ग सिंह (१६६३-८७), दुर्जन सिंह (१६८७-१७३६), मानसिंह (१७३६-५०) चंदेरी में राजा रहे थे। मानसिंह ने अपने तीसरे पुत्र धीरज सिंह को बानपुर की जागीर दे दी थी। राजा मानसिंह की मृत्यु के उपरांत अनुरुद्ध सिंह (१७५०-७५), रामचंद्र (१७७५-१८०२), प्रजापाल (१८०२) एवं भाई मोर प्रहलाद (१८०२-४२) चंदेरी कैलगुवाँ के राजा रहे थे।

मोर प्रहलाद के समय चंदेरी राज्य, सागर के मराठा मामलतदार रघुनाथ राव (अप्पा साहब) एवं ग्वालियर के सिंधिया की वैमनश्यता एवं छीना झपटी के द्वंद्व युद्ध की चपेट में फँस गया था। सागर के मामलतदार के प्रभाव को कम करने के लिये सिंधिया ने सन् १८१० में अपने फ्रेंच सेनापति जीन वैष्टिस्ट को चन्देरी राज्य पर आक्रमण करने भेज दिया था। जिसने चंदेरी, तालबेहट, बांसी, कोटरा, ननौरा, रजवारा, ललितपुर, मालथौन, जाखलौन, देवरा, देवगढ़ एवं महरौनी इलाकों को छीनकर सिंधिया के ग्वालियर राज्य में शामिल कर लिया था। वैप्टिस्ट ने तो इस क्षेत्र की सुरक्षा के लिये अपने नाम पर मालथौन घाटी के वाम किनारे 'कर्नलगढ़ किला' बनवा लिया था। इस उपलक्ष्य में सिंधिया ने प्रसन्न होकर जीव वैप्टिस्ट को महरौनी इलाके में जरया ग्राम की जागीर दे दी थी। बुन्देलखण्ड में जरया एक मात्र फ्रेंच जागीर थी जो सन् १६४७ तक स्थापित रही थी। सागर के मामलतदार रघुनाथ राव के मोरा जी मराठा ने मड़ावरा और तालबेहट क्षेत्र लेकर ही संतुष्ट हो गये थे। जिन्होंने मड़ावरा एवं बाला बेहट के किले बनवाये थे। मोराजी तो मड़ावरा किले में ही रहने लगे थे।

सन् १८१० में मोर प्रहलाद जीन वैप्टिस्ट के भय से झांसी के मराठों की सुरक्षा में झांसी भाग गए थे तथा श्याम जी के चौपरा की हवेली में रहने लगे थे। वहाँ वह ३ वर्ष रहे। जब जीन वैप्टिस्ट ग्वालियर लौट गया था, तब मोर प्रहलाद लौट कर चन्देरी के बजाय कैलगुंवा के किले में रहने लगे थे, जिन्होंने कैलगुंवा किला का निर्माण कराया था, इस समय उनके अधिकार में केवल ३० गाँव रह गये थे। कैलगुवां के किले में मोर प्रहलाद १५ वर्ष रहे। कैलगुवां में रहते हुये उन्होंने सिन्धिया के अन्यायपूर्ण एवं बलात् आक्रमण की शिकायत बुन्देलखण्ड में कम्पनी सरकार के राजनैतिक प्रतिनिधि से हमीरपुर में की थी। जिसके निराकरण के लिये मीर मुंशी बांदा, जीन वैप्टिस्ट ग्वालियर और मोर प्रहलाद की संयुक्त बैठक ग्राम सुनवाही में हुई थी। जिसमें निर्णय हुआ था कि जो क्षेत्र राजा रामशाह को मुगल सम्राट जहाँगीर ने ओरछा राज्य से दिलाया था, जिसमें बार, वानपुर और तालबेहट परगने थे, वह मोर प्रहलाद के कब्जे में रहेंगे। इस समझौते पर मोर प्रहलाद के कामदार पं. दुलारे लाल मिसर मसौरा वालों ने एवं सिंधिया की तरफ से वासुदेव राव भाऊ ने हस्ताक्षर किये थे। इसके बाद मोर प्रहलाद ने अपने बंशज धीरजसिंह के बंशजों से बानपुर लेकर कैलगुवाँ के बजाय बानपुर में राजधानी स्थापित कर ली थी। इस प्रकार सन् १८३० ई. में बानपुर राज्य का आविर्भाव हो गया था। जो मात्र १६५६३१ रुपया वार्षिक आय का रह गया था। बानपुर में १२ वर्ष राज्य करने के बाद १८४२ ई. में मोर प्रहलाद का निधन हो गया था।

राजा मोर प्रहलाद के निधनोपरान्त, उनके पुत्र मर्दन सिंह (१८४२-१८५८ ई.) बानपुर के राजा बने थे। मर्दन सिंह भी पिता मोर प्रहलाद की भांति महत्वाकांक्षी थे। वह चन्देरी को नहीं भूले थे। वह किसी भी प्रकार चंदेरी प्राप्त कर लेने के प्रयास में रहा करते थे। सिंधिया अधिक शक्तिशाली था। जिस कारण उन्होंने अंग्रेज कम्पनी सरकार से मैत्री बढ़ाई, और १८४२ ई. के बुन्देला विद्रोह के नायक मधुकर शाह बुन्देला नराट, जिन्हें अंग्रेज कम्पनी सरकार पकड़ना चाहती थी। मर्दन सिंह ने मधुकर शाह बुन्देला को अपने राज्य के गैराव ग्राम से बहिन के घर सोते समय अंग्रेज सेना को पकड़बाने में भरपूर सहायता की थी। अंग्रेज हैमिल्टन ने अपने मित्र मर्दनसिंह के सहयोग की खूब प्रशंसा की थी। उन्हें आशा थी कि

कम्पनी सरकार, उन्हें उनका पूर्व कालिक चंदेरी क्षेत्र सिंधिया से दिला देगा। परन्तु परिस्थिति उनके सोच के विपरीत घटित हुआ।

सन् १८४३ में लार्ड आकलैंड ने वर्ष १८४२ ई. के बुन्देला विद्रोह को उकसाने का आरोप ग्वालियर के सिंधिया पर लगा दिया था। लार्ड आकलैण्ड की सोच थी कि १८४२ ई. में अफगान युद्ध में अंग्रेज सेना की पराजय का लाभ उठाते हुये, कम्पनी सरकार के क्षेत्र खुरई, खिमलासा में मधुकर शाह बुन्देला को लूट करने, अराजकता फैलाने एवं क्षेत्र में आगजनी करने सिंधिया ने प्रोत्साहन दिया था। इस कारण लार्ड आकलेंड से समझौता कर लिया और १४ लाख रुपया वार्षिक आय का चंदेरी क्षेत्र जो मोर प्रहलाद से छीना तथा वह अंग्रेजी कम्पनी सरकार को दे दिया था। इसके साथ ही अंग्रेजी सेना ने चंदेरी में अपनी सैनिक छावनी कायम कर ली थी।

इस अप्रत्याशित उलट-पलट की घटना से मर्दन सिंह को बड़ा धक्का लगा। उनकी इच्छा अंग्रेजों के सहयोग से, सिंधिया से चंदेरी क्षेत्र ले लेने की थी। परन्तु परिस्थिति ऐसी बदली कि चंदेरी उनके हाथ न लगकर कंपनी सरकार के हाथ में जा पहुँची थी। जब चंदेरी सिंधिया के अधिकार में थी तो मर्दन सिंह सिंधिया के शत्रु और कम्पनी सरकार के सहयोगी मित्र थे। लेकिन जैसे ही चंदेरी अंग्रेजों के अधिकार में दे दी गई तो वह अंग्रेजों के विरोधी एवं लक्ष्मीबाई झांसी और बिठूर के धुंधूपंत पेशवा मराठों के सहयोगी मित्र बन गये थे। विशेषकर वह लक्ष्मीबाई झांसी की सलाह के अनुसार ही चलने लगे थे।

अंग्रेजी राज्य जो सेना के बलबूते पर चलता था। परन्तु अंग्रेजी फौज के भारतीय सैनिक के वेतन भत्तों की विषमता, असमानता को लेकर असंतोष उत्पन्न हो गया था। दूर-दूर स्थानान्तरणों से मई १८५७ में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध क्रान्ति के रूप में यह असंतोष फूट पड़ा था। अंग्रेजी सेना के भारतीय सैनिकों ने बगावत कर अंग्रेजी प्रशासन को झकझोर दिया था। सरकार का शासन प्रशासन और नियंत्रण कहीं नजर नहीं आता था। हर सैनिक छावनी में अराजकता फैल गई थी। भारतीय सैनिकों ने बगावत कर छावनी शस्त्रागारों से हथियार लूटकर अंग्रेज अधिकारियों को मौत के घाट उतारना आरंभ कर दिया था।

अंग्रेजी प्रशासन तंत्र अनियंत्रित ढीला हुआ तो बुन्देलखण्ड के अपदस्थ गैर क्षेत्रीय असंतुष्ट मराठा मामलतदार और बिठूर के पदच्युत पेशवा सहित उनके हितैषी जमींदार ताल्लुकेदारों ने मौके का लाभ उठाते हुए, असंतुष्ट भारतीय सैनिकों के नेता बन कर, अपने-अपने पूर्व कालिक राज्यों क्षेत्रों और भूभागों पर कब्जा जमा बैठे थे। भारतीय विद्रोही सैनिकों ने झांसी के झोकनबाग में रह रहे अंग्रेज अफसरों, महिलाओं और बच्चों का कत्लेआम करते हुये लक्ष्मीबाई को पुनः झांसी की रानी (प्रशासक) बना दिया था।

मर्दन सिंह ने भी लक्ष्मीबाई झांसी की देखा-देखी, चंदेरी क्षेत्र के खुरई, खिमलासा, नरयाबली, मालथौन आदि परिक्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लिया था। वह मालथौन से बरौदिया होते हुये राहतगढ़ जा पहुँचे थे। उसी समय सैन्ट्रल इण्डिया फील्ड फोर्स का कमांडर बनकर सर ह्यूरोज भोपाल होकर राहतगढ़ आया। मर्दन सिंह पराजित होकर मालथौन बदौरिया की तरफ भागे। ह्यूरोज विद्रोहियों को ठनगना, मदनपुर, सौरई में पराजित करता, मड़ावरा महरौनी के किलों को तोड़ता हुआ बानपुर की ओर बढ़ा। ११ मार्च १८५८ को मेजर बायलो ने बानपुर किले को तोपों से उड़ा दिया था। मर्दन सिंह बानपुर छोड़ कैलगुवाँ के किले में जा पहुँचे थे। ह्यूरोज सीधा तालवेहट गया, जिसने १४ मार्च को तालवेहट किला ध्वस्त कर दिया था। मेजर 'ओर' बानपुर से मर्दन सिंह का पीछा करता हुआ कैलगुवाँ जा पहुँचा और १५ मार्च १८५८ को कैलगुवाँ किले को ध्वस्त कर दिया था। मर्दन सिंह के पास तीन किले बानपुर, कैलगुवाँ एवं तालवेहट ही थे, वह तीनों ध्वस्त कर दिये गये थे, राज्य एवं घर विहीन होकर मर्दन सिंह बार बांसी के जंगलों में भटकते रहे। परिवार बानपुर से दतिया जा पहुँचा था। जिन मराठों-पेशवा धुंधूपंत नाना साहब एवं लक्ष्मीबाई के उकसाने से, सलाह मशविरा से मर्दन सिंह ने अंग्रेजी कम्पनी सरकार के विरुद्ध-चंदेरी का पूर्व कालिक क्षेत्र ले लेने के लिये विद्रोह किया था। उन मराठा मामलतदारों-पेशवादि किसी ने विपत्ति के समय उनको मदद नहीं की थी। जो छोटा सा बानपुर राज्य था, वह था छोटा, लेकिन अधिक की लालच में वह भी चला गया था। कहावत है "आधी छोड़ सारी को धाबै - आधी रहे न सारी पाबै।"

बार बासी के जंगलों में भटकते रहने पर निराश होकर मर्दन सिंह ने २८ सितम्बर १८५८ को अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। अंग्रेजों ने उन्हें बुन्देलखण्ड से बाहर लाहौर में मोरी दरवाजा के पास हाकिम राय की हवेली में नजर कैद कर रखा था। बानपुर जागीर का विलय अंग्रेजी राज्य में कर लिया था। उनके परिवार के भरण पोषण को १०००/- (एक हजार रुपया) मासिक पेंशन दी गई थी। बाद में नवम्बर १८७ में उन्हें वृद्धावस्था में मथुरा में रख दिया था जहाँ २२ जुलाई १८७६ को उनका स्वर्गवास हो गया था।

- भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़

देश ने टेरो है

- लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'

देश अपनो विदेशियन कौ हतो गुलाम,
जबै अपनन नें लौ देश पेरो है।
बड़न बड़न की लगत ती बिगार खूब,
क्याउँ क्याउँ अँदयारे ने अबै लौ घेरो है।।
नाँव के लाने तौ देश में कहाउत प्रजातंत्र,
देश पै गीदन घाँईं नेतन ने हेरो है।
येइसें उचम देत बैरी देश अपने में,
आज देश नें आजाद सुभाष खौं टेरो है।

- ईशानगर, जिला छतरपुर (म.प्र.)

साँसी बात सटोले कएँ

- कल्याणदास साहू 'पोषक'

पात्रन कौ परिचै

कैलास -इकइस-बाइस साल की उमर कौ इन्टर पास देहाती लरका।

पीताराम -कैलास कौ 'दद्दा' उमर साठ साल *(देखत में लगत सत्तर साल घाँई)*

धनकू - पिताराम की जर्नी *(घरवारी)*, उमर पचपन साल के लगभग

फरसराम - कैलास के संग कौ 'पढ़इया लरका'

रमको फुआ - फरसराम की मताई उमर साठ साल के लगभग।

दिवले मास्साब- शिक्षा विभाग सें दो साल पैलाँ रिटायर भए करमचारी।

सटोले कक्का- दिवले मास्साब के संगी-साथी, गाँव के जागरूक नेता *(नेता कम, समाज सुधारक जादाँ)*

(सिद्दन की टोरिया के नजदीक एक गाँव (मेंथीपुर) जिते कचिया घर जादाँ हैं, पकिया मकान कम हैं। गाँव तक पौंचबे के लाने कच्ची गोला है। जाड़े कौ समईया औ भुन्सारे कौ बखत)

पीताराम एक हल्कौ-पतरौ गरीब किसान है। थोरक-सी जाँगा-जमीन है। बालापन में 'बरदुआई' करत रए। जब सें सुर्त समारी तब सें खेती कर रए। तन्थोरी मैंन्त-मजूरी सोऊ कर लेतइ। गिरानी भोग-भोग कें अपने अकेले पूत 'कैलास' खों पढ़ा-लिखा कैं बड़ौ कर दओ। अब पीताराम 'जा' चाउत कै - लरका कछू ढंग कौ काम-धन्दौ करन लगवै औ घर-गिरस्ती समारवै। जीसें ऊकौ वोजौ कम हो जाय और घर की हालियत सुदर जाय। जेइ सोच कें एक दिनाँ 'ऊ' ने कैलास खों भुन्सारें सें जगा कें समजाबे की ठानी।

(कैलास कथरी ओढ़ैं सोउतन में खूब धुरक रओ)

पीताराम - *(धीरे सें)* कइलास! *(तनक औ तेज)* कइलास!! *(फिर जादाँ तेज)* ओ कइलास!!! सुनत नइयाँ...उठजा...उठजा बेटा। अबै लौं सो रओ...। देख कितनौं दिन चढ़ आव। उठै... हाँत-मौं धो लै।

कैलास - हओ...! उठ तौ रए...! तनक और... सो लेन दो हमें *(फिर कथरी सें मौं ढाँक लेत)*

पीताराम - का कै रओ? ''तनक और सो लेन दो'' तोय सरम नइँ आउत। इतनौं बड़ौ ढूँड़ हो गओ, काम-धन्दे की बिल्कुल चिन्ता नइँयाँ। केवल सोबौइ-सोबौ पुसाउत। पूरी रात हो गई सोउत-सोउत, तौइ ऊँग रैइ गई।

कैलास - दद्दा! तुम कछु न पूँछौ। अबइं भौर के पारें मो खों बर्रोटी दबी। बर्राटन 'मैं' कों देख रओ कै - अपुन बड़े आदमी बन गए। अपनें एँगर खूब बड़्डौ तिखन्डा मकान है। दोरैं एक चमचमात कार ठाँड़ी। खूब धन-दौलत जुर गई। गाँव के सब लोगें-लुगाईं हाय-हाय कर रए, कै - ''कइलास तौ पइसा-बाव' हो गओ।

पिताराम - *(झुँझलाकें)* तें खटिया पै सें उठ रओ कै नइँ उठ रओ। ना उठत होय तौ पानी किन्चवैं। *(पिताराम धौंस देन लगत)*

कैलास - जल्दी उठकें कों करौं मैं? सपर-खोर कें बस रोटियन सें पेटइ तौ भरने औ फिर पर-रानैं।

पीताराम - *(खुन्सया कें)* काम-धन्दौ कछू नइं करनें? मैं कब लौं तोखों कमा-कमा कें खुआउत रैहौं। पूरौ गाँव जानत कै - ''मैंनें कोलू के बैला घाँईं जुत-जुत कें, छाती हूँम-हूँम कें तोखों बड़ौ करौ, करजा लैकें पढ़ाव-लिखाव, ब्याव कर दओ। अब मोमें हिम्मत नइं बची। अब तौ तुम कछू काम तलासौ, कै हमाए संगै खेती-बाड़ी करौ।

कैलास - दद्दा! खेती-किसानी में हमाओ मन नइं लगत। बरसात ढंग-दौरे की होती, तौ बौइ कस करते। ईसें मैंने तौ दिल्ली जाबे कौ पूरौ मन बना लओ।

पीताराम - *(रोस में)* का कै रओ? *(दत्ती पीसत)* फिर कें कइए। येइ के लाने हमने छाती-हूमीं, तोखों पालौ-पोसौ, बड़ौ करौ, कै तैं 'डिल्ली' भग जै। जा... तौ बता... फिर हमाओ कों हुइए? नइं हम तोखों कउँ न जान दें।

कैलास - *(करें गरे सें)* दद्दा! हम इतै रुकबे बाय नइँयाँ। साफ-साफ कै रए, दुपर लौं हम इतै सें रबानगी कर दें।

पीताराम - हम 'न' निकरन दें तोखों। जादाँ जिद्द करै तौ 'हम' टका से पिरान दै दें।

धनकू - *(पीताराम सें)* काय खों लरका के पिछाँईं पर गए। आज हारै नइं जानें का?

पीताराम - *(धनकू पै गुस्सा उतारत भए)* तैं चुप रै। मौं बन्द करकें बैठ। जो कछू करें सो तैंइं करें। तैंइं ने ऊ पूत खों लाड़ कर-कर कें बिगार दओ।

(घर में फूँसा-फाँसी होन लगी, बतबड़आव होन लगो, ऐसें लगन लगौ जैसें निंआव हो रई होय। हल्ला-गुल्ला सुनकें पुरा-परोस के कछू समजदार लोग-मान्स जुर कें आन ठाँड़े भए)

सटोले - *(गरे फार कें)* पीताराम...! अरे ओ पीताराम..ए...!! जौ का भुन्सारे सें हल्ला मचा रए। काय खों दाँती कर रए। सब जनन खों तमासौ बता रए। कछु काम-धाम नइयाँ का? इतै तौ आव... बखरी सें बायरें कड़कें।

धनकू - *(पीताराम सें)* काय सुन नइँ रए। कैसे आ हो। बायरें तुमें कोऊ टेर रओ। मोय तौ ऐसें लगत जैसें 'दावजू' होवैं।

पीताराम - *(सुआपी मुँड़ी सें बाँदत झट-पट पौर सें निकर कें बायरें आउत, सटोले खों सामने देख गुस्सा सान्त करकें)* है..है..

है.. राम-राम सटोले भइज्जा। आव-आव... अवाई होवै। अच्छी खबर लई। *(लुगाई की ओर मों करकें)* ल्या री... वा 'दरी' तौ ल्या... जल्दी सें।

सटोले - ल्याओ इतइं उरइयाँ में चौंतइआ पै बैठे जात। आव दिवले मास्साब! तुमइं बिराजौ।

पीताराम - *(सरमिन्दा होंकें)* अरे! मास्साब ने सोऊ कस्ट करौ। *(दोइ हाँत जोर कें)* जै रामजी की पौंचै साब। बिराजवौ होवै। दिवले *(बैठत भए)* हाँ... तौ पीताराम! कैसौ सोर मच रओ तौ तुमाए घर में?

पीताराम - *(झट्ट सें खलेती में सें पाँच कौ कल्दार काढ़ कें बिन्डल-माचिक और तमाखू की पुड़िया मँगाबे के लाने भतीजे खों देन लगत)*

सटोले-दिवले - *(एक साथ)* अरे भइया... इतै कोऊ नइं खात-पियत। तुमतौ! अपनी राम-कहानी सुनाओ।

पीताराम - कौं बतायँ मास्साब? मोइ तौ खुद कछू समज में नइं आ रई। 'वो' तुमाओ लतरौंदा-कइलास, कछू काम-धाम नइं करत। कछू कऔ तौ - 'डिल्ली' जाबे की जिद्द करन लगतइ। हमाई तौ नाकइ में दम है।

दिवले - कैलास खों इतै बुलाओ। पुरा-परोस के बड़े-बूढ़े ऊखों समजायँ देत। बड़न की सीख मान जे, तौ ऊ की भलोइ हुइए। काय हो सटोले! तुम तौ कछू कैइ नइं रए। तुमइं कछू कओ।

सटोले - *(दिवले मास्साब के कान लौं मौं करकें)* जा-तौ- बताओ दिवले मास्साब! अपुन उपत पंच बनकें इतै आ गए। कैलास 'लरक-दींद' है। कऊँ 'ऊनें' अपनी मान-मरयादा 'ना' राखी तौ, समज लियो...। हमें सैंन नइं होत। मौं पै जो आ जात सो बक देत। जा-तौ तुम जानतइ हो। ''साँसी बात सटोले कएँ सबके मन सें उतरे रएँ''।

दिवले - *(खुसर-पुसर करत भए)* तुम ई की फिकर न करौ। लरका पढ़ौ-लिखौ है। बड़े-बूढ़न की 'मान-मरजादा' राखबे के कछू न कछू तौ संस्कार हुइएँ।

सटोले - ठीक है साब! तुमइं करिओ बतकाव। हम तौ हूँका देत रैं।

दिवले - *(मनइंमन- जब तुमाओ मौं चालू होने फिर नइं रुकनें)* ठीक है! जैसी तुम जानौं।

(इतने में निंगा नेंची करें कैलास बायरें आउत, सटोले कक्का और दिवले मास्साब के पाँव परकें दूरखों जान लगतइ)

सटोले-दिवले - *(दोनो एकइ साथ बुद-बुदान लगत)* खुस रओ - आबाद रओ, भगवान तुमाई उमर लामी करै। खूब फलौ-फरौ। आव... इतै एँगर बैठौ। उतै दूर काय जा रए?

(कैलास मूँड़ नेंची करकें उतइं जमीन पै उकरूँ बैठ जातइ)

सटोले - अरे! पालथी मारकें बैठौ अच्छी तराँ सें। हाँ - तौ बेटा कैलास! पूरे गाँव भरे में एक तुमाओ घर हतौ, जितै कभऊँ खट-पट नइँ सुना परी। अब जा काए की किल-किल मच रई?

कैलास - *(हराँ कें)* हम का बतायँ ददूदा सें पूँछौ?

सटोले - बेटा! तुमइँ खों बताउनें। तुम पढ़े-लिखे हौ, समजदार हौ। तुमाओ ददूदा तौ है अनपढ़। बिल्कुल गऊ के लेखे में, दन्द-फन्दन सें कोसन दूर। जा बात हम दावे सें कै सकत कै - तुमाए दद्दा घाँईं सज्जन मान्स गाँव भरे में नइँयाँ। न कौनउँ ऐब, न कौनउँ ऐमाल। दुनियाँदारी सें कोई मतलब नइँ। दिन्नारात मैंनत करबौ औ ईमानदारी सें, सच्चाई सें पेट पालबौ ही पीताराम की मुख्ख पैचान है।

दिवले -बिल्कुल... सई कै रए सटोले। हमने कभउँ पीताराम खों फालतू बैठौ नइं देखौ।

सटोले - हाँ... तौ बेटा कैलास! बताव तुम का करन चाउत।

कैलास - *(मूँड़ नेंची करें)* हम का बताएँ कक्का? हमाई तौ खुद समज में नइं आ रई, कै - हम का करबें?

सटोले - तुम! सब कर सकतइ। अब तुम हल्के नइँयाँ। सियाँने-समानें साढ़े पाँच फीट के पट्ठा-ज्वान हौ। कछु अकल लड़ाओ...।

कैलास - हमनें तौ भौत दिमाग खपै लओ कक्का! हमाई तौ, रामधइ औज काम नइं कर रई। आपइ कछु गैल बताव..।

सटोले - का-हो कैलास! तुमने कभऊँ ई-सम्बन्ध में हमाए कानें बात डारी है। हमइं उपत कें आ गए सो, तुम कन लगे कै गैल बताव।

कैलास - *(गिगयाकें सटोले के दोइ पाँव पकर कें)* भौत... बड़ी गलती हो गई कक्का। मो खों छमा कर देओ। *(फिर दिवले मास्साब के चरनन पै मूँड़ धरकें माफी माँगतइ)*

दिवले - ठीक है, ठीक है... अब मूँड़ ऊँची करौ औ कान खोल कें सुनों। 'सटोले' की जौंन बात तुमें जँचे, जौंन तुमाए हित की होवै, ओइ पै अमल करन लगिओ।

कैलास - ठीक है साब *(मूँड़ हलाते हुए)* मैं जरूर अमल करौं।

सटोले - हाँ तौ पुतरा कैलास। हम तुमाए मौं सें सुनन चाउत, कै तुमाई कौ इच्छा है?... नौकरी करबे की?

कैलास - *(सकुचत भए)* हओ...

सटोले - तौ सुनों! ई-जमाने में देहातियन के लानें सरकारी नौकरी मिलबौ टेड़ी-खीर है। या-तौ अच्छी डिवीजन होवै औ तगड़ी सिफारिस होवै, तौ दन्न सें नौकरी मिल जातइ। नइं तौ तगड़े दाम चानें। तुमाए एँगर हर बात की कमी है। ईसें बेटा! कौनउँ हल्की-पतरी काम-धन्दौ ढूँढ़ लेओ। येइ में सार है।

दिवले - सोरा आना साँसी कइ 'सटोले भइया' तुमने! हमाए मौं की बात छुड़ा लई।

(येइ बीच कैलास कौ दोस्त 'फरसराम' आ जाउत। झट्ट दिवले मास्साब औ सटोले कक्का के चरन छू कें दोइ हाँत जोर कें सबसें राम-राम करतइ)

सटोले - अरे! आव-आव बेटा फरसराम!! खुस रऔ, दूद करूला

करी औ सुनाव का हाल है?

फरसराम - *(वोइ हाँत जोर कें)* अपुन सब बड़े-बूढ़न की आसीरवाद है।

दिवले - धन्दौ-पानी कैसौ चल रओ?

फरसराम - मैंनें पैलइं विनती करी कै - बड़े-बूढ़न की किरपा बनी रए, तौ सब काम ठीक-ठाक होत रतइ। बिगरे काम भी सुदर जातइ। खुसी-आनन्दी 'बर हमेस' बनी रत।

सटोले - खुस रऔ 'पुतरा' खूब तरक्की करौ। खूब फूलौ फरौ। हम तौ भगवान सें जेइ विनत्वारी करत रए, कै-सबकी औलाद सुखी रबै, ऊ के पीछें हमाई...। (फिर) अरे फरसराम! तनक ई-कैलास खों समजाव-बुजाव। कछू हिल्लौ-रुजगार जेऊ करन लगवै।

फरसराम - अपुन सब 'बुजुरगन' के आँगें मोई का औकात...? आपइ ने मोय गैल धराइती, ऐसइ ई खों पारै लगाओ। हमाए लाने तौ आपइ गुरु हौ, आपइ पार लगइया भगवान हौ। *(वेइ बीच दूर सें टेरबे की आवाज सुनाइ परतइ)*

फरसू...! ओ फरसू...! कौं मर गओ ढील मरो? गरी फारकें फरसराम की मताई चिल्लयात चली आरई। *(फिर परसराम के ढिंगा आकें)*

रमको - *(हराँ कें)* फरसू, तैं इतै बैठौ गप्पें हाँक रओ, उतै दुकान पै 'गाक' ठाँड़े। देख नइं रओ, 'मैं' कन्डा पाथबौ छोड़ कें दौरतइ चली आ रई।

(कैलास ने दौर कें रमको फुआ के पाँव परे। उनन्ने मूड़ पै हाथ फेरकें मनईमन असीस दई)

सटोले - अरे! आव-आव रमका बैन! तुम ठीक आ गईं। अब तौ दिखातीं नइयाँ, कौं बनीं रतीं? मजे में हौ? तुमइं तनक कैलास खों समजाव।

रमको - हओ.. मोय बस की... आ... है... जा... बात। न मैं तुमसें दिनन जेठी न गुनन...। तुमाई बात नइं टारत। तुम कै रए सो बैठी जरूर जात हौं, तनक के लानें।

दिवले - सटोले भाई! पीतराम किते बिला गओ? टेरौ तौ उयै। *(पीताराम गदबद वैत चलौ आउत)*

सटोले - *(बनावटी गुस्सा में)* कौं गए ते पीताराम? हम औरें इतै बैठे। और तुम...

पीताराम - कउँ नइं भइज्जा! रखत घरै बँदी सो रूँद में बाँदबे गओ तौ *(वोइ हाँत जोर कें)* सुनाव! कौं मरजी हो रई?

सटोले - जा-बताव, तुम लौं गरीबी रेखा की कारड है?

पीताराम - मा-काय खों भइज्जा? सेर भर घिउ नइं दे पाओ, ऊ बखत 'मो लौं हतीइ नइं। सो मोरौ नाँव गरीबी रेखा में नइं जुरौ।

सटोले - जौ तौ तुमाए संगै भौतइं गलत भओ। तुम हमसें तौ कते - बारते। तुमाओ नाँव गरीबी रेखा में जुरकें रतौ। अपने गाँव में जिनके पास खूब मालियत है, जाँगाँ-जमीन है, गाड़ी-घोड़ा हैं। उनके नाँव गरीबी रेखा में जुरे देखे हैं हमनें। तुम लौ तौ कछुअइ नइँयाँ।

दिवले - रोजगार गारन्टी योजना कौ जाब-कार्ड तौ हुइए?

पीताराम - नइँयाँ साब। मोसें तौ मइंना दो मइंना में कगदा पै निसानी लगवा लई जाउत और पसेरी दो पसेरी गल्लौ पकराकें टिकरा दओ जाउत है।

दिवले - देखौ तौ सटोले भइया। कितनौं अन्देर मचौ?

सटोले - बिल्कुल ठीक कै रए साब। अब तौ जाँ देखौ उतइं अन्देर-खातौ मचौ। अपने गाँव के इस्कूल में मध्यान भोजन बँटबे की कैसी हाल है? तुमें पता है?

दिवले - हमें नइयाँ पतौ। काए बँटत नइयाँ का?

सटोले - बँटत तौ है.. लेकिन जैसी बँटें चइए ऊ सौ नइं बँटत। आदे सें जादाँ गल्लौ और रुपइया तौ बीचइ में गड़गप्प हो जातइ।

दिवले - का... कै... रए... सटोले?

सटोले - हम साँसी कै रए। हमाए पेटें बात पचत नइयाँ। ऐन हम सत्ता पक्ष के हैं। लेकिन का करें? मौं सें साँसी बात कड़इ आउत। फिर साँसी कैबे सें हमें कोऊ नइं रोक सकत। हम अच्छे खाँ खों नइं डरात। जौ तौ तुमें पतीइ है, कै मध्यान भोजन समूह द्वारा बाँटौ जा रओ।

दिवले - हओ...

सटोले - समूह खुलो है, गाँव की दस गरीब औरतन के नाम सें, और ऊखों चलाउत है, लम्मरदार कौ लरका।

दिवले - कौन...?

सटोले - अरे! बौइ जी की नाव 'बड़ेदा' है। बड़ेदा अधिकारियन पै रौब जमाकें परमट ल्यात, गल्लो ल्यात। बैंक सें पइसा निकारत औ इस्कूलन में भोजन बँटवाउत। जिन गरीब औरतन के नाव सें समूह चल ओ, उन बिचारियन खों तौ पतीइ नइयाँ, कै-हमाए नाव सें समूह है।

दिवले - इतनौं भर्रा- खातौ।

सटोले - अब तुमें कौ बताएँ। सुसायटी *(कन्टरोल की दुकान)* की हाल तौ औरइ खराब है।

दिवले - सइ में....

सटोले - हओ...। भर-भर टिरोली गल्लौ, सक्कर औ चाँउर 'वेपारियन' के इतै चलौ जात सीदौ बिकबे के लानें। इतै गाँव में दोचार बोरा ल्याकैं बाँट दए जात।

दिवले - सुसायटी खों को चला रओ?

सटोले - तुमें पतौ नइयाँ को? फिर काए खों गाँव में रै रए? अरे! सबापति कौ मँजलौ लरका चला रओ, जी सें सब जनें भाइ-साब, भाइ-साब कत।

दिवले - हम तौ कभउँ सुसायटी पै ढूँकन नइं जाउत। एक दिनाँ मट्टी के तेल खों गए ते। दिन भर ठाँड़े रए ते। दिन डूबें खाली

बासन लै कैं घरै लौट आए ते। तबइं सें कान पकर लए ते।

सटोले - मास्साब! मट्टी के तेल में तौ बेजाँ गड़बड़ी है। गाँव में आबे सें पैलाँ बीचइ में गोल हो जातइ। और थोरी-भौत आइ जै-तौ कम नपतइ, गल्ली कम तुलतई। भौत खराब हालत है। ई-सें उमदा तौ जौइ है, कै - कन्टरोल की दुकानेइँ बन्द हो जाबैं, तौ जनता मजे में रै है।

दिवले - खाद-बीज की दसा कैसी है? लाइट की कैसी है?

सटोले - भौत खराब हालियत है। असली खाद तौ मिलइ नइं पाउत। बीज ऐसी मिलत कै - फलियाँ नइं लगतीं। हमने कइ नइयाँ साब! कै सब जगाँ धांदली मची है। सरकारी दफ्तरन में भिस्टाचार की भरमार है। ''बाबू चाय की गुमटी पै बैठे रात। अफसर बंगला पै मिलत कै कितउँ मीटिंग में गए हुइएँ। ऐसी तौ हाल पबरत। लाइट की तौ औरइ अजब लीला है। जो मीटर लगवाएँ उनें बिल्ल भरनें परत और जो घुटकूँ डार कें जला रए उनें टका नइं लगतइ। ऐसी तौ धांदली मची।

दिवले - और कितै-कितै है विवस्था में गड़बड़ी?

सटोले - आप तौ जा पूँछौ कै कितै नइयाँ। आँगनवाड़ी की पोसन-आहार पतौ नइं परत कितौंय चली जातइ। अपने गाँव में तीन-तीन आँगनवाड़ीं चल रइं, लेकिन खुलतीं एकऊ नइयाँ। ऐसौ तौ अन्देर मचौ। बड़े आदमियन की चालें है। डाँग सें भर-भर टिरौली सगोना कट-कट कें चली जाउत औ बररखा पछाव दैकें ठाँड़े रत। एक दिनाँ गुनठइयाँ साइकिल पै एक ठऊ हल्की सी गिन्डी लादें आ रऔ तौ - सो ऊ खों बररखन नें पकर कें दो तीन थापरें रगड़ दईं, साइकिल और गिन्डी जप्त करकें केस बना दओ। ऐसौ तौ अन्देर मचौ। लम्मरदार की मँजली बऊ मास्टरनी है, कभउँ नइं जात इसकूल में पढ़ाबे खों। घर बैठें तनखा लेत रत। ऐसइ सवापती की हल्की लरका सोऊ सरकारी नौकर है। कभउँ नइं जात ड्यूटी पै, फटफटिआ लएँ इतइं घूमत रत दिन भर और तनखा पूरी लर-लर कें लेत रत। ऐसौ तौ अन्देर मचौ। समज में नइं आउत ई देस कौ का हुइए?

दिवले - और कछू रै गओ...

सटोले - जा न कइयो ऐसी काए कत। इस्कूल में मास्टर कुरसी टोर रए, कै गप्पें हाँक रए। लरका कचन्टीयन खेलत रत कै किताबन के पन्ना फार-फार कें हवाई-जिहाज उड़ात रतइ। भैंनजी सूटर बुनत रतीं औ मौंड़ी चपेटन खेलत रतीं। कछू-कछू इस्कूलन में तौ मास्टरन के औसरे से बँदे। पटवाइ के तौ गाँव में मइंनन दरसन नइं होतइ। आउतइ है तौ माते मुखियन के इतै बैठकें एक दो तीन हो जाउत। वो तौ काम चल रओ! ऐसइ, चुनावन में जी लौं दारू, डण्डा औ नोट होत, बैऊ चुनाव जीत पात। हमने कइ नइँयाँ कै सब जागाँ अन्देर मचौ। कोउ पूछइआ नइयाँ। अपने इतै जौन कच्चौ गोला डरौ वो कगदन में पक्की डामर रोड है। तीन-तीन तलइंयाँ और चार-पाँच कुआ कगदन में परकी-सालै खुद गए और पुर गए।

दिवले - बैंकन में है का भिस्टाचार?

सटोले - बैंकन में पतौ नइं परत। हमें तौ इस्टेट बैंक से काम परतइ। उतै काम ठीक-ठाक होतइ। मैंने तौ किसान-क्रेडिट कार्ड बनवाओ तौ, एक कौड़ी तक रिस्वत की नइं लगी। झूँटी कए में का फायदा है।

दिवले - ठीक है, अच्छी बात तुमाए मौं सें कड़ी तौ है। *(हँसत भए)* अब जा बताव! जौन काम के लाने अपुन इतै आए ते, वौ तौ तुमें बिसरइ गओ।

सटोले - नइं बिसरौ। *(कछु गम्भीर होकें)* दिवले मास्साब! तुम तौ जानतइ हौ, कै बेईमानी, हाय-हत्या औ हराम कौ धन फलत नइंयाँ। तुम तौ देखतइ हौ - लम्बरदार और सवापति के ऊपर कितनी भावइ आउत। उनकौ सबरौ पइसा कोर्ट-कचैरी और अस्पतालन में खर्च होतइ रत। बेईमानी करबे वारौ कभउं सुखी नइं रै सकतइ। एक न एक उनके घर कौ सदस्य बीमार बनोइ रत। बड़ी-बड़ी बीमारियन से पीड़ित रत। जौ हराम कौ धन बीमारियन में लगतइ रत। कै भइया डाकू लै जातइ। ''भगवान के घर देर है, अन्धेर नइंयाँ। इतै की अदालत से तौ बदमासी करकें बच जात। लेकिन ऊ अदालत से *(भगवान के घर सें)* कोऊ नइं बच सकत। उतै तौ नियाय होकें रतइ।

दिवले - जौ का तुम पत्तरा खोल कें बैठ गए।

सटोले - लो गम्म खाउत। *(कछु याद करत भए)* हाँ तौ बेटा कैलास! तुमाए हित की बात जा है, कै तुम पीताराम के संगै खेती-किसनी में मदद करौ। एक ठउआ किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लो। तुमाई जमीन के अनुसार कम से कम पचास हजार की लिमिट तौ बनइ जैहै। सो तुम जब चाओ बैंक सें दस-बीस हजार रुपइया कर्जा लै सकत। तुम चाओ तौ खेती में लग्गत लगाओ। खेती की पज अच्छी होन लगै। कछु पइसा बन्ज-बेपार में लगा सकत। हल्की-पतरी-सी कछु रुजगार कर सकतइ। हाटें कर सकतइ। येइ के संगै-संगै नौकरी के लाने कोसिस करत रओ। हो सकत आन्दरे की लोड़ लग जाय।

दिवले - ठीक कै रए, सटोले भाई! काए न लगै। भगवान खों सबकी फिकर है। वे सबकी मदद करत।

सटोले - *(कैलास सें)* जो भी काम करौ, ईमानदारी से करिओ, तुमें जरूर सफलता मिलहै। कोई भी काम छोटौ नइं होत। मन लगाकें काम करो। मैंनत कौ फल मीठौ होतइ। तुमाइ पाँचउ उँगरियाँ घिउ में डूबीं रैहैं। *(दिवले सें)* कओ साब कैसी कई!

दिवले - *(सटोले सें)* बिल्कुल ठीक कइ। हमतौ जा जानत कै तुमने

मैंनत सें, ईमानदारी सें काम करी, सो देख लो खूब फूल-फल रए। हर तराँ सें सम्पन्न हौ। खूब मजे में हौ। चैन सै दार-रोटी खा रए औ प्रभु के गुन गा रए। अच्छी खेती-बाड़ी है, घर-मकान है। ट्रैक्टर है, औलाद तुमाई सुखी है, खूब आमदनी है, साव-गती है। गाँव में और रिस्तेदारन में तुमाई अच्छी धाँक है।

सटोले - सब! तुम सब-जनन की आसीरवाद है साब! आप ती खुद खूब मजे में हौ मास्साब! तुमें का कमी है। ईमानदारी सें, मैंनत सें तुमने काम करी, सो देख लो हर तराँ से मजे में हौ। ईमानदारी में देर जरूर लगतइ। लेकिन ऐसी सफलता मिलतइ कै कछू न पूँछौ। सत्य की जड़ भौत गैरी रत। हमें अच्छी तराँ सें धियाँन है, कै जब अपुन हलके हते, ती अपने घर में का हतौ? कछू नइं। लेकिन ऊपर वारे की किरपा सें आज सब कछू है। हमने ती जीइ सिक्छा औलाद खों दई है, कै बेटा सत्य खों पकरें रानें औ ईमानदारी सें, मैंनत सें काम करनें। काऊ खों सतानें नइयाँ।

दिवले - ठीक कइ। बस जीइ आसीरवाद ई कैलास खों दैनें जीसें जी लरका 'दूद-करूला' करवै।

सटोले - देखौ! अकल बताबी अपने हाँत है। काम कैलास खों करने। दुख दैकें करलैहै, ती सुख लैकें खा लैहै। ईसें बेटा कैलास! लेंन से काम करौ। मात-पिता औ गुरुजनन की आसीरवाद फलै। खूब आनन्दी होनें तुम देख लइओ। बस! हमें जेइ कनें ती सो कैलइ। अब तुमाई मरजी।

कैलास - *(उठकें सटोले कक्का औ दिवले मास्साब के पाँव परत। कान पकरकें गलती मनाउत)* दोइ जनन सें वादी करत कै जैसी गैल बताइ मैं ऊसइ चलबे की कोसिस करहौं।

पीताराम - *(सटोले औ दिवले सें)* तुमने हमाए मौंड़ा की आँखें खोल दईं। हम तुमाओ ऐसान और हाँत कौ जस मरत-मरत लौं नइं भूलें। *(आँखन में अँसुआ आ जात) (कैलास की आँखन सें अँसुवा टपकन लगत कैलास ने दद्दा सें गलती मनाई, चरन छुए)*

(दिवले औ सटोले हँसत भए अपने-अपने घरन खों जाउत)

पीताराम - *(कैलास सें)* कइलास! चलौ कलेवा करकें बैंक चलिए, किसान क्रेडिट कारड बनवावे खों।

कैलास - हओ दद्दा! मैं फरसू सें साईकिल माँग कें अब्बइं आउत लौट कें, फिर चल रए बैंक।

(तबइं परदा गिर जातइ)

- शरद कुंज, किले के पास, पृथ्वीपुर,
जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

ऐसौ लगत

- शंकर दयाल खरे 'शंकर'

ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।
चाए चैंच की भाजी-रोटी, खैबे खाँ मिल जाय।
मँउअन की मुरका औ डुबरी, लटा भौत मन भाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

कँनकउआ-लिसुआ की भाजी, सपनन मोय दिखाय।
चौंरइ, सरसों और चनन की, भाजी मन-ललचाय।
जब कड़यारी बनें नौंनियाँ, भूँक दौरकें आय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

मैंथी, पलकी और नौंरपा, भौतउ मन खाँ भाय।
जाय बरेजँन और पोइ की, भाजी टोर लिआय।
सूरन और अँगीठा साँचउँ, बिलकुल गये बिलाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

कुटकी, काँकुन, लटा-बसारा, आँखन नईं दिखाय।
समां, बाजरा, कुदवा काँ गए? ढूँड़-ढूँड़ रै जाय।
मठा, महेरी, भँगरी, धैंगी, खैबी भूलत जाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

सुरका बिकें, गिंजावर बिक्बें, बिकन किसुरुआ आय।
उसे-उसाए बेर बिकत हैं, बिरचुन साउ बिकाय।
सतुआ-गुर जो खाय घोर कें, तन में तागत पाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

ना फोरै ना पखा उड़ाबे, मीठे ऊँमर खाय।
तैंदू की 'तिंदफुरी' लिआबै, रुच-रुच खीर बनाय।
बनें 'सिंगारन की लपसी' जब, लार टबक सी जाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

दार-भात औ कड़ी-बरा सब, लेबै खूब मिलाय।
घी-सक्कर भी ई में डारै, सबखाँ साँनत जाय।
'षटरस स्वाद' भरो जी भोजन, 'कालौंनी' कओ जाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

घी-गुर, साँय, भटा की भरता, संग 'गकरियाँ' खाय।
बे दौंना-पनवारे काँ गए? मन रै-रै पछताय।
ठाँड़े-ठाँड़ें खैबौ-पीबौ, मोखाँ नइँ पुसाय।
ऐसी लगत जुँनइ की रोटी, मीड़ मठा में खाय।।

- दूल्हा बाबा मार्ग, नौगाँव, जिला छतरपुर (म.प्र.)

किसानी की किसा

- प्रेमनारायण पाठक 'अरुण'

ऐसें ऐंसे, कान लगत कै बेरा कड़त में देर नईं लगत, पुराने जमाने में जोन आदिमानव कहाउत ते, बे फल, फूल, पत्ता खाकें, बिरछन के बकला पैरत हते, पहारनन की कन्दरन में बसकें गुजर-बसर करत ते, आज हजारन बरसन की पगडन्डी चलत-चलत हम लैपटॉप और नेटबुक के जमाने ली आ पींचे, आदमी की खुपरिया की का कइये, रोजाना विज्ञान की कीनऊँ न कौनऊँ तमासी हमाँय सामूँ ठाँड़ी कर दव जात, अँगाऊँ का-का होनें भगवानई जान सकत, हमाँय अपुन के देखतई देखत किसानी की तौ किसई बदल गई, सबई काम मशीनन सें होन लगे, साँसऊँ बे बातें हराँ-हराँ विसरत सीं जा रईं, कछूती बिसरई गईं और किसा सीं लगन लगीं, इत्ती पानी बरसत हतो कै कैऊ दिना की झिरें लगत तीं, नरवा-नारे चड़े रात ते, उरैया के लानें तरस से जात ते, जाड़े सोऊ बज्जुर के परत हते, जाड़े तौ अबै परत, आँतर इत्तौ है कै पानी और बरफें गिरतीं दूर देशन में और उनईं के जाड़े इतै ली आ जात, पैलाँ जाड़े इतई के परत ते ऊ की कारन सोई जौ है कै डाँगें कटकें मैदान होत चले जा रयै। जो सूका पर रऔ, और दूसरी जाँगाँ की व्याधियाँ हमाँय ली हवा में उड़कें आउतीं, भौत पैलां हर में बैला नेंकें एकाद पटिया बै लई, तकें रयैं, काटकें फसल घरै आ गई, कुठियाँ बण्डा भर लयै, हराँ हराँ फिर पानी की तनक मनक कमी भई सो,पुखरा पुखरियन सें काम चलो, फिर कुआ खुदे, नहरें बनीं, फिर खेत ढारबे के लानें तरसा चले, जोंन ढोरन की खाल कौ बड़ूडे थैला घाँई रात तो, वरार, में बाँधो जात हतो, फिर नकरिया की राँट चलो ई में भौंरा, बदरीट, सिंगारे, गदेली, जुआँ, नान, अरा, पईं, माल, किलवाई, माटी की घरियाँ, बरारू, भौंरा, माँजी, सबई कछू रात हतो। जुआँ में जेर, चोइया, माड़रें, सैला, पचारीं, तरौंची लगीं रात तीं, हराँ-हराँ जौ नकरिया की राँट बिला गव, फिर चले लोहिया राँट, ई में सामान तौ जोई सब रात तो अकेंले कुल्ल सामान लोहे की लगो रात तो, हर में हरीश, परेथो, अकुईया, मुठिया, कुसिया, काँटे, पगैया, पेंनिया, जुआँ सबई कछू चानें परततो, बरैंयाँ बनाउत को पचा, कोपर खेतन की मेड़न पै धरे अई राततें, बखरनी बखर सें होत ती, ई बखर में लोड़, डाँड़ी, दतुआ, पाँस, मुठिया, लगी रात हती, खेत के गेरऊँ बारी या बागड़ बका, जेरी सें लगत हती, छुआपा, खड़ेलुआ, अण्डा, बेशरम, थुबी, नागफनी, लेई, जरियाँ जाँ जो कछू मिलो सो लगा दव, कड़वे के लानें ज्यारा, टटियाँ लगत हते, ढोरन खाँ पानी पिबाबे लम्बी मोटीं नकरियाँ निहाने, कुलरिया सें कोल-कोल डोंड़ा-डोंड़ी बनाई जात ती।

पगईया, जोरा, हरैनिया, पेंनिया, हाँतई में रात हते, उजरा ढोरन के एक पाँव में चुटकीं, डुड़कीं पैराईं जात तीं, ठेंगुर गरे में डारे जातते, मौं में जोरिया की मुसीका बाँदो जात तो, गरे में घण्टा, घण्टी पैराई जात ती, कै वे बजत रावें और हिरा न पावें, खटखटा, खटखटियाँ सोऊ नकरियन के पैराय जात हते सो वेई बजत रात हते, फिर उनें थान पै बाँदो जात हतो।

खेत पै मचान, ढबवा, मड़ैंया बनीं रात तीं, गुथना गुलेल औ गुतला सें हरिया हाँके जातते, ढबबा तरे हो गकरियाँ सेंक के खावे की आनन्दई न्यारी हतो, और ई ढबवा नें आज चोला पैर लव ढावाकौ।

आबी जाबी निगकें कै बैलगाड़ी सें होत हतो ई बैलगाड़ी में तीन धुरा,ज्वाँरी, पटलीं, पईया, वाँगर, खड़्डुआ, नग, पुठी, दोई पईयन में दो लोहे कीं हल्लें, गर्रा, भौंरा, सैला, पगईया, पाखड़ी लगाई जात हती।

रैवे के लानें माटी के गोंदा धर धर कच्चे मकान बने, इनमें, म्यारी, लठा, कुरवा, बाँस या सियारू की खाडू डारकें खपरन से छाय जात, कूँड़े, घरियाँ, लगाकें उरितियाँ बनाई जात हतीं, फिर माटी छापकें, गोबर सें लीपकें, पोतनी माटी सें पुताई करकें घर खाँ चमकाव जात हतो, जिनमें न जादाँ गरमी लगत हती न जादाँ सरदी, जादाँ सरदी परी सो धान की कै कुदवन की प्याँर डारकें, कथरी बिछाकें, खुआरें ओड़ीं जात ती, घरन-घरन में कौंड़े बरतई रात हते, चौमासे में कऊँ सें पानी चुँओ सो चुँआना सुदार लये।

लरका वारन के खेल हते - तीन पैया की, एक पैया की नकरियन की गाड़ी, चिरंगा, गिली डंडा, चकरा-चकरी, खुनखुना, धचरा गाड़ी (हलकी बैलगाड़ी घाँई) चपेटा, कक्कोरियाँ, पुतरा-पुतरियाँ, गदबद दैवी, कबड्डी, खो-खो, लुका लुकीअल, धुवा धुवीअल, आँख मिचीअल, भौंरा पपीरा, कुईया पार, चिटी, चिटपिटियाँ, भीट में मारे जाबे बारे पटाका, बाँस की पिचकारी, अटकन चटकन, कौंड़ी के भई कौंड़ी के, अक्कड़-बक्कड़, पूँ-पूँ, नौ पारा, घरघूला, और खचोरबे के लानें खजरी की राँसा, तौ ऐसे कुल्ल खेल लरका वारे खेलत रात हते। जोंन सब हराँ हराँ विसरत जा रयै, झूला झूलवे नकरिया की बनो हिड़ोरा सोई अब कमईं दिखात, और आज के लरका वारन के खेल तौ अपुन देखई रयै तीन खूँटा खोरन-खोरन गड़े दिखा रयै, कम्प्यूटर, मोबाइल तौ घरन-घरन धरे अई है, फुरसत सोऊ उनें कम है।

तौ जा हती किसानी की किसा, सो भई पार, बढ़ई नें बनाई टिकटी-हमाई किसा निपटी।

- सटई, जिला छतरपुर (म.प्र.)

चिपको आन्दोलन और वर्तमान बुन्देलखण्ड

- डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

हिमालय क्षेत्र के वर्तमान उत्तराखण्ड, प्रान्त के चमोली जिले से 'चिपको आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ था। चिपको अर्थात पेड़ को बाहों में भर, आलिंगनबद्ध कर उसे कटने से बचाना था। सन् १९७० के दौरान 'चिपको' शीर्षकधारी आन्दोलन को पूरे भारत में समर्थन मिला था। इस वन बचाओ, हिमालय बचाओ आन्दोलन में महिलाओं की अहम् भूमिका रही थी। मूलरूप से चिपको आन्दोलन अहिंसक गांधीवादी आन्दोलन है। भारत के इस आन्दोलन से दुनिया के देशों ने 'वन संरक्षण'की प्रेरणा प्राप्त की है। उल्लेखनीय है कि हिमालय की पर्वत श्रृंखला, भूटान, चीन, भारत, नेपाल, पाकिस्तान आदि देशों की पर्यावरणीय जीवनदायिनी चेतना है। पर्यावरणीय चेतना जागृत करने के लिए अब स्कूलों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों ने भी कमर कस ली है। और पर्यावरण के ज्ञान को अध्ययन का अनिवार्य विषय बना दिया है। इस सजगता के पीछे चिपको आन्दोलन की ही चेतना की भूमिका रही है। चिपको आन्दोलन के प्रमुख नेता सुन्दरलाल बहुगुणा का कथन है कि ''हमारी संस्कृति का जन्म अरण्य में हुआ है। चारों तरफ अरण्य था और उसके बीच में लोग बैठे थे। इस संस्कृति ने मनुष्य को अंतर्मुखी बनाया।'[१]

चिपको आन्दोलन को प्रगति मार्च १९७४ के बाद से प्राप्त हुई थी। इस वर्ष इलाहाबाद के खेल का सामान बनाने वाली 'साईमंड' कंपनी को उत्तराखंड के चमोली जिले में अंगू प्रजाति के पेड़ों को काटने का ठेका मिला था। शासन की ओर से इस प्रजाति के पेड़ काटने की स्थानीय जनता को मनाही कर दी गई थी। शासन के ध्यान में यह बात थी कि चमोली जिले के रेणी गांव के प्रक्षेत्र में स्थित इन अंगू प्रजाति के वृक्षों को गांव वालों के रहते काटा नहीं जा सकेगा। अतः इस प्रक्षेत्र के आसपास के गांव वालों को, युद्धकाल की उनकी सराहनीय भूमिका के एवज् में मुआवजा देने के बहाने चमोली जिले के नगर में बुला लिया गया था और इसके बाद निर्बाध स्थिति समझ ठेकेदार से वृक्ष काटने के लिए कह दिया जाता था। जब यह पेड़े काटने की कार्यवाही चल रही थी उसी समय उस गांव की एक जागरूक लड़की ने रेणी गांव की महिला प्रमुख गौरादेवी को इसकी खबर कर दी। गौरादेवी ने देखते ही, देखते गांव की महिलाओं का दल एकत्रित कर पेड़ से चिपक, पेड़ से लटक, ठेकेदार और उसके आदमियों को पेड़ काटने से रोक दिया था। वे महिलाएँ रात भर पेड़ों की निगरानी करती रहीं, दूसरे दिन जब इस घटना की जानकारी आसपास के क्षेत्रों में फैल गई और उस गांव के आदमी वापस आ गए। तब ठेकेदार और उसके आदमियों को विवश होकर गांव छोड़ना पड़ा और इस प्रकार पेड़ के विनाश की यह कार्यवाही रुक गई थी। तत्कालीन उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री हेमवंती नंदन बहुगुणा ने इस मांग के प्रकरण में एक छानबीन कमेटी बना दी थी। यही घटना देश के ''पर्यावरणीय विकास'' का मूल्यबिन्दु सिद्ध हुई और सारे देश की चेतना को प्रभावित करने में सफल हुई। इस चिपको आन्दोलनकर्ताओं का प्रमुख नारा था -

जमीन हमारी, पानी हमारा, सारा जंगल हमारा,
हमारे पूर्वजों ने हमें जगाया है, हमें जंगल को बचाना है।

सुन्दर लाल बहुगुणा ने चिपको आन्दोलन का मूलमंत्र बताते हुए लिखा है -

क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी पानी और बयार।
मिट्टी पानी और बयार, जिंदा रहने का आधार।

बहुगुणा ने लिखा है ''पर्यावरण की रक्षा के लिए चिंतन के क्षेत्र में ''चिपको'' आन्दोलन ने एक नई दिशा दी है। जो आन्दोलन पहले केवल औद्योगिक सभ्यता द्वारा दिए गए प्रदूषण के तोहफे से मुक्ति के लिए तकनीकी उपायों के इर्द-गिर्द चक्कर काटता था, उसको 'चिपको' आन्दोलन 'मिट्टी पानी और बयार' के नारों के तहत समस्या की तह तक ले गया।[२]

हिमालयीन वन बचाओ आन्दोलन के प्रमुख नेता चंडी प्रसाद भट्ट ने गढ़वाली भाषा में प्रचलित शब्द 'अंगलवालथा' जिसका अर्थ होता है, पेड़ को आलिंगनबद्ध कर लेना का उपयोग किया था। बाद में इस गढ़वाली भाषा के 'अंगलवालथा' का रूपान्तर हिन्दी भाषा के मान्य शब्द 'चिपको' के रूप में परिवर्तित हो गया था। यह चिपको आन्दोलन सन् १९७४ के आगे, अगले पांच वर्ष में पूरे उत्तराखण्ड सहित हिमालय के क्षेत्रों में फैल गया था। इस आन्दोलन की महिला नेत्रियों में गौरादेवी, सुदेशा देवी, बचनी देवी प्रमुख थीं। और पुरुष नेताओं में चंडीप्रसाद भट्ट, सुन्दरलाल बहुगुणा, गोविन्द सिंह रावत, धूमसिंह नेगी, शमशेर सिंह विष्ट और घनश्याम रतूड़ी का नाम उल्लेखनीय है। वर्ष १९८१-८३ में सुन्दरलाल बहुगुणा ने हिमालय क्षेत्र में पांच हजार किलोमीटर की पैदल यात्रा द्वारा आम जनता में हिमालय क्षेत्र के वन बचाओ 'चिपको आन्दोलन' को प्रचारित कर जनता को पूरी तरह जागृत कर दिया था। अपने-अपने वन स्रोतों को बचाये रखने के लिए 'चिपको' का संदेश एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति के रूप में सामने आया था। यूनाइटेड नेशन की पर्यावरणीय योजना में चिपको आन्दोलन की गतिविधियों का उल्लेख किया गया था। इस आन्दोलन का प्रभाव बढ़ते-बढ़ते राजस्थान और बिहार में भी फैल गया व कर्नाटक राज्य में चिपको की प्रेरणा से 'अपीको

आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ था। वनों की जीवन सम्बंधी उपयोगिता के महत्व को रेखांकित करते हुए अब देश की सभी शिक्षण संस्थाओं ने अपने यहां पठन-पाठन में पर्यावरणीय शिक्षा को शामिल कर लिया है। इस चिपको आन्दोलन ने वन संरक्षण एवं पर्यावरण सुरक्षा के प्रश्न का अंतर्राष्ट्रीकरण कर दिया है।[३]

चिपको आन्दोलन के नेता सुन्दरलाल बहुगुणा की पर्यावरणीय समझ बहुत गहरी थी और उन्होंने प्राकृतिक विलक्षणताओं का काफी समीपता से दर्शन किया था। उनके अनुसार मध्यकाल में काश्मीर में शेख सालार नाम के संत हुए थे, जिनको घरवालों ने नकारा मान जंगल में स्वतंत्र विचरने के लिए छोड़ दिया था। वे प्रकृति से प्राप्त फल, फूल, पत्ता, जल, दूध आदि से ही अपना जीवनयापन करते थे और गुफा में रहते थे। वह संत गांव-गांव में जाकर उपदेश देकर कहते थे, 'ऐलिपोस वन तेलीपोस' अर्थात् जब तक वन रहेंगे, तभी तक अन्न रहेगा। पन्द्रहवीं सदी के राजस्थान के संत जम्बोजी ने जीवन के सदाचार के लिए २६ नियम बनाये थे। जिनमें से दो नियम पशु-पक्षी नहीं मारना और हरा-भरा पेड़ नहीं काटना भी है। इन नियमों को मानने वाले विश्नोई समाज की स्थापना भी संत द्वारा की गई थी। राजस्थान में खेजड़ी का वृक्ष बहुत उगता और पनपता है, इससे पशुओं को चारा व मनुष्यों को खाना मिलता है। इसे राजस्थान का 'कल्पवृक्ष' कहा जाता है। सन् १७४० ई. में जोधपुर के महाराज अभयसिंह ने अपने लिए महल बनवाने की योजना बनाई और ईंटें पकाने के लिए विश्नोईयों के खिजड़ी गांव से, खेजड़ी के वृक्ष काटने का हुकुम दे डाला था। खिंजड़ी गांव की महिला अमृतादेवी ने कहा कि हम वृक्ष नहीं काटने देंगे, क्योंकि यह हमारे पंथ के विरुद्ध है और यह कहकर वह वृक्ष से लिपट गई। पर राजा के सैनिक नहीं माने, विश्नोई समाज के लोग पेड़ों से लिपटते गए और राजा के सैनिकों ने उन सब का एक-एक कर वध कर दिया था। बहुगुणा के अनुसार वृक्षप्रेमी रिजर्ड बरवे ने भारत में जब यह प्रसंग सुना, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने 'वृक्ष मानव संस्था' के नाम से इस कहानी को प्रचारित किया। यह भारत की महान सांस्कृतिक परंपरा है।[४]

चिपको आन्दोलन के प्रमुख नेता और पर्यावरण विचारक सुन्दर लाल बहुगुणा का जन्म ६ जनवरी, १९२७ ई. में टेहरी के मरोदा गाँव में हुआ था। उन्होंने बचपन में माताजी को पूरे दिन में अठारह घण्टे लगातार काम करते देखा था। जीवन के लिए इतना अधिक संघर्ष करते देख बहुगुणा के मन में घर का गहरा प्रभाव पड़ा था। उनके गुरु श्रीदेव सुमन गांधीवादी नेता थे और अहिंसक तरीके से सामाजिक जीवन की लड़ाइयां लड़ने में विश्वास रखते थे। सन १९५६ में बहुगुणा की शादी विमला से हो गई थी। अंग्रेजों के समय में, अंग्रेजों द्वारा हिमालय के वनक्षेत्रों से अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए लगातार वनों का विनाश किया गया था। स्वतंत्र भारत में भी इसी योजना पर आगे अपनी सरकार चली थी। हिमालय क्षेत्र के ग्रामीण क्षेत्रों का जीवन वन की स्वाभाविक क्रियाओं के तहत ही चलता है। वनों के कटान से हिमालय क्षेत्रों के रहवासियों का जीवन संकटमय हो जाता है। अतः इसी समय से बहुगुणा ने गांव-गांव की यात्रा कर हिमालय क्षेत्र की जनता को जंगल बचाने का संदेश दिया था। हिमालय क्षेत्र में कालोनियों के विकास, शहरीकरण एवं बांध बनाए जाने का भी विरोध बहुगुणा ने पर्यावरणीय सुरक्षा की दृष्टि से किया था। हिमालय क्षेत्र के पर्यावरण को बचाने का कार्य चंडीप्रसाद भट्ट, महेशचन्द्र मेहता एवं प्रोफेसर वीरभद्र मिश्रा ने भी किया था। पर्यावरण बचाओ, नदियों को जल प्रदूषण से मुक्त रखो, गंगा के जल को साफ रखो, जलचरों की रक्षा करो आदि, चेतना को जगाने के लिए कई संगठनों का जन्म हुआ था। जिनमें प्रमुख हैं "न्यू लेह प्रोजेक्ट", "संकटमोचन फाउंडेशन", "वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड"।[४]

चिपको आन्दोलन देश के लिए पर्यावरण को बचाने का एक स्पष्ट संदेश है। हिमालय के वन, पर्वत, नदियां, हिमग्लेशियर, झीलें, औषधियां, जानवर सभी पर्यावरण इस देश की जीवनरेखा के रूप में है। जीवन चक्र में संतुलन बनाये रखने के लिए हमें "हिमालयीन प्रकृति" की पूरी रक्षा करनी है। हिमालयीन प्रकृति देश के लिए उर्वरा मिट्टी, जल और सांस्कृतिक जीवनबोध प्रदान करती है। सुन्दरलाल बहुगुणा के अनुसार "भारत में वनों का व्यापारिक तौर पर दोहन पिछली शताब्दी में प्रारंभ हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी के बढ़ते हुए व्यापार के कारण और यूरोप में जो देश लड़ाइयां लड़ रहे थे, वहां उनके सारे ओक के जंगल खत्म हो गए थे। तब चिंता हुईकि अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए जहाज कैसे बनाए जाएं, तो फिर भारत में खोज हुई कि कौन सी अच्छी लकड़ी है। उनकी निगाह मालाबाल के वनों में सागौन की लकड़ी पर पड़ी। उसके बाद रेलों की आवश्यकता महसूस की गई। हिमालय क्षेत्र की वनसंपदा पर सीधे-सीधे आक्रमण अंग्रेजों ने प्रारंभ किया था। रेलवे के कार्य में लकड़ी का सर्वाधिक उपयोग अंग्रेजों द्वारा ही करना आरंभ किया गया था। पर्यावरण की रक्षा के सम्बंध में एक चीनी कहावत प्रसिद्ध है - "जो व्यक्ति अपना भविष्य केवल एक दिन के बारे में सोचताहै, वह फसल उगाता है, जो दस साल आगे की सोचता है, वह पेड़ लगाताहै और जो अपनी उम्र भर की सोचता है, वह वन लगाता है।' चिपको आन्दोलन की प्रेरणायें, शिक्षायें भारतीय जीवन संग्राम की शक्ति बनकर उभरें हम जगें और सबको जगायें।[५]

"महुआ-मेवा और बेर-कलेवा" का भू-भाग बुन्देलखण्ड अपने स्वाभाविक प्राकृतिक वनों के अभाव के कारण सूखा, अकाल, धरती दरकने जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण त्रस्त है। अन्न, जल के अभाव के कारण बुन्देलखण्ड के मध्यभाग के जिले महोबा, बांदा, उत्तरप्रदेश एवं छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़ मध्यप्रदेश के हजारों लोग दिल्ली, हरियाणा, भोपाल, नोएडा आदि के औद्योगिक भागों में

रोजी-रोटी की तलाश के लिए पलायन कर कम से कम मजदूरी की दरों पर काम करने के लिए बाध्य हो रहे हैं। और दबंग ठेकेदार ऐसे गरीब मजदूरों को बंधक के रूप में अपने यहां रखकर जोर जबरदस्ती से उन्हें काम करने के लिए विवश कर देते हैं। इस प्रकार की हजारों शिकायतें बुन्देलखण्ड के इन जिलों के जिलाधीशों को लगातार प्राप्त होती हैं। पर वे रोजी-रोटी के लिए गरीब मजदूरों के वास्ते कुछ भी कर पाने में असमर्थ दिखाई देते हैं। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अनुपम मिश्र के अनुसार "अकाल की पदचाप साफ सुनाई दे रही है और सारा देश चिंतित है, यह सच है कि अकाल कोई पहली बार नहीं आ रहा है। लेकिन इस अकाल में ऐसा कुछ होने वाला है जो पहले कभी नहीं हुआ। देश में सबसे सस्ती कारों का वादा पूरा किया जा चुका है। कार के साथ ऐसे अन्य यंत्र-उपकरणों के दाम भी घटे हैं, जो १० साल पहले बहुत सारे लोगों की पहुंच से दूर होते थे। इसदौर में सबसे सस्ती कारों के साथ सबसे मंहगी दाल भी मिलने वाली है। यही इस अकाल की सबसे भयावह तस्वीर होगी। यह बात औद्योगिक विकास के विपरीत नहीं है। लेकिन इस महादेश के बारे में सोचना हो, तो हमें खेती, इसके पानी, अकाल, बाढ़, सबके बारे में सोचना होगा।" बुन्देलखण्ड के टीकमगढ़ जिले में ओरछा के समीप बेतवा तथा जामनी नदी के बीच के वन्य भागों में ग्रामवासी आज भी वनों पर आश्रित हैं। परन्तु यहाँ का वन्य क्षेत्र लगातार घट रहा है, बुन्देलखण्ड में धनधनाते क्रेसर, जमीन से मुरम मिट्टी उखाड़ती मशीनें, तालाबों का मिटता अस्तित्व, प्राकृतिक झरनों का विनाश, पहाड़ियों का अवनीकरण, स्वाभाविक जलस्रोतों का नष्ट होना, पर्यावरण के विरोध में क्या कुछ इस बुन्देलखण्ड में नहीं हो रहा है। इस पर बुन्देलखण्ड अंचल में पर्यावरणीय विभीषिका से बचने के लिए कोई ठोस उपाय आज तक सामने नहीं आए हैं। और यदि सामने कुछ आ रहा है तो वह केवल भाषण हैं, चिंताएं हैं और चर्चायें हैं। चिपको आन्दोलन से प्रेरणा लेकर बुन्देलखण्ड में भी इस प्रकार का वन्य, पर्यावरण का आंदोलन चलाने की महती आवश्यकता है। बुन्देलखण्ड के लोककवि ईसुरी ने अपने एक लोकगीत में 'नीम' की छांव के विषय में लिखा है -

शीतल एइ नीम की छइयाँ,
घामो ब्यापत नइँयाँ,
धरती जे छू-छू जाने हैं, लालीहू डरइयाँ,
फिर करबू आराम लौट कें, अपने जियरा खईयाँ।
ऐसोई हरो बनो रय 'ईसुर' हमरे नियत गुसईयां।[७]

हमारी वैदिक संस्कृति में वनों एवं वनों में स्थित आश्रमों को पूरा महत्व दिया गया था। हमारे ऋषि मुनि वनों में ही निवास करते थे और कन्द, मूल, फलों का सेवन कर अपना जीवन यापन करते थे। प्राचीन काल के मौर्य शासक, गुप्त शासक, मध्यकाल के मुगल शासक सभी ने पथ निर्माण के समय मार्गों के किनारे फलदार वृक्ष लगाये जाने की परंपरा का पालन किया था। राजपूतानें-बुन्देलखण्ड के शासकों के यहाँ वृक्ष पूजन को विशेष महत्व प्रदान किया जाता था। अंग्रेजकालीन भारत में भी हमारे देश में पर्याप्त वन थे। परन्तु बीसवीं सदी के मध्य से लोकतंत्री प्रणाली के शुरू होते ही औद्योगिकता की होड़ में, दबंगों के बढ़ते हुए लालच के कारण, जनसंख्या पर नियंत्रण न होने के कारण, इस देश के वनों का विनाश बड़ी तेजी से हुआ। इस देश के वन विभाग के अधिकारियों ने वन की रक्षा की अपेक्षा, वन काटने वालों का सहयोग अधिक किया है। नवीन वन क्षेत्रों का विकास ठीक से कभी नहीं हुआ और प्रत्येक जगह वन लगाने का कार्य जमीन की प्रकृति के विपरीत के अनुपयोगी वृक्षों को लगाकर किया गया। उदाहरण के लिए शीघ्र पनपने के फेर में बबूल जैसे अफलदार कांटेदारी वृक्ष को प्राथमिकता दी गई। बुन्देलखण्ड के चरवाहों का कहना है कि बबूल के कांटेदार वृक्ष को कोई जानवर अपना निवाला नहीं बना सकता है। यदि भूल से कोई बकरी इस वृक्ष की पत्ती को चबा लेती है, तो उसके गले में कांटा फँस जाता है और वह तत्काल भीरा रोग से मर जाती है। आज हमारे देश में वनों की स्थिति अत्यंत न्यूनतम हो गई है। चिपको आन्दोलन हमारी प्राचीन 'वृक्ष संरक्षण' की प्रवृत्ति की ओर हमें पुनः प्रेरणा देने के लिए सामने आया है, हमें बुन्देलखण्ड के मामले में इससे प्रेरणा लेने की आवश्यकता है।[८]

चिपको आन्दोलन के संदेश के अनुसार, पर्यावरण की समस्या से निपटने के लिए एक ओर गहन और विस्तृत वनीकरण की आवश्यकता है तो दूसरी ओर सामाजिक जागरुकता की आवश्यकता है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय दृश्य को प्रकट करती हुई कविता इस प्रकार है -

चिड़ियों ने, जिस किसी वृक्ष पर, घोंसला बनाया
उस पर, एक सांप जरूर नजर आया,
कलख बदल गया, चीख-चिल्लाहट में,
शुरू हो गई नये वृक्ष की तलाश,
यह सिलसिला बार-बार दुहराया गया,
और हर बार पाया गया, कि घोंसला बनते ही
सांप भी मौजूद हैं अब इस देश में
कोई ऐसा वृक्ष नहीं, जिस पर सांप न हो
आखिरकार चिड़ियां कहां जायें, कहां बनाएं घोसला
जहाँ सांप न हो।[९]

संदर्भ ग्रंथ -

१. भारतीय जन-जीवन, भाग-२ (सूचना मंत्रालय, भारत सरकार, १९९५), पृ. ११६, एवं इंटरनेट से संकलित जानकारी।

२. चिपको मूवमेंट : उत्तराखंड वोमैन्स बिड टू सेव फोरेस्ट (अनुपम मिश्रा, सत्येन्द्र त्रिपाठी, प्रका. पीपुल्स एक्शन, १९७८) पुस्तक की इंटरनेट पर उपलब्ध जानकारी से संकलित, भारतीय जनजीवन, भाग-दो, पृ. १०६, ररती की पुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली २००७), पृ. ४२-४३

३. धरती कीपुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली

२००७), पृ. ३३-१०८, इंटरनेट से संकलित जानकारी
४. भारतीय जन-जीवन, भाग-२, पृ. ११८-११९, आधुनिक राजस्थान का बृहद् इतिहास (डॉ. रामप्रसाद व्यास, राजस्थान, हि. ग्र. अ. जयपुर, १९९८), धरती की पुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली २००७), पृ. ९-३२.
५. इंटरनेट से संकलित जानकारी। आधार सुन्दरलाल बहुगुणा ''एनवायरमेन्ट एण्ड एजुकेशन'' व अमेन्द्र दत्ता का बहुगुणा से ३ अगस्त २००६, साक्षात्कार, धरती की पुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली २००७), पृ. १-२८.
६. भारतीय जनजीवन, भाग-२, पृ. ११२, जागरफी ऑफ उत्तरप्रदेश (ए.आर. तिवारी, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली १९७१), पृ. २३-२६, पर्यावरण संरक्षण (सुबुद्धि गोस्वामी, श्याम प्रकाशन, जयपुर १९९९), पृ. ३५, धरती की पुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली २००७), पृ. ७७-८५.
७. बुन्देलखण्ड समाज सृजन संवाद (प्रकाशक, संस्कारनिष्ठ एवं लोकव्यापी साइंस टेकनालॉजी प्रतिष्ठान, दिल्ली १९९९) पृ. ३६-३७, चौमासा, वर्ष १८, अंक ५७, नवम्बर १ फरवरी २००२ (संपा. कपिल तिवारी, म.प्र. आदिवासी लोककला परिषद, भोपाल), पृ. ४२-४३, दैनिक भास्कर ग्वालियर संस्करण ६ सितम्बर २००६, रविवारीय, पृ. १, लेख अनुपम मिश्र ''अकेले नहीं आता अकाल''
८. पर्यावरण संरक्षण (सुबुद्धि गोस्वामी, श्याम प्रकाशन जयपुर, १९९९), पृ. ८४, भारत के राष्ट्रीय उद्यान (राजेन्द्र सिंह विष्ट, प्रकाशन विभाग, दिल्ली २००१) पृ. १२-२०, धरती की पुकार (सुन्दर लाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रका. दिल्ली २००७), पृ. १०५-१०८.
९. गगनांचल, वर्ष २७, अंक-२, अप्रैल-जून २००४ (कविता ''लोकतंत्र-एक'' अंशुरानी, भारती सांस्कृतिक संबंध परिषद, दिल्ली) पृ. ११९.

- कुँजनपुरा, दतिया (म.प्र.)

सपन में सुध आ जाती है

- भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

आई सरस, बसन्ती है रितु, तन-मन सरस भओ है।
ऐसे में तुम गई छोड़ कें, दुक्ख वियोग छओ है।
तुमाये गोरे नारे अंग,
कि जिनपै है जोवन कौ रंग।
दूर गये छूट गये सुख-संग, हमाये मनखाँ भाती हीं।
समासई गई छोड़ के संग, सपन में काये दिखाती हीं।
बालापन की संग जवानी, आतन छूट गओ है।
चढ़ी अटा पै घटा देखतीं, मनखाँ लूट लओ है।
भले से जोवन, कटि है तंग,
धनु जैसे लयें अनंग।
कि जैसें बदरा छुअत पतंग, दूर तुम ऐसी राती हीं।
छोड़ गईं बीच धार में बाँह, सपन में कायें आती हीं।
बगिया फूली रितु बसंत में, मन में नेह नओ है।
तन की ताप बढ़ाई मन नें, कठिन कुजोग भओ है
नेह जौ नीकौ नईयां ढंग,
करै भँवरा कलियन खाँ तंग।
रूप जौ रानें नईयाँ रंग, रजऊ जौ पै इतराती हीं।
तुमाये नैनन नहीं सनेव, सपन में आती जाती हीं।
हो जाने पतझार सदा सें, ऐसई होत रओ है।
विरछा बनत करील, कछू दिन कटबो कठिन भओ है।
सेत भओ श्याम लटन की रंग,
बुढ़ापौ करत शिथिल सब अंग।
अंत की बिरियाँ कोउन संग, धूरी दुख की पछताती हीं।
इन्दु नईं राखी सहज सनेह, सपन में सुध आ जाती हीं।

- मैथिलीशरण मार्ग, महोबा (म.प्र.)

अदाधुंद के राज में...

- लल्लूमल चौरसिया

अदाधुन्द के राज में भइया गदा पंजीरी खाँय।
जुतत बैल खाँ अरई लगाकें भूकी जोतत राँय
गरर्रा बैला साँड कहाबें, मौ उठाँय फिर रए हैं
रोक टोक ना खड़ी फसल खाँ चौपर कर रए हैं।
सुनी सुनाई बात नोइ जा आँखन देखी काँय
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।
साव चोर सें मरजी पूछें चौर मरोरें मूछें।
हर्र लगे ना लगे फटकरी रंग चोखे हो छूछें
चोर चोर मौसेरे भइया चाहें जैसो खाँय।
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।
दरबारी के ठुमकन पै अब राजा दैं फिरकइयाँ
हीरो बन गए नौटंकी के स्वामी औ नचइयाँ
चना देखकें बँदरा जैसीं जे कुलटइयाँ खाँय
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।
सच के ठेकेदार बन गए लबरा दौंदा सारे।
बने मिंया मिट्ठू अपने मौ सचको दै दुतकारे।
काउ चाय जौ काये बेसरम अपनी दोंदत राँय
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।
पैलाँ बैठे आँख मूँद कें तेल काँन में डारें
साँप कढ़े पै जे लकीर पै हरदम डंडा मारें
कबै सुनबे मन भरवे खाँ साप साँप चिल्लाँय
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।
छाती के पीपर बन गए हैं लहू देसको चूसें
कै ना सकें कछू करें से करिया जैसे फूँसें,
दूद पियाउत पे मसकइसें अँगुरन में डस खाँय
अदाधुन्ध के राज में भइया ...।।

- सीताराम कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

लोककथा वह है जो कही जाये

- डॉ. वीणा चौबे

लोक कथा लोकमुख में रहती है, उसके लिए वक्ता-श्रोता दोनों ही अनिवार्य हैं। कथा का कहने वाला एक होता है लेकिन श्रोता कई हो सकते हैं। लोक कथा कहने का रिवाज गांवों में होता है। दादा-दादी, नाना-नानी अपने बच्चे को कथायें सुनाते हैं। कथा की रचना प्रक्रिया की दो-तीन स्थितियाँ प्रमुख हैं। पहली स्थिति कथा से लोककथा होने के लिए लोकमुख में आना पड़ता है और लोकमुख में वही कथा आ पाती है, जिसमें लोकत्व होता है। लोकत्व लोकतत्वों से बनता है और उन्हीं से कथा को लोकप्रियता मिलती है। लोकतत्वों में सबसे प्रमुख लोकोपयोगिता है।'

लोक के लिए जो कथा उस समय उपयोगी होती है वह लोक द्वारा ग्रहणीय होने से लोकमुख में आ जाती हैं फिर लोक के साँचे में ढ़लकर लोककथा बन जाती है। कथा की पृष्ठभूमि लोकानुभवों द्वारा बुनी जाती है, अतएव सहज, स्पष्ट, रंजक और असरदार होती है। लोककथा की जड़ उसी अंचल में रहती है और उसी अंचल की जमीन से पोषक तत्व ग्रहण कर वह कथा में नया स्वाद भर देती है।

लोककथा की भाषा और शैली इतिवृत्तात्मक होती है। उसमें शिल्प-अलंकरण सहजता से आ जाते हैं। लोककथा किसी खास वर्ग, जाति, समूह और धर्म के लिए नहीं होती, उसमें तो लोकहित निहित रहता है। अधिकांश लोक कथाओं के अंत में कहा जाता है जैसे : उनके दिन फिरे वैसई सबके फिरें। ये पंक्तियाँ लोकत्व की प्रतीक हैं।

श्री शिवसहाय चतुर्वेदी ने लोककथा को ग्राम्य कहानी नाम दिया था। श्री कृष्णानंद गुप्त ने लोक कथा के तीन प्रकार माने हैं : १. गाथा, २. कहानी, ३. दृष्टान्त। लोककथा में कथा की सभी विशेषतायें वाचिकता लिए हुए निहित होती हैं।

बुन्देलखण्ड में लोककथाओं के लिए किसा कहा जाता है। मेरी समझ में यह मध्ययुग की देन है क्योंकि किस्सा अरबी का शब्द है और उसी से उसका बुन्देलीकरण किसा हुआ है। बुन्देली में फारसी, अरबी आदि विदेशी शब्दों को बुन्देलीकरण के बाद ही अपनाया गा है।

बुन्देलखण्ड में किस्सा प्रारम्भ करने के पूर्व कहा जाता है : किस्सा सी झूठी, बातें सी मीठी, घरी-घरी को विसराम, जाने सीताराम। शक्कर को घोड़ा, सकरपारे की लगाम छोड़ दे दरबार में चला जाये, छमाछम-छमाछम। ई पार घोड़ा, ऊ पार घास, न घोड़ा घास खाये, न घास घोड़ा खाये। इत्ते के बीच में, दो लगाई धींच में, तऊ ने आये रीत में, अब धर कड़ोरे कीच में, झट आ गये बस रीत में। हंसिया की सीधी, तकुआ सी टेड़ी, पहला सौ करों, पथरा सो कोंरो, हौंत भर ककरी, नौ हौंत बीजा, होय-होय खेरे गुन होय। जरिया को कौंटो, बारा हौंत लामों, आदो छिरिया ने चर लओ, आदे पै बसे तीन गाँव, एक ऊजर, एक खूजर, एक में मान्सई नईयां, जीमें मान्स नईयाँ, ऊमें बसे तीन कुमार, एक ठूंठा, एक लूला, एक के हांतई नईयां, जी के हौंत नईयां ऊंने रचीं तीन हंडियाँ, एक ओगू, एक बोगू, एक के ओंठई नईयां। जीके ओंठई नईया ऊमें चुरोये तीन चाउर, एक अच्चो, एक कच्चो, एक चुरोई नईयां, जौन चुरो नईयां ऊमें न्यौते तीन बामन, एक अफरो, एक डफरो, एक खों भूखई नईयां।

जो कोऊ इन बातन खों झूटी समजे, वो राजा को डांड़ देवै उर समाज खों रोटी। न कैवे बारे खों दोछ, ने सुनवे बारे खों दोछ तो ऊखों जीने किसा बनाकें ठाड़ीं करी। दोछ तो ऊखों सोई नईयां, काये से कें ऊने तो समव काटवे के लाने बनाकें ठांड़ी करी। कैता तो कैतई रात, सुनता साबधान चईये।

लोक कथा का प्रारम्भ इसी तरह की लच्छेदार बातों से होता है। कई कथाओं के बीच-बीच में दोहा भी कहे जाते हैं। जैसा कहा जाता है कि किसा भी झूठीं, किस्सा में चाहे कितना भी झूठ हो, लेकिन वक्ता की कथन में कुछ ऐसा जादू होता है कि श्रोताओं में वह सच के तने पर खड़ी होती है, सच के बीज में उगकर। इसी सच के बीज के लिए लोककथा की सार्थकता होती है। दादी-नानी की कथायें बाल मनोविज्ञान पर आधारित होती हैं। हर लोक कथा का अपना उद्देश्य होता है।

लोककथाओं की विविधता के बावजूद उनमें एकता की प्रबलता होती है। हर अंचल के रीति-रिवाज, लोक विश्वास, संस्कार, लोकमूल्य आदि एकता के सूत्रों को मजबूत करते हैं। कथाओं की घटनायें काल्पनिक, रोमांचक और नीतिपरक होती हैं। जिनमें विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व पिरोये होते हैं।

इनके संवाद सरल, भाषा की सरलता, सरल कथन शैली, कथा का सार सुखांत, आशावादी और आदर्शवादी होता है अर्थात् लोककथायें भारतीय संस्कृति के अनुरूप सबको एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करतीं हैं।

हर कथा का उद्देश्य जनरंजन होता है लेकिन उसके मूल में नीति की सीख होती है। लोककथाओं में मुख्य रूप से साहसी, मनोरंजन परक कर्मफलपरक, मूल्यपरक, भाग्य परक तथा व्रत-कथाओं में पूरे वर्ष के त्यौहारों में किये जाने वाले व्रतों से संबंधित होती हैं। व्रत कथाओं का उद्देश्य देवी-देवताओं के प्रति भक्ति-भावना उत्पन्न करना होता है।

लोककथायें, लोकानुभव का वह ललित रूप है जिसने अपनी

श्रुत परम्परा द्वारा कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। इन कथाओं में मन को बांधे रखने की अद्भुत सामर्थ्य ही नहीं, हृदय परिष्करण एवं चरित्र निर्माण की अद्भुत क्षमता भी रही है। देश के विभिन्न अंचलों में बोली भेद के बाद भी इनमें जो सबसे महत्वपूर्ण एकरूपता दृष्टिगोचर होती है, वह है सहज शैली में व्यक्त लोकशिक्षण की कला।[२]

लोककथाओं की विषयवस्तु का क्षेत्र व्यापक है - इसमें मानव के अलावा प्रकृति, नक्षत्र, जादू-टोना, रसायन, नीति एवं बोध कथायें, आश्चर्य एवं चमत्कार, भूत-प्रेत, हास्यपूर्ण, मूर्खता से भरी कथायें, राजा, किसान, जमींदार आदि इसमें अपना स्थान बनाये हुए हैं। कई लोककथाओं में सत्य घटनाओं का समावेश रहता है। जैसे विक्रमादित्य, राजाभोज से संबंधित कथायें। संक्षेप में इन कथाओं में वह सबकुछ पा सकेंगे, जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते। लोक कथायें जनमानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रहती है। इसमें मानव मन की सहज अनुभूति एवं उसके रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है।

पौराणिक कथाओं में भक्ति, ज्ञान, सदाचार, बैराग्य, निष्कामकर्म, तीर्थ सेवन, यज्ञ, दान, तप, देवपूजन आदि शुभकर्मों में जन साधारण को प्रवृत्त करने के लिए उनके लौकिक और पारलौकिक फलों का सुन्दर वर्णन किया गया है। इन कथाओं के पठन-पाठन से मनुष्य को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है तथा जीवन के परम लक्ष्य भगवद् भक्ति की सुन्दर प्रेरणा मिलती है।[१]

यहाँ पर दो बुन्देली लोककथाएँ हिन्दी में प्रस्तुत हैं -

(१) न्यायप्रिय राजा

एक राजा थे वे अपनी प्रजा को पुत्रवत मानते थे। राजा अपने परिजनों और प्रजा के छोटे से छोटे व्यक्ति मैं कोई भेद न करते थे। इसलिए राजा न्याय करने में इतने प्रसिद्ध थे कि दूसरे राज्य के राजा उन्हें न्याय करने के लिए बुलाते थे और उनका न्याय देखकर उनकी प्रशंसा करते थे। राजा नियम के भी बड़े पक्के थे उन्होने जो भी नियम बना रखे थे उन पर वे अमल करते थे तथा प्रजा के लोगों को भी अमल करने को कहते। राजा अपने कार्य में राज पुरोहित की सलाह लेते थे। एक दिन कुछ ऐसा काम आन पडा कि उन्हें पुरोहित को राज्य से बाहर भेजना पडा उनका बाहर जाने का मन तो नहीं था लेकिन राजा के आग्रह को वे ठुकरा नहीं सकते थे और वे बाहर जाने लगते हैं। जाने से पहले उन्होंने राजा से आग्रह किया कि मैं आपके कहे अनुसार जा तो रहा हूं लेकिन आपसे एक विनती है कि आप पंडिताइन का ख्याल रखियेगा, वह बहुत भोली भाली है। राजा ने कहा कि पुरोहित जी आप निश्चिन्त होकर जायें मैं उनका ख्याल रखूंगा। राजा ने अपने सिपाहियों को भेजकर पंडिताइन से कहलवा दिया कि उन्हें किसी चीज की आवश्यकता हो तो निस्संकोच कह दें अगर कोई काम हो तो बतला दे हमें महाराज ने भेजा है। पंडिताइन बोली अभी तो किसी चीज की आवश्यकता नहीं है और न कोई काम ही है अगर जरूरत हुई तो बतला दूंगी। इतना कहकर सिपाही वापिस चले गये।

एक दिन आधीरात के मौके पर राजा के नगर में आग लग जाती है। आग ऐसी लगी कि अफरा-तफरी में उन्हें पंडिताइन का कोई ध्यान ही नहीं रहा। पंडिताइन ने देखा कि मकान में आग लग रही है तो वे जाकर पंडित की फोटो के पास भोलेपन से कहने लगी कि आप यहां से बाहर चलें घर में आग लग रहीं है। लेकिन फोटो कैसे बोलती....... आग बढ़ ही रही थी पंडिताइन ने अपने पति का फोटो निकाला उसे अपने कलेजे से लगाया लेकिन आग इतनी भीषण लगी थी कि वे जल गई। पंडिताइन के जलने की खबर राजा को लगी तो वे बडे दुखी हुए। कुछ दिन बाद पंडित लौटे वे सीधे राजा के पास आये। राजा से बोले कि आपका दिया हुआ कार्य मैने पूरा कर दिया है अब घर जाना चाहता हूं। लेकिन राजा तो उनके समक्ष मुँह लटकाये खडे थे। राजा को इस स्थिति में उन्होंने कभी नहीं देख था इसलिए वे पूछने लगे-महाराज आप उदास क्यों दिख रहे हैं? और इतना सुनते ही राजा की आँखो से आसुओं की झड़ी लग गई उनके मुँह से एक बोल नहीं फूट रहा था। पंडित को कुछ अनहोनी समझ में आ रही थी वे राजा से बोले कि आप कुछ तो बतायें महाराज ने सिर नीचा करके पंडिताइन के जल जाने की बात पंडित को कह दी।

पंडित जी ने सुना तो वे पहले तो विश्वास ही नहीं कर पा रहे थे लेकिन सच्चाई से मुँह भी नहीं मोड़ा जा सकता इसलिए उन्होंने राजा से पूछा कि आप मुझे सारी घटना विस्तार से बतायें। राजा ने उन्हें सब कुछ सच-सच बतला दिया। सुनकर पंडित जी का क्रोध सातवें आसमान पर था। पंडित ने राजा से कहा कि हे राजन मैं आपको अपनी पत्नी की जिम्मेदारी सौंपकर गया था और आपकी लापरवाही से वह जलकर खाक हो गई इसलिए या तो आप मेरी पत्नी को ला दें या फिर मेरा शाप लें......? राजा पंडित जी के समक्ष हाथ जोड़े नतमस्तक खडे थे। राजा ने पंडित की बात सुनी तो वे बोले हे गुरुवर आप मेरी प्रार्थना ध्यान देकर सुने आप अपनी पत्नी की अस्थियाँ मेरे कक्ष में रखवाने की अनुमति दें और मै प्रतिज्ञा करता हूं कि मै जब तक आप की पत्नी को जीवित न कर दूं तब तक इस राज्य का त्याग करता हूँ तथा अन्न जल का त्याग भी कर रहा हूँ। मैं इस अवधि में किसी को अपना मुँह नहीं दिखाऊंगा।

पंडित चुपचाप अपने घर की ओर चले जाते हैं और राजा वन में तपस्चर्या को चले गये। राजा अकेले ही वियावान जंगल में जा रहे थे उन्होंने न कोई रक्षक साथ लिया था न ही कोई सवारी। चलते-चलते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ एक साधु तपस्या में लीन थे। राजा ने सोचा कि इनसे अमृत के विषय में जानकारी लूंगा और वे तपस्वी के समाधि से जागने की प्रतीक्षा करने लगे। राजा भी आसन लगाकर बैठे थे......... बैठ-बैठे उस समय राजा का शरीर बिना अन्न जल ग्रहण करने से कृष हो रहा था। जब वे साधु तपस्या से जागे तो राजा से उन्होंने आने का कारण पूछा। राजा की

बात सुनकर साधु बोले हे राजन् आपकी लगन और त्याग देखकर मैं इसका उपाय बतला सकता हूँ। आप मेरे बताये अनुसार चलेंगे तो आपका कार्य सिद्ध होगा। साधु ने बतलाया यहां से पचास कोस दूरी पर एक देवी भक्त राजा हैं वे नित्य सवामन सोने का दान करते है। तुम उनके पास जाओ तो वहीं तुम्हारी समस्या निराकरण होगा।

राजा साधु महाराज से आशीर्वाद लेकर चल दिये। कुछ दिनों की मंजिल करके वे राजा के पास पहुंच गये। उन्होंने राजा के महल में नौकरी करनी शुरु कर दी। राजा देखते हैं कि यहां हर रोज सवामन सोने का दान होता है........ यह सोना कहाँ से आता होगा? और इन्होंने जानकारी लेने की सोची। अगले दिन ये देखते है कि राजा प्रातः चार बजे उठे दैनिक कार्यो से निवृत होकर स्नान किये और घोड़े पर बैठकर चल दिये। नौकर राजा भी उनके पीछे-पीछे गये। वे राजा एक प्राचीन मंदिर के समक्ष पहुंचे अपना घोड़ा रोका और मंदिर में प्रवेश कर गये। ये भी चुपचाप सब देख रहें थे। मंदिर में देवी प्रतिमा के सामने एक बहुत बड़े कढ़ाव में तेल खौल रहा था राजा उस कढ़ाव में कूद पडे। मूर्ति से देवी प्रकट हुई उन्होंने राजा के जले शरीर को कढ़ाई से निकाला और उसे खाने लग गई। खाने के पश्चात राजा की अस्थियाँ एकत्रित की उन पर अमृत का छिडकाव किया।

राजा जीवित हो गये तो देवी ने उन्हें सवामन सोना दिया वह स्वर्ण लेकर राजा देवी को प्रणाम करके वहाँ से वापिस अपने राज्य में आ गये। यहां आकर उन्होने याचकों को स्वर्ण दान दिया।

नौकर बने राजा यह सब देख रहे थे उन्होंने सोचा कि कल मैं भी यह करके देखूं। और अगले दिन सुबह ये राजा से उठने के पूर्व मंदिर गये इन्होंने भी वही किया जो राजा करते थे। देवी जब उन्हें स्वर्ण देने लगी तो ये राजा उनके समक्ष हाथ जोडकर खडे हो गये देवी जी ने पूछा बोलो वत्स कुछ कहना चाहते हो। राजा बोले हे मां मैं आपसे तीन चीजे मांगना चाहता हूं पहली ये कि आप मुझे थोडा सा अमृत दे दें, दूसरे आप यहाँ से यदि राजा के महल में ही अपना निवास बना लें तो राजा को हर दिन नहीं आना पडेगा। तीसरे आप यह स्थान यहाँ से त्याग दे। देवी ने उनकी तीनों बाते मान ली और अंतर्ध्यान हो गई। ये सोना लेकर राजा के समक्ष गये और राजा को सब बातें कह सुनाई राजा इनसे बहुत प्रभावित हुए उन्होंने कहा कि आप अपना असली परिचय बतायें? राजा ने अपना परिचय दिया तो वे उनके गले मिले राजा से मिलने के उपरांत ये अपने राज्य वापिस आये। उन्होंने देवी द्वारा दिये अमृत से पंडित की पत्नी को जीवित किया तत्पश्चात ब्राह्मण को बुलाकर उन्हें उनकी पत्नी सौंपी। ब्राह्मण अति प्रसन्न हुए राजा को आशीर्वाद दिया कि हे राजन् अपना राज्य अक्षय रहे।

(२) अनार दे रानी

किसी राज्य में एक राजा थे, उनके चार राजकुमार थे। राजा के तीन राजकुमारों के विवाह हो गये थे लेकिन छोटे राजकुमार ने विवाह नहीं कराया था। वे चाहते थे कि उनका विवाह उनके पसंद की लड़की से हो। राजघरानों में विवाह के नियम कुछ अलग होते इसलिए छोटे कुमार ने अब तक विवाह नहीं कराया था। राजकुमार की तीनों भाभियाँ उन्हें चिढ़ातीं और ताने भी मारतीं कि हम कब तक आपकी तीमारदारी करती रहेंगीं? लेकिन छोटे कुँवर उनकी बात सुनकर चुपचाप रहते। कहते हैं कि जहाँ चार बर्तन होते हैं उनमें खड़खड़ाहट तो होगी ही और इस राज परिवार में भी वही हुआ। एक दिन छोटे कुँवर की भाभियों ने कुछ ऐसी बात कह दी कि कुँवर उसे सुनते ही घर से बाहर निकल गये। चलते-चलते उन्हें एक बड़ी गुफा दिखी तो वे उस गुफा में पहुँच गये और वहाँ उन्होंने समाधि लगा ली। कुँवर ऐसे समाधिस्थ हुए कि जैसे उन्हें समाधि लगाने की जानकारी पहले से रही हो। उनकी तपस्या से उनका शरीर कृशकाय हो गया था। उसी गुफा में एक अन्य तपस्वी भी तप कर रहे थे उन्हें कुँवर की तपस्या देखकर आश्चर्य हो रहा था। उन्होंने अपने योग से जान लिया था कि राजकुमार अपनी मनपसंद पत्नी पाने हेतु तपस्या कर रहे हैं।

कुछ समय उपरान्त उन तपस्वी महाराज ने राजकुमार को जगाया और कहा कि आपकी सच्चे मन से की गई तपस्या सफल रही है। मैं आपसे प्रसन्न हूँ तथा मैं एक अनार दे रहा हूँ, आप घर पहुँचकर इस अनार को जैसे ही भूमि पर रखोगे तो इस अनार में से एक अपूर्व सुन्दरी निकलेगी, वही तुम्हारी पत्नी बनेगी। कुमार तपस्वी का दिया हुआ अनार लेकर वापिस अपने घर आ गये। तप के कारण उनका शरीर दुबला-पतला हो गया था लेकिन तपस्वी का वरदान पाकर उनमें फुर्ती आ गई थी। वे अपने राज्य में पहुँचे तो थकान के कारण उन्हें नींद आ रही थी, रात भी अधिक हो गई थी इसलिए वे महल के बाग में बनी बावड़ी की पाट पर सो रहे। वह अनार उन्होंने अपने पास रख लिया। रात्रि में नींद की अधिकता के कारण कुँवर के पास रखा अनार धरती पर गिर गया और उसके गिरते ही अनार से एक अपूर्व सुन्दरी प्रकट हुई। उस सुन्दरी ने देखा कि कुँवर गहरी नींद में सो रहे हैं इसलिए वह उनके सिरहाने बैठ गई। वह स्त्री सजधज के साथ प्रकट हुई थी। जब वह स्त्री बैठी थी उसी समय राजा के महल की एक नौकरानी जो एक आँख की थी, उसने कुँवर के पास रानी को बैठे देखा तो वह उसके अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर उससे बोली कि आप कौन हैं?

राजकुमारी कहने लगी कि ये मेरे पतिदेव हैं और मैं इनकी पत्नी हूँ। नौकरानी ने कहा कि आप स्नान कर लें। जैसे ही वह राजकुमारी अपने जेवर उतारकर स्नान करने लगी उसी समय नौकरानी ने एक धक्का देकर उसे कुए में गिरा दिया। वह अनार दे रानी कुए में डूब गई तो नौकरानी ने उसके कपड़े तथा जेवर पहने और राजकुमार के पास जा बैठी। जब राजकुमार की नींद खुली तो देखा कि सिरहाने एक स्त्री गहनों-कपड़ों में लदी उनके पास बैठी है।

जैसे ही राजकुमार ने उसे देखा तो वह कानी स्त्री थी। राजकुमार ने पूछा कि क्या तुम्हीं अनार से निकली थीं? उस कानी दासी ने कहा कि जी में ही अनार से निकली हूँ मेरा नाम अनार दे रानी है। पहले तो राजकुमार को भरोसा नहीं हुआ क्योंकि साधू झूठ नहीं बोल सकते। राजकुमार को कुछ गड़बड लग रहा था उसने सोचा कि मेरी भाभियों ने इसे देखा तो मेरा तो मजाक बना लेंगी। इसलिए राजकुमार ने भाभियों से कहा कि आप मेरी पत्नी की सूरत छह महीनों तक नहीं देख सकतीं। यह बात साधु महाराज ने कही है। राजकुमार ने उसकी पत्नी बनी कानी से कहा कि तुम भीतर ही रहना। एक दिन कानी बोली कि मेरा तो जी घबराने लगा है, इस कोठरी में। ऐसा करते हैं कि हम आज बागीचे में चलेंगे।

जब वे दोनों बगीचे में आये तो क्या देखते हैं कि वहाँ एक सुन्दर फूल खिला है,. उसकी बड़ी अच्छी खुशबू आ रही थी। कानी के कहने पर राजकुमार कुएँ से फूल तोड़ने लगा तो वहाँ से आवाज आई राजन् तनिक धीरे से तोडें आपके हाथ में खरोंच न आ जाये। वह आवाज सुनकर कानी नौकरानी पहचान गई कि यह तो अनार दे रानी की आवाज है, वह घबरा रही थी। कानी ने वह फूल मसलकर फैंक दिया। सुबह जब वह और राजकुमार जागकर बाहर आये तो क्या देखते हैं कि आँगन में एक आम का पेड़ लगा है उसमें पके आप भी लगे हैं, कानी ने राजकुमार से आम तोड़ने को कहा लेकिन जब वे आम तोड़ने लगे तो वही आवाज आई राजकुमार को भी अचरज हुआ और रानी घबराने लगी। वह राजकुमार से बोली महाराज यहाँ लगता है कि कोई भूत-प्रेत है ....? अगले दिन सुबह उन्हें एक सुन्दर सफेद रंग की गाय दिखी, राजकुमार उसके पास गये तो देखा कि गाय ने बछड़ा जना है वे गाय पर हाथ फेरने लगे तो वही आवाज आई, राजकुमार ने कहा कि इस गाय का दूध खायेंगे। उन्होंने देखा कि फिर उसी आवाज में कोई कह रहा था कि "कानी हत्यारी अनार दे रानी मारी" अब तो राजकुमार को भी शंका हो रही थी। उन्होंने कानी से पूछा कि क्या बात है तो उसने कुछ नहीं बताया। अब तो राजकुमार को भरोसा हो गया था कि कुछ गड़बड़ अवश्य है। वे समाधि लगाने लगे तब वहाँ अनार दे रानी प्रकट हो जाती हैं, उसने राजकुमार से कहा कि इसे आप पकड़ लें। राजकुमार ने उसका परिचय पूछा तो अनार दे रानी ने सब कुछ सच-सच बतला दिया।

परिणाम स्वरूप राजकुमार ने कानी को पकड़कर उसे सजा दे दी और अनार दे रानी के साथ अपनी भाभियों तथा परिजनों से मिले। आज महलों में खुशियाँ मनाई जा रहीं थीं।

संदर्भ -

१. बुन्देली संस्कृति और साहित्य : श्री नर्मदा प्रसाद गुप्त - पृ. ३०६
२. मालवी कथायें : डॉ. एच.एस. गुगालिया - आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल २००३ पृ. ४
३. पौराणिक कथायें : गीता प्रेस गोरखपुर सं. २०६२ भूमिका पृ. १

- जी-६५/४५, तुलसी नगर, भोपाल

पैलाँ के जनी-मान्स

- नवल किशोर सोनी 'मायूस'

सबरें जनी मान्स पैलाँ के भीतउ नैंकें रात ते।
सुख सें खात पियत पैरत ते निर खटकें सो जातते।।

पैलाँ क्षमा दया को सबके मन में हतो खजानो।
सत्य अहिंसा प्रेम एकता को पैरत ते गानो।
तुलसी मीरा सूर कवीरा के नित भजन सुनात ते।।

आपस में बेभार भलो तो हतो सबइ को आदर।
करत हते सब अपने अपने कुल को नाँव उजागर।
सबइ जनन के पाछें पाछें सबरे सुख पछयात ते।।

सबके जिया ऊजरे रत ते हाँत रात ते मैले।
मिन्त मँजूरी कर करकें सब खात पियत ते पैले।
मींसें फूल झरत हीं जैसें ऐसें सब बतयात ते।।

होय तीज तेभार काउ को सब अपनो मानत ते।
सबसें बड़ो धरम सब अपनो पर स्वारथ जानत ते।
पाँव कुमारग पै धरबे में पैलाँ सबइ डरात ते।

पैलाँ ऐंनइँ सुनत गुनत ते सब स्यानन की बातें।
सपनन में ली अपनन सें कउँ करत हते नाँ घातें।
मीँगें मीँगें मान लेत ते बात जीन वे कात ते।।

धरो रात तो पैल दूद घी दइ सबरन ली डबलन।
बनत हती गुरयाइ सबइ ली तेभारन में छबलन।
खुरमी खुरमा लुचइँ ठडूला खा खाकें उकतात ते।।

अदरातन ली अटके रत ते सबके पैल किबारे।
क्याँउ दुकानन और घरन में लगत हते नाँ तारे।
खोटे काम सबइ खाँ पैलाँ हींगइ घाँड़ बसात ते।।

गेरउँ डाँग हते पैलाँ सो कौंड़े ऐंन बरत ते।
साँची कै रए जड़कारे में ऐसे नाँ ठटरत ते।
आगी तापें के लानें 'मायूस' न कभउँ ललात ते।।

- कोतवाली के पीछे, छतरपुर (म.प्र.)

छतरपुर की ताम्रकला

- संतोष कुमार ताम्रकार 'जनक'

छतरपुर नगर में प्राचीन समय से ही ताम्रकार समाज द्वारा विभिन्न बर्तनों का निर्माण किया जाता रहा है। जिनमें प्रमुख रूप से नांद, हड़ा, गंज, कुपरिया, गुण्डी, गगरा, लोटा, थाली, बेला आदि। लेकिन जैसे-जैसे मँहगाई बढ़ती गई कांसा, पीतल और तांबे के बर्तनों का चलन कम होता गया। पहले घरों में इस्तेमाल होने वाले पीतल, तांबा और फूल के बर्तन स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी लाभकारी थे। लेकिन समय के साथ-साथ ये बर्तन घरों से लुप्त होते जा रहे हैं। इनकी जगह घरों में एल्यूमीनियम, स्टील और प्लास्टिक के बर्तनों ने ले ली है। लेकिन सच तो ये है कि बर्तन बीमारियों की मुख्य जड़ है। आज से लगभग दो-तीन दशक पहले छतरपुर में एक से बढ़कर एक नायाब बर्तनों का निर्माण किया जाता था। आज छतरपुर नगर में ताम्रकार समाज के लगभग १५० परिवार हैं। जिनमें लगभग ५० परिवार ही ऐसे हैं जो बर्तन निर्माण के कार्य में संलग्न हैं। उनकी भी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है।

वर्तमान समय में नांद, हड़ा गंज बनाने वाले कारीगर सीमित संख्या में बचे हैं। पहले के समय में शादी, विवाह के दौरान लोगों में बर्तन देने की होड़ सी लगी रहती थी। लड़की पक्ष वाले पीतल की नांद, हड़ा और कुपरा इतना बड़ा दिया करते थे कि वर पक्ष वालों के दरवाजे के अन्दर ना जा सके। आज छतरपुर नगर में नांद और हड़ा निर्माण कार्य में रमतुलिया परिवार ही मुख्य रूप से लगा हुआ है। इस परिवार में पहले वाद्ययंत्र रमतूला का निर्माण किया जाता था। इसी कारण इस परिवार को रमतुलिया परिवार के नाम से जाना जाता है। इसके यहाँ मुख्य रूप से ढलाई का पुश्तैनी कार्य किया जाता है। जिनमें मुख्य रूप से नांद, हड़ा, गगरा और गुण्डी में लगने वाले मुख्य हिस्से तैयार किये जाते हैं। आज भी पीतल की नांद ५ किलो से लेकर ५० किलो वजन तक की तैयार की जाती है। इसी तरह हड़ा, गंज और कुपरा भी छतरपुर के ताम्रकार समाज के कारीगरों द्वारा ५ किलो से लेकर ३० किलो वजन तक के तैयार किये जाते हैं। छतरपुर में निर्मित नांद, हड़ा, कोपर, गंज, गुण्डी, गगरा, लोटा, बेला आदि आसपास के करीब दस जिलों में भेजे जाते हैं।

फूल की थाली और बेला निर्माण भी छतरपुर में किया जाता था। आज मुख्य रूप से बेला निर्माण का कार्य छतरपुर नगर में किया जा रहा है। इसके अलावा गिलट के बर्तनों का निर्माण भी छतरपुर नगर में किया जाता है। इनमें मुख्य रूप से लोटा, कटोरा, चम्मच, कड़ाई और बटलोई आदि प्रमुख हैं। छतरपुर के कारीगरों द्वारा बने हुये बर्तनों की मांग आज भी पन्ना, टीकमगढ़, ललितपुर, महोबा, बांदा, हमीरपुर, दमोह, सागर आदि जिलों में है। विश्व भर में हुये वैज्ञानिक शोधों से ये पुष्टि हो चुकी है कि भारत में सदियों पहले से घरों में इस्तेमाल होने वाले पीतल, तांबा और फूल के बर्तन स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी हैं।

ब्रिटेन के वैज्ञानिक प्रो. रीड पंजाब विश्वविद्यालय के प्रो. मोहिंदर सिद्धू, पुष्पेंदर संघ और रूपा बख्शी/ तथा आयुर्वेद की माने तो पीतल के घड़ों में पानी भरने से पानी के जो भी कीटाणु वैक्टीरिया होते हैं वे अपने आप नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार "पैतलं वातकृद्र क्षमुष्णं कृमि कफ प्रणुत" अर्थात् पीतल का पात्र वातकारक रुक्ष, उष्ण और कृमि तथा कफ को दूर करता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से पीतल के बर्तनों में पकाया गया भोजन और उस भोजन को फूल के बर्तन में खाने से शरीर को जो भी आवश्यक तत्वों की आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति इन बर्तनों के द्वारा हो जाती है। अगर हम दूसरे पहलू की बात करें तो फूल और पीतल को कच्चा सोना भी माना जाता है जो हमारी विषम परिस्थितियों में काम आता है।

अभी हाल ही में भारत के सबसे बड़े अस्पताल एम्स के डॉ. सुनीलम के अनुसार फाइवर के बर्तनों को बनाने के लिये जिस मेलामाइन पावडर का इस्तेमाल किया जाता है उससे लीवर, किडनी और कैंसर जैसी ला इलाज बीमारी पैदा हो रही है। इसी प्रकार एल्यूमीनियम और स्टील के बर्तनों से भी खाना बनाते समय निकलने वाली विषैली गैसें कई प्रकार के रोगों को जन्म दे रही हैं। अगर स्वस्थ्य रहना है तो खान-पान के बर्तनों (पीतल और फूल) की उपयोगिता को समझना होगा। तभी हम कह सकेंगे, "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः"

- स्वामी जू मार्ग, तमरयाई, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली बोली

- कमल सिंह सोलंकी 'कमल'

मीठी मधुर बुन्देली बोली, मीठी मधुर बुन्देली बोली।
उत जमुना इत रेवा पार है, उत चंबल इत टोंस धार है।
विन्ध्य के अंगना ठिठोली। मीठी मधुर...।।
बुन्देलखण्ड में राज तुम्हारो, जस फैलो भारत में सारो।
हिन्दी की है मुँह बोली। मीठी मधुर...।।
कवि ईसुरी के मन भायी, राई के रग-रग में समायी।
बनी बेतवा रंगोली। मीठी मधुर...।।
राजा राम खिंचत चलेआये, गीत बुन्देली मनइ को भाये।
तुम तो लगो बड़ी भोली। मीठी मधुर...।।

- ४७, जासलपुर, होशंगाबाद (म.प्र.)

कठेलयाऊ

- सरोजा शिल्पी

ऐसैं-ऐसैं एक राजा हते वे बड़े दयालू औ पुण्यवान हते उनके राज्य में प्रजा भौतई सुखी हती। काय कैं राजा भौतई दानी हते। अगर उनके दरबार में कौनउं दीन-हीन प्रानी पौंच जाय तौ राजा नौने दोई-दोई हातन सें दान देतते सो पावे बारे लोग खुस होकें राजा खौं खूब मन सें असीसत ते। कै भगवान हमाये जैसे राजा सबखों देवें। उनकी खूब यश बढ़े, खूब सम्पन्न रयें, खूब लम्बी उमर होबे। राजा दानपुन्न करकें लोगन खों खुस देख कें भौतइ प्रसन्न होवें।

अकेलें भइया उनकी रानी खों जे काम तनकउ न सुहावें। वे तौ बस सजी-धजी अपने रानी होवे के अभिमान में इतै-उतै डोलतीं फिरें। औ अगर गलती सें कौनऊ प्रानी उनसें कछू मांग धरे तौ इठला कें कयें - कै हमसें नई होत जौ देवो-लेवौ, जब तुमाये राजा आ जैहें सो उनई सें मांगियो। सो भइया मांगवे वारे अपनो मौ झुका कें रै जाये और आपस में कयें कै देखो तौ कैसी निसठुर रानी है। कबहूं कोऊ खौं एक धेला तक दान में नइं देत। जाने कौन पुन्न सें रानी बन गई। ई कौ कबहूं भलो नइं होने। राजा भी रानी खों भौतई समझावें कै देखो रानी भगवान की किरपा सें आज अपन राजा-रानी हैं का पती कल का हो जाय, ई सें तुम भी दान-पुन्न करौ करै। जी सें जे दुआयें दैहें और भगवान भी प्रसन्न हूहें। सो राजा की बात सुनकें रानी तुनक कें बोली - हओ खुद खों खावे नइयाँ जे हमें का दुआये देहें और फिर हमें इनकी दुआअन की करने का है। हमे तौ भगवान ने वैसई इतेक बड़े राज्य की महारानी बनाओ है। रानी की बातें सुन कै राजा खों भौतई दुःख भओ। देखो तौ भगवान ने तौ इने सब कछु दओ इतेक बड़ी रानी बनाओ, सुन्दर सुकुमार बना दओ अकेले दिल सो कुटकी सौ और पथरा की बना दओ राम ने। राजा परे-परे मन में ऐसो सोचइ रयेते कै अचानक उनकी निगा फूलन की सेज पै पौड़ी रानी पै गई। रानी अपनी सेज पै पौड़ी बार-बार उचक-पुचक रईतीं। राजा, रानी खों टोकत भये बोले का बात है रानी आप इतैक काए उचक-पुचक रईं?

सो रानी क्रोधित हो कैं बोली - अरे का बतायें महाराज आज सेज बनावे बारे माली ने फूलन में एक बौंड़ी (कली) छोड़ दई सो वा बौंड़ी हमाई कोमल देह में गड़ रई। सो महाराज सवेरों होतनई ऊ माली खौं ई अपराध के लाने मृत्यु दण्ड दुआ दओ जाय। तबई हमें चैन परै। राजा बोले - मानी कैं आपकी कोमल देह में व कली गड़ गई। अकेलें इतने से अपराध के लाने इतनी बड़ी सजा थोड़ी दई जात। हम राजा हैं तौ का भई हमें भी तौ भगवान खौं मौं दिखाने कै नई। राजा की बात सुन कैं रानी अपनी देह सहलातीं रोन लगीं। जौ सब देखकें जो ज्योति स्वरूप दिया हते वे हंसन लगे। राजा बड़े ज्ञानी हते उनने ज्योति स्वरूप दिया खों हंसतन देख लओ। सो राजा ने हाथ जोड़ कैं ज्योति स्वरूप दिया सें प्रार्थना कर कैं पूछी- स्वामी आप खों काय हंसी आ गई अगर आप हमें ई बात कौ भेद बतावें तो आपकी बड़ी किरपा हूहै।

दिया स्वरूप ने हंस कै कई - कै अबै तौ रानी खों एक कच्ची कली गड़ रई, पै दो दिन बाद जब मूड़ पै बोझो ढौ हैं तौ फिर का हूहै? ई पै राजा ने पूंछी - स्वामी रानी हमाये जीते जी बोझा ढोहैं ऐसी कैसें हो सकत, दिया स्वरूप बोले - देखत तौ जाओ महाराज ऐसई होने। दिया स्वरूप की भविष्यवानी सुन कैं राजा सोचन लगे कै देववाणी झूठी तौ हो नई सकत। लेकिन अगर ऐसो करें कै रानी खों जीते जी समुद्र में बहा देवें तो फिर वे बोझ ढोवे सें बच जैहैं। अब जैसई सबेरौ भओ सौ राजा ने रानी सें कई कै रानी तुम भौत दिनन सें अपने मायकें नई गई सौ तुम कछू दिनन के लाने मायकै हो आओ। हमने सुनी है कै वे सब तुमें भौतई याद करत हैं। उनकी कछू माली हालत भी ठीक नइयाँ, सो तुम खूब गाने-गुरिया पैर लिइओ तौ उनके कछू कामें आ जैहैं। सो रानी ने एसई करो। अब राजा ने एक खूब बड़ो बक्सा के आकार कौ जहाज बना कैं ऊमें रानी के लाने नौने सबई सामान भरवा दओ। और रानी खों सजा-धजा कैं बैठार दओ और वो बक्सा समुद्र में बहवा दओ।

अब भइया वो बक्सा बहत-बहत एक ऐसे राज्ज में पौंच गओ जितै कै उन रानी की नन्द के पति की राज्ज हतो। उन राजा की मोतियन की व्यापार हतो, सो उनकी समुद्र पै अधिकार हती, जब उनके नौकर-चाकरन ने एक बड़ी सी बक्सा अपने राज्य की सीमा में देखो सो उन लोगन ने वो कढुआ कौ बक्सा समुद्र सें निकार कैं अपने अधिकार में ले लओ। औ अपने ऊँचे अधिकारियन खौ सूचना दई कै एक बड़ी सी बक्सा समुद्र सें मिलो है, औ भौतई भारी है सो ऊ कौ का करो जाय? अधिकारियन ने तुरतई राजा खों खबर करी। राजा ने हुकुम दओ - कै वो बक्सा हमाये महल में लिया के हमाये सामने हाजिर करो जाय।

अब का भओ कैं ऊ भारी बक्सा खौं जैसें तैसें घसीट कैं राजा के महलन में ले गये। राजा वो बक्सा खुलवा कैं जैसई देखवे वारे हते कै इतने में कौनऊ फरियादी ने उनकी दान की घण्टा बजा दओ। सो राजा बिना देर करैं ऊ गरीब की फरियाद सुनवे कै लाने बाहर चले गये सो राजा के पीछैं-पीछैं उनके मंत्री और नौकर-चाकर भी चले गये। इतने में का भओ कै रानी खों भी पती परो के उनके राज-महल में कौनऊ बक्सा आओ है और राजा देखवे वारे हैं कै ऊ में का है। जब रानी अपनी नौकरानियन के संगे उतै पौचीं सो

उतै कोऊ न हतो। रानी बोली - "अरे इतै तौ कौनऊ हैई नइयाँ, महाराज औंर मंत्रीगण सब के सब किते गए?" एक नौकरानी धीरे सें बोली - महारानी जू राजा औंर मंत्री तौ फरियादी की फरियाद सुनवे खों गये। रानी ने अपनी एक सखी सें कई कै "हमने सुनी है कै राजा कौ हुकुम है कै ई बक्सा खौं हमाये सिवा कोऊ न खोलै, हमें समझ नईं आउत कै ई बक्सा में ऐसीं का धरो कै राजा के अलावा औंर कोऊ न खोलैं।" इतने में एक नौकरानी बक्सा के पास पौंची सो उखों कौनऊ के रोवे की आवाज सुनाई परी सो व चौंक कैं बोली - "रानी जू हमें तौ लगत कै ई में कौनऊ औरत रो रई है।" "ये ऐसो कैसें हो सकत।" - रानी चकित हो कैं बोली। नौकरानी बोली - "रामधई महारानी जू ऐसीई आय।" रानी बोली - "अरे तौ जल्दी खोलो।" जैसई ऊ दासी ने बक्सा खोलो सो देख कैं दंग रै गई बोली - "ये दइया ई में तौ एक परम सुन्दरी नारी बैठी है हमें तौ कौनऊ अप्सरा लगत।" रानी बक्सा के पास पौंचीं कै पीछे सें दासी ने आवाज दई - "रानी जू महाराज की अवाई हो रई", रानी घबरा कैं बोलीं - "राम जाने का करइयाँ हैं कऊ राजा ने ई खों अपनी रानी बना लओ तौ हमाओ का हूहै।" दासी बोली - "महारानी जू आप चिंता न करौ महाराजा के पौंचवे सें पैलें हम ई खों भिखारन बना दें आप जल्दी सैं अपने महल में पौंचो। रानी अपनी जान बचा कैं भगीं कै राजा खों पतो न पर पावे कै उनकी आज्ञा को उल्लंघन करो गओ है। सो उनने बक्सा में बैठी रानी की तरफ नजर लो न डारी।

दासियन ने उन रानी खों जो बक्सा में बैठी ती उन के गाने-गुरिया उतार कैं फटी-मैली धोती पैरा दई औ जो उनके संगे हीरा-मोती, अच्छे-अच्छे पकवान धरेते उनखों निकार कैं उनकी जगा ककरा-पथरा भर दये औ बक्सा बंद कर दओ। औ दूसरी गली सें निकर गईं। जब राजा ने उतै आकें अपने मंत्रियन सहित वो बक्सा खुलवाओ सो देखो के फटे पुराने कपड़न में एक औरत अपनो मौं दुकायें रो रईती औ बक्सा में ककरा, पथरा भरे ते जो देख कें नौकर बोले - महाराज हमें तो लगत कै कौनऊ अभागन विपत की मारी है, घर वारन ने ई सैं समुद्र में मरवे के लाने बहा दओ।

राजा दयालू हते सो बोले - "कै कौनऊ बात नईं हमाये राज्ज में इनती जनता रत है एक जा बिचारी भी रै लैहै। ऊखों बाहर निकार कैं खुआओ-पिवाओ औ कौनऊ काम पै लगा दो वा अपनो पेट भर लै है। औ रानी के महल में चले गये।

रानी ने राजा खों बड़े आदर सत्कार सैं लओ औ राजा के पास बैठत भई बोली - महाराज हमने सुनी है के आप के महल में एक बड़ो भारी बक्सा आओ है।" राजा बोले - हओ रानी जू अपने समुद्र में बहत जात तो सो नाविकन ने पकर कैं महलन में हमाये देखवे के लाने पौंचा दओ।" रानी बीच में बोली - "महाराज ऊमें ऐसो का है।" राजा बोले - "अरे रानी जू आप खौं सुनकें हैरानी हूहै कै ऊ बक्सा में एक विपत्ति की मारी नारी बैठी रो रई ती औंर संगे ककरा-पथरा भरे ते। अब तुमई बताव कै ऊ नारी की का करें? रानी तपाक सें बोली - "लो ई में सोचबे की का बात है अपनो नओ महल बन रओ सो उतई पै मजदूरी करत रैहै।" राजा ने रानी की बात मान कैं ऊ रानी खौं मजदूरी पै लगवा दओ। अब वे कठुआ के बक्सा में मिलींती सो सब जनै उनै "कठेलियाऊ" नाम सैं बुलाउन लगे। अब मजदूरी करत-करत कठैलियाऊ खों दस बरस निकर गये। एक दिना का भओ कै कठैलियाऊ ने देखो कै कछू औरतें पूजा कर रईं। सो वे रोन लगी उन्हें राजा की याद आ गई, कै हमाये राजा भी भगवान की खूब पूजा करत ते सो वे कठैलियाऊ मंदिर में जा कैं रोन लगी, औ भगवान सें प्रार्थना करी कै भगवान हमाये अपराध क्षमा कर दो। हमने घमण्ड में आकैं कछू दान-पुन्न न करो, न कबहूँ जप-व्रत करैं अब अगर आप की कृपा सैं हमाये अच्छे दिन लौट आये तो हम दान-पुन्न करहैं दीन दुखियन की खूब सेवा करहें। सो भइया भगवान ने रानी की प्रार्थना स्वीकार कर लई।

अब का भओ कै कठैलियाऊ के जौन वे राजा हते सो वे अपनी बैन के घरे आये सो बैन ने अपने भइया की खूब आओ भगत करी। अब जब बैन अपने महल में जान लगी सो राजा बोले - बैन कौनऊ नौकर खौं हमाये पाँव दबावे के लाने भेज दियो। अब रानी ने दासी से कई सो दासी ने इतै-उतै देखो अकेले कौनऊँ न दिखानी। इतने में सामने सें कठैलियाऊ आउत दिखा परी सो वे उन सें बोली - रानी के भइया आये हैं सो तुम महलन में जा कैं उनके पाँव दबा आइओ। कठैलियाऊ बेमन सैं जा कैं राजा के पाँव दबाउन लगीं अब जैसई उनकी नजर राजा के चरनन पै परी सो पाव में पद्‌म देख कैं कठैलियाऊ रानी खों रोवो आ गओ। सो राजा बोले - "अगर तुमै हमाये पाँव दबावे में कौनऊ तकलीफ है तौ रैन दो, न दबाओ"। रानी बोली - "आ हौं महाराज आज बड़े दिनन बाद चरण देखे सो आ रोवो आ गओ। रानी की बात सुनकैं राजा ने उनै ध्यान सें देखो सो चीन गये औ बोले - "अरे रानी जू आप ऐसी हालत में? वो सब सोनो-चाँदी, हीरा-मोती कां गये? रानी ने राजा खों सबरी बात बता दई, रानी की बात सुन कैं राजा खौं बड़ो दुःख भओ। बोले - "रानी भाग्य के लेखे टारे नईं टरत, हमने भौत कोसिस करी पै टार न पाये, बताओ तुमाई नंद के राज्ज में रै कैं भी जा दुर्दशा भई।" रानी हाथ जोर कें बोली - "महाराज अब कबहूँ घमण्ड न करहैं रानी होवे की, जौ हमने घमण्ड करो तो ओइकै कारन हमें इतैक दुःख सैने परे।" राजा बोले - "अगर सबेरे कौ भूलो संजा कैं घरै आ जावे तो रानी वो भूलो नईं कहाउत। भगवान की किरपा से तुमैं सद्‌बुद्धि प्राप्त हो गई सो अब समझो कै दुःख के दिन निकर गये।

बातें करत-करत सबेरौ हो गओ। राजा देर तक सो कैं नईं उठे कठैलियाऊ भी बाहर नईं निकरी, तो नौकरन ने रानी खौं खबर करी। रानी दौरी-दौरी महल में पौंची औ अपने भइया के पास जा

कैं बोली - का बात है भइया तुम उदास दिखाई दे रये? भइया बोले - "का बतायें बैन हमने तो रानी के संगे खूब धन-दौलत धर दई ती और सोच रये ते कैं जां भी हूहै वे कुशल मंगल हूहैं अकेलैं तुमाये राज्य में रैकैं भी इनकी जा दशा देखकैं हमें बड़ौ दुःख हो रओ।" रानी ने जब कठैलियाऊ की तरफ देखो, सो दंग रै गई बोली - "भाभी जू आप और ई हालत में?" औ खुद खों कोसन लगीं कै - "ऊ दिना हमने खुद काय न देखो आप खों दासियन की बातन में आकैं हम डरा गये औ आप खों फटे-पुराने कपड़ा पैरवा कें मजदूरी पै लगवा दओ।" रानी बोली - "नंद बाई जू तुम दुख न करो जौ तौ हमाये भाग्य को दोस है, ई में तुमाई कौनऊ गलती नइयाँ।" अब रानी ने राजा खों बुलाओ औ अपनी भाभी खों सपरा-खुराकैं अपने हातन सें रानी योग्य वस्त्र आभूषन पैराये और गाजे-बाजे के संगे अपने घर सें विदा करो। अब नीने जब सुकमार रानी अपने राज्य में पौंची सो ओई दिना पूरे राज्य में डुडेरी पिटवा दई कै अब सुकमार रानी रोज सदावर्त बाँट हैं हमाये राज्य में कौनऊ गरीब की कन्या बिन बियाई न रैबे, कौनऊँ दीन-दुःखी न रये, अपने दुःख राजा-रानी सें बेझिझक कैबै। रानी के स्वभाव में आये परिवर्तन खों देख कैं राजा तौ भौतई खुस भये औ प्रजा भी सुखी हो गई। पूरे राज्ज में अब रानी की तारीफन के पुल बंधन लगे औ सब जागां खुशहाली छा गई।

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-, दुर्गेश विहार,
जे.के. रोड, भोपाल

पत्नी-मैहमा

- ग्यासीराम गुप्त

ओम् जय जगदीश हरे, बे बड़े जोर सें गारई।
ठाकुरजी कों सपरा रई हैं, चन्दन-तिलक लगा रईं।।
दूवा फूल चढ़ा रईं, रुच-रुच दरपन उनें दिखा रई।
अपने पति परमेसुर-कौं, जे भक्तिन लाखन रोज सुना रई।
ऐसीं अधम नारियन कों नईं नरकऊ परै ठिकानौं।
इनके पापाचार सुनावें भइया तुमकों कानौं।।१।।
करा फेसियल मैच कलर में, सुनन भागवत जा रईं।
नये चलन की सारी पैरें, चलतन में बलखारईं।
मुखड़ा खोलें हैं चन्दा सी, दया धरम नईं मन में।
इतै-उतै कों देखत जावें, लाज नईं नैनन में।।२।।
जाती बेराँ पति से बोलीं, ढंग की साग बनइयो।
रोटी हमकों खरीं सेंकियो, हम सें पीछें खइयो।।
चौका-बासन कों निपटइयो, नैक न बैठे रइयो।
बड़े आदमी की हम बिटिया, जाकों भूल न जइयो।।३।।
रयें उपासीं तौ फरार की, पारें बड़ी अबेरा।
जाओ बजारै ल्याओ सिंगारे, बड़े-बड़े से पेरा।।
सकला, साकूदाने, मेवा, पके-पके से केरा।
ढाई सेर की कौन कहैबी, पूरी खाय पसेरा।।४।।
काये आँतरें शेव बना रये, पिया रखा लो डाड़ी।
तुमकों पीर नईं नैकऊ है, कैसें खिच है गाड़ी।
करो कटौती पइसा जोरो, छोड़ो बीड़ी-गुटका।
मौड़ी होरई स्यानी ताकी, तुमैं नैक ना खटका।।७।।
हमकों काये किफात सिखा रईं, तुमनों बकत भरे सारिन के।
ढंग के कपड़ा एकऊ नइयाँ, हमनी तो जाड़िन के।।
कितऊँ बराते जावें तौ हम, अलग दिखाई परतई।
लोग-बाग का सोचत हूँ हैं, इननों कछू न बरतई।।८।।
हम तौ बीई कोट पैर रये, जौन हती दादानीं।
बब्बा बारी कमरा ओढ़त, पचपन साल पुरानीं।।
हमकों टोका-टाकी करतीं, खुद खरची मनमानीं।
अपुन कों तुमनें सब बनबा लओ, नये फेशन की गानी।।
इतनी सुनतन गिरी गाज सी, मानो बादर फट गये।
रूप देख कें सोचन लागे, हम तौ आज निपट गये।।६।।
तेरी जौ औकात कै हमसें, करै जबान दराजी।
रणचण्डी सी बौ फिर कोपी, तैं मुल्ला कै काजी।।
गुस्सौं पौंची आसमान पै, चढ़ गओ एकदम पारौ।
दहकन लागौ चेरा ऐसें, ज्यौं सूरज कौ आँगौ।।
जीभ चिपक गई है तालू सें, तिरपन कँप गये हमरे।
जल्दी-जल्दी अपने मन में, हमनें सबई देवता सुमरे।।८।।
क्रुद्ध शेरनी सी दहाड़ रई, मानो तोपें चल रईं।
गली पुरा कीं सबई इमारत, गर्जन सुन कें हल रईं।।
ज्वालामुखी फटी जौ कौंसें, सब घबरा रगये प्रानी।
धन्न-धन्न चौमुखू कालका, देय धरें हैरानी।।
मेहमा तुम्हरी सबनें जानी, हे प्रानन की खानी।
नीची करलो अपनी बानी, हे मेरी कल्यानी।।६।।
खास सास कों नाँच नचारई, रोज मान जे मारें।
चचिया देखत खिलें कमल सीं, तुरतई कुरसी डारें।।
चाय बना कें उनें पिवा रईं, बिछीं-बिछीं सीं जा रईं।
मेरी सासुल रोटी जेलो, हँस-हँस कें बतरा रईं।।१०।।
दो घंटा के हम बैठे हैं, बे मन्दिर में घण्टा टोरें डारें।
घर में घुसतन वौ गुर्रानी, काये हमें तुम तारें।।
भट्टी सी खावे कों दौरी, अबै नईं खावे कों।
ठूँस-ठूँस कें परे रात कें, फिर आ गये पावे कों।।

- आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

सरू बाबा

- एन.डी. सोनी

पात्र परिचय -

कक्का - गाँव के एक बूढ़े आदमी
रमुआ - कक्का की हल्की लरका
सरमन - कक्का कौ बड़ी लरका
भबूदे - एक किसान
भौंदू - गाँव कौ एक गरीब आदमी
नोंनें - गाँव की एक हँसोड़ा
लछिया - गाँव की एक बूढ़ी लुगाइ
लछिया की बऊ -लछिया के लरका की घरबारी
छितिया - गाँव की एक लुगाइ
छितिया कौ लरका - (दसक साल कौ)

(परदा खुलत - गाँव के बायरे एक चोंतरा पै एक बूढ़ी आदमी औ ऊकौ लरका रमुआ बैठे बातें कर रये। एक बूढ़ी आदमी तमाखू मल रऔ। एका-एकूँ पाँच-सात जनें आउत और बूढ़े आदमी से राम-राम करकें बैठ जात। चोंतरा पै एक हल्की सी तखत डरो है जौन खाली है। तखत के बाजू में एक हल्की सी चोंतरिया बनी दिखात जी पै एक बड़ी सी लोड़ धरी दिखात। लोड़ खों सेंदुर लगो है। ऊके आँगू एक माटी कौ दिया उजर रऔ। एक पानी कौ लोटा और एक नारियल धरो। पाछू से एक आदमी और आउत। बौ बूढ़े से कक्का राम-राम कै के बैठ जात।)

कक्का - राम-राम बेटा भबूदे, आऔ बैठौ।
(कक्का लरका की तरपै मों करकें) जारे जमुआ गड़ई-गिलास में पानी भर लै आ, औ सबखों प्यादै।
(लरका पानू लैबे चलो जात)

भबूदे - काय कक्का मन्टोले ती अबै लों नईं आये। बैठक कबै हुइये? आठ ती बज गये।

कक्का -तनक और बाट हेर लेव। आउतइ हुइये। और न आय ती सरू बाबा कौन ओइ के मूँड़े बैठे रें। बे और काऊ के सिरें आँय। बैठक तो जरूरई हुइये।

भबूदे - काय कक्का, मंटोले नां आँय ती घोल्लां को बनें?

कक्का -जी पै सरू बाबा की किरपा हुइये बोइ बनजै घोल्लां। तें काय अकबकात।

(जो लों रमुआ पानी लै कें आ जात और सबखों प्याउन लगत)
कक्का खलीता में से बटुआ काड़ कें एक जनें खों देत।

कक्का -लो हो भोंदू। जोलों तुम तमाखू बना कें सबखों देव। रमुआ तें जोलों होम कौ समान औ मलिया में आगी लै आ। *(रमुआ भीतर चलो जात)* फिर भबूदे की तरपै मों करकें भबूदे जोलों तुम हाँत-गोड़े धो डारौ।

जौलों भोंदू तमाखू बना लेत औ तोलिया मुड़ी पै धरकें, ठांड़ी होकें सबखों तमाखू दैन लगत। उतै सें रमुआ आगी औ सामान लैकें आ जात। भबूदे हाँत-मों पोंछत चले आउत। रमुआ सबरी समान चौंतरिया के आँगूं धर देत।

भबूदे - *(कक्का की तरपै मों करकें)* कक्का अब ती मन्टोले नईं आउत दिखात। का हम होंम लगावें?

कक्का -हुल्की परन दो मन्टोले पै। तुम लगाव होंम।

(भबूदे होंम लगाउन लगत। होंम लगाकें चोंतरिया के पाँव परत। फिर हाँत जोरकें उकरूँ बैठ जात और बिनती करन लगत)

भबूदे - सरू बाबा! सबकी लाज राखियो। हम ती तुमाइ भरोसें हैं

(इताँय सबके बीच में बैठो एक आदमी झूमन लगत। सबकी निगा ओइ की तरपै लग जात)

कक्का - देख लो सरू बाबा नें बिनती सुन लई। बे देखौ नोनें के सिरें आ गये।

(नोनें जोर-जोर से झूम-झूम के कीका दैन लगत। फिर उठकें जात उर उचक कें तखत पै बैठ जात। बे हूँका-कीका देत जात)

भबूदे - *(हाँत जोर कें ठांड़े हो जात)* बोलौ सरू बाबा की जै। सब जनें जें बोलत।

सरू बाबा - *(हूँका देत भये)*, कायरे भबूदा। मोय कायखों बुलाव? का चाउत तें? तैनें अबै लों मोरी चोंतरिया पक्की नईं कराई। कैकें भूल गओ। अब तोरी काम को करै?
(कीका की आवाज)

भबूदे - मरहाज, गलती बन गई मोपै। ई साली अबस कें चोंतरिया पक्की बनवा देहों। भूल-चूक की माफी मिल जावै। तुमाये लतरोंदा आँव। तुमइये पार लगाउनें।

सरू बाबा - *(हुँकारी भरकें)* ती अब का चाउत तें?
भदूबे धरती पै मूड़ धरकें पाँव परत।

भबूदे - मरहाज! मैं तो बिनइ मौत कौ मर गओ। आठ दिना हो गये। मोरी भैंसिया नईं मिल रई। अबकी दारै किरपा कर दो। मोरी भैंसिया की पतौ बता दो। भैंस मिल जै ती तुमाइ चोंतरिया पक्की कराओं औ पाँच कन्यन के भोजन कराओं।

सरू बाबा - जोर कौ हूँका भरकें। करिया है तोरी भैंस?

भबूदे - हओ मरहाज।

सरू बाबा - ऊके सींग टेड़े हैं?

भबूदे - हओ मरहाज! अपन ती सब जानत।

सरू बाबा - हार सें हिरानी ती?

भबूदे - अपन ती अंतरजामी हौ। अपनी आँखन में भैंस हुइये।

सरू बाबा - तौ फोर नारियल।

(भबूदे नारियल फोरत औ सरू बाबा उचक कें कीका देत)

सरू बाबा - *(ऊपर खों मों करकें)* देख बा ठाड़ी तोरी भैंस। मोय सामूँ दिखा रई।

भबूदे - कितै है महाराज?

सरू बाबा - जंगल में चर रई। पूरब दिसा खों चलो जा। नरिया पार ठांड़ी होकें टेरिये।

भबूदे - जै होय सरू बाबा की। मूँड़ धरकें पाँव परत।

सरू बाबा - हुँकारी भरते हुए। देख! अपनी कई कौ ख्याल राखिये। भूलिये न। जब भैंस ब्या परै पैलऊँ मोरी चोंतरिया पै तेली चढ़ाइयो। लै जा भबूत। आँखन में मल लै। सब दिखा परै।

(ऐई बेराँ दो लुगाई चौंतरा पै आउती। एक बूड़ी सास और ऊकी ज्वान बऊ (घूँगट डारें) बूड़ी हाँत पकरकें बऊ खों चोंतरिया के सामूँ बैठारत औ खुद बैठ जात। फिर दोइ जनीं धुतिया कौ छोरा पकरकें मूड़ धरकें पाँव परतीं)

सरू बाबा - का हो गओ री लछिया? *(बूड़ी सें पूँछट)*

लछिया - जा तुमाये नन्नाइयाँ की बऊ आय। सात बरसें हो गईं ब्याव खों। अबैलों एकऊ लतरोंदा नइयाँ। अब अपनी किरपा हो जाबै तौ एक उरइया लग जाबै। बस जेइ बिनती है।

सरू बाबा - हूँऊँ। तें का जानत कै मोय पती नइयाँ। मोय सब पती है। ईनें आपऊँ बैर बिसाओ। छै साल सें ई पै छेवले बाबा की छाया है। ईनें गेंवड़े के छेवले तरें थूँको हतो। ओइ की सराप लगी ईखों।

लछिया - अब तौ अपनई रच्छ्या करौ मरहाज। जैसी अपनी मरजी हुइये ऊसई करें।

सरू बाबा - सबरीं अलाय-बलाय मोरइ मूँड़ें है का। चली जा ऊ टेड़ा गुनिया कें।

लछिया - मरहाज! अब तौ मोरे टेड़ा-सूदा अपनई हौ। बौ तो साल भरे में मोरे तीन सौ गटक गओ। बऊ अलग सोसन में सूक कें काँटी हो गई। नासमिटी कत ही कै चुड़ैल लगी तोरी बऊ खों। खूबई गड़ा-गूदरा बाँदे। पै मोड़ी-मोड़ा की को कबै, चुखइया नों नईं भई।

सरू बाबा - हूँ। तौ अब जैसी मैं कैहों ऊसी करौ?

लछिया - ऐनई करों मरहाज।

सरू बाबा - तौ सुन! बऊ खों तीन मइना नों लरका सें दूर राखिये। ईके बाद फिर आइये मोरे ढिंगां।

लछिया - फिर का हुइये मरहाज?

सरू बाबा - फिर देखिये। लरका तौ लरका, लरका के बाप खों होनें परै। लै जा भबूत। घोर कें प्या दिये बऊ खों। *(लछिया भबूत लैकें बऊ खों लुआ कें चली जात। सरू बाबा उचक कें कीका देत)* इतनई में एक और लुगाइ एक दसक साल के मोड़ा खों पकरें आउत। लरका उन्ना ओड़े है तोऊ पै कंप रओ। लुगाई आन कें सरू बाबा के पाँव परत औ मोंड़ा खों बगल में बैठार लेत।

सरू बाबा - हूँ। काय री छितिया! काय खों आइ?

छितिया - मरहाज! तीन दिना हो गये। जी मोंड़ा ऐसऊ कपत रत औ आयली-बायली बक्त रत। ईखों बचा लेव। बिना बाप कौ आय।

सरू बाबा - अकबका नईं। लै जा भबूत लै लै। प्या दै घोरकें। इतई बछेरा सौ उचकन लगै। *(छितिया पानी मंगाकें गिलास में भबूत घोर कें मोड़ा खों प्याउत। मोड़ा पीतनईं खाँसत और फड़-फड़ा कें बेहोस हो जात। ओइ बेरां कक्का कौ बड़ौ लरका आउत। बौ पढ़ौ-लिखौ दिखात। ऊकौ नाव सरमन है। बौ लरका की आँग टटोलत)*

सरमन - अरे काकी! ईखों तौ तेज बुखार चड़ौ। ईखों सन्नपात हो गओ। तुम इतै कां बाबा-भूतन में बीदीं। जे लरका खों मार लैहें। जल्दी सें वैद कक्का खों दिखाव।

(सरू बाबा सरमन की बात सुनकें कछू डरानें से लगत। अचरज में लरका खों देखत। फिर जब रई उचकत औ कीका देत। उचकतन में बे तखत सें नेंचें गिरत सो उनकौ हाँत टूट जात)

सरू बाबा - चिल्लात भये। अरे मर गये रे, बचाव मों खों।

सरमन - मरन दो ई ढोंगी खो। सूदे-सादे किसानन खो उल्लू बनाउत रत। *(नोंनें की तरपै जा कें)* भग इतै सें, नईं तौ पोंद फोर दें। नोंने लंगड़यात भगत। परदा बन्द होत है।

- राजमहल के पास, टीकमगढ़ (म.प्र.)

निभालो बेटा

- डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

हमनें पाली है तुमें अब हमें पाली बेटा।
जीइ करतब है तुमारी कि निभालो बेटा।
बुढ़ापौ आ गओ माँ बाप तुमारे की सुनौ
इयै अब प्रेम सें तुम देखौ औ भालौ बेटा।
समै की खेल जौ जा हाल पै पौंचाओ है
जरे बरे पै नौंन मिर्च ना डालौ बेटा
जियत मर जैहैं हम दोऊ तनक तरस खाऔ
सबइ के सामनें न पगड़ी उछालौ बेटा
हमें कुत्ता औ अपनी माँ खों समझ कें बिल्ली
पले रान दो नहीं घर सें निकालौ बेटा
हमें बस अपनेंई हिरकाँ रहन दो जई में खुसी
नहीं सिरयानें पाँयतें ही बिठालो बेटा
तुमें हम देख-देख कें उमर बिता लैहें
देव जूँठन हमें तुम पेट भर खालो बेटा
तुमारी सान में बट्टा न कहूँ लग जाबै
हमें सड़कन पै डोलनें सें बचालो बेटा
पिता माता प्रभू की होत नईं बँटवारी
गिरौ न धर्म सें अपने खों सँभालो बेटा
तुमें सौगंध भारती की और भारत की
'शिवाजी' अपनें खों सरमन सौ बनालो बेटा

- नारायणपुरा (गुरसराँय) जिला झांसी (उ.प्र.)

बनाफर वंश

- डॉ. वीरेन्द्र 'निर्झर'

आल्हखंड आल्हा-ऊदल के साहस, शौर्य और पराक्रम की यशोगाथाओं का महाप्रबंध है। रामचरित मानस के बाद लोकप्रियता में इसका दूसरा स्थान है। समूचे मध्यभारत में इसे बड़े आदर और सम्मान के साथ गाया और सुना जाता है। फिर भी इसी आल्हखंड में लोकनायक आल्हा और ऊदल को 'ओछी जात बनाफर क्यार' कहकर लांछित किया गया है। एक ओर लोक नायकत्व और दूसरी ओर दोषों से मंडित करने का लोक का यह मापदण्ड विचित्र है।

शायद 'ओछी जात बनाफर क्यार' कहने के पीछे आल्हाकार का मंतव्य उच्चकुलोत्पन्न राजन्यों को इस बात का अहसास दिलाना रहा है कि कोई भी जन्म से छोटा या बड़ा नहीं होता। व्यक्ति का कर्म उसकी जाति या महत्व को स्थापित करता है। मध्यकाल के समाज में कुलीनता और अकुलीनता का मापदण्ड जन्म से माना जाने लगा था। इसी विसंगति को आरेखित करने और कर्मशीलता के महत्वको संसिद्ध करने के लिए कवि ने बार-बार बनाफर जाति को ओछा कहा है और हर बार आल्हा-ऊदल आदि बनाफरों ने उच्चकुलोद्भव क्षत्रियों को पराभूत कर तथा उनसे संबंध स्थापित कर अपने क्षत्रित्व की कुलीनता' को संपुष्ट किया है। मनुस्मृति में कहा गया है - ''क्षत्रियाणां तु वीर्यतः[२]'' अर्थात् क्षत्रियों की श्रेष्टता उनकी शक्ति में है। आल्हा-ऊदल में तो क्षत्रीत्व की पराकाष्ठा और कर्मनिष्ठा लोक को आंतरिक और बाह्य अत्याचारों, शोषण, अनैतिक्ता शत्रु द्वारा पहुँचाई जाने वाली जन-धन की हानि से बचाने वाले के रूप में समादृत है।''[३] किन्तु यह विडम्बना ही है कि क्षत्रीत्व के आदर्शों को पूरा करने के बाद भी बनाफरों को क्षत्रिय वंश में उनका उचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

बारहवीं शताब्दी में काश्मीरी पं. महाकवि कल्हण नें राजतरंगिणी में क्षत्रियों के छत्तीस वंशों की चर्चा की है।[४] इसी प्रकार सोमसुन्दर सूर के शिष्य जिन मंडनोपाध्याय ने भी 'कुमार पाल प्रबंध' में राजवंशों के छत्तीस कुल बताए हैं।[५], पृथ्वीराज रासो ने भी ३६ राजकुलों की चर्चा निम्न प्रकार प्राप्त होती है -

रवि ससि जादव वंश, ककुथ परमार सु तोमर।
चाहुवान चालुक्क छन्द सीलार अभीयर।।
दोयमत मकवान गरुअ गोहिल गोहिलपुत।
चापोत्कट परिहार राव राठौर रोनजुत।।
देवरा टाँक सैधव अनिग योतिक प्रतिहार दधिषट।
कारट्ट पाल कोटपाल हुव हरितट गौर कला (मा) ष भट।।
धन्य (धान्य) पालक निकुंभवर, राजपाल कविनीस।
कालच्छुरके आदि दै बरने वंश छत्तीस।।[६]

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिंतामणि विनायक वैद्य ने अपनी पुस्तक 'मैडईवल हिन्दू इण्डिया' में उपरोक्त पद्य का विश्लेषण करते हुए रवि, शशि और यादव वंश की ३६ शाखाओं के नाम इस प्रकार बताए हैं - १. 'कालछरक्के कलचुरि' यह हैहय वंश की शाखा है, २. कविनीश, ३. राजपाल, ४. निकुंभवर, ५. धान्यपालक, ६. भट, ७. कैमाश 'कैलाश', ८. गौड़, ९. हरीतट्ट, १०. हुल - कर्नल टाड ने इसे हून - हूण लिखा है, जबकि हल गहलौत वंश की खांप है। ११. कोटपाल, १२. कारट्टपाल, १३. दधिपट, १४. प्रतिहार, १५. योतिका, १६. अनिग, १७. सैन्धव, १८. टांक, १९. देवड़ा, २०. रोसजुत, २१. राठौड़, २२. परिहार, २३. चापोत्कट 'चावड़ा', २४. गुहीलीत, २५. गोहिल, २६. गरुआ, २७. मकवाना, २८. दोयमत, २९. अमीयर, ३०. सिलार, ३१. छदंक, ३२. चालुक्क 'चालुक्य', ३३. चाहुवान, ३४. सदावर, ३५. परमार, ३६. काकुत्स्थ[७]

श्री मोहनलाल पाण्ड्या ने इस सूची का विश्लेषण करते हुए काकुत्स्थ को कछवाहा, सदावर को तँवर, छन्द को चन्द या चन्देल, दोयमत को दाहिमा लिखा है। हेमचंद्र कृत 'कुमारपाल चरित' (सं. १२१७ वि.) की छत्तीस राजवंशों की तालिका[८], कर्नल टाड कृत 'राजस्थान का इतिहास' की वंशावली[९] तथा प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलौत द्वारा निर्धारित वंशावली[१०] में बनाफर वंश को प्रमुख ३६ कुलों में स्थान नहीं दिया गया, किन्तु उन्हीं कर्नल टाड ने बनाफर कुल को यदुवंश की एक शाखा माना है। कीरतसागर उपन्यास नें रामाकान्त पाण्डेय 'अकेले' ने इनके पितृ पुरुषों को तँवर क्षत्रिय बताया है।[११] इससे यह तो सिद्ध है कि बनाफर वंश क्षत्रियों में सम्मिलित है।

राजपूताने में राजवंशों के विषय में एक प्राचीन लोकोक्ति प्रचलित है-

दस रवि से दस चन्द्र से, द्वादस ऋषिप्रमान।
चार हुतासन यज्ञ से, यह छत्तीस कुल जान।।[१२]

राय कल्याण जी बड़वा जी वास जयपुर ने इस कहावत की व्याख्या करते हुए बनाफरों को चंद्रवंश के प्रमुख दस कुलों में गणना की है।[१३] ठा. ईश्वर सिंह मडाढ़ ने 'राजपूत वंशावली' में बनाफरों को चंद्रवंशी क्षत्रिय माना है। इस वंशावली में बनाफर वंश का विवरण निम्न प्रकार दिया गया है -

गोत्र - कौंडिन्य याकश्यप, प्रवर तीन- कौडिन्य, स्तिमक; कौत्स वेद - यजुर्वेद, शाखा - वाजसनेयि माध्यन्दिनि, सूत्र - पारस्कर गृह्य सूत्र; कुल देवी - शारदा, कुलगुरु - गोरखनाथ; विजयदशमी को तलवार की पूजा होती है।[१४]

वि.सं. १६७० (ई. सन् १६१३) में बंगाल एशियाटिक

सोसाइटी के उपाध्यक्ष महामहोपाध्याय पं. हरप्रसाद शास्त्री को जोधपुर में मिली राजकुलों की सूची में बनाफर वंश को सूर्यवंश में रखा गया है।[15]

स्व. दीवान प्रतिपाल सिंह जू देव की प्राप्त पुस्तक (हस्तलिखित) की वंशावली में लक्ष्मण जी के दूसरे पुत्र से इस वंश की उत्पत्ति मानी है। इनकी राजधानी बनारस में हुई इससे बनाफर कहलाये।[16] अंबिका प्रसाद दिव्य भी इनकी उत्पत्ति राम के अनुज लक्ष्मण से मानते हुए लिखते हैं - ''बनाफर जाति के लोग मूलतः लक्ष्मण जी के वंशज सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। बनाफर उनकी उपाधि थी। आदि चंदेल नरेश चंद्रब्रह्म ने एक भाण्डव यज्ञ किया था। उस यज्ञ में चिंतामणि नामक व्यक्ति ने बह्निदेव की अच्छी सेवा की थी, जिसके कारण उन्हें बनाफर उपाधि प्राप्त हुई थी।[17]

'जगतराज दिग्विजय' के रचयिता कवि हरिकेश (१७२२-२३ ई.) ने भी वन्हिदेव के वरदान से ही चिंतामणि का उपाधिनाम - वन्हिफर-बन्हफर-बनाफर माना है -

वह्निवर दैदियो बालक अलातिक सो,
चिंतामणि ख्यात नाम चिन्तामणि वरन में
वंस प्रतिवंश या की ससीवंस संग चलै
नाम कह्यो वन्हिदेव वन्हफर धरनि में
चन्द्रब्रह्म भूप भयो महि मैं अनूप ताको
बन्हाफर वन्हि तुल्य ओप है उरन में
ताके बंस सूरो स्वामि धर्म के सहूरो
महानामी भयो आल्हा आला जगत के नरन में।।[18]

नृप वंशावली में कविवर मतिराम ने बनाफर वंश की उत्पत्ति पाण्डुपुत्र भीम की परिणीता हिडिम्बा के दूसरे पुत्र घरूका से माना है। इस संदर्भ में एक दोहा है -

भीम धरंधर के तनय, नाम धरूका मानि।
तिन्ह तें क्षत्रिय प्रकट भे, जाति बनाफर खानि।।[19]

'जाति भास्कर' में भी इसी मत का प्रतिपादन किया गया है। उसमें एक दोहा है -

रहत किये दिने दिन जब भये, ता कनक के धाम,
पुत्र हिडिम्बा के भये, घरश्च घरूका नाम।।[20]

डॉ. ईश्वरी प्रसाद मडाढ़ ने इसी मत को पुष्ट करते हुए लिखा है कि बनाफर पांडुपुत्र भीम का वंश है। भीम की रानी हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच तो कर्ण की अमोघ शक्ति से मारा गया था। उसी के वंश में आगे वनस्पर हुए जिसके वंशज आगे चलकर बनाफर प्रसिद्ध हुए।''[21]

'वनस्पर' शब्द से निष्पन्न 'बनाफर' वंश को कई विद्वानों एवं इतिहासकारों ने मान्यता दी है। सारनाथ से प्राप्त दो शिलालेखों में बनस्फर और बनस्पर शब्द का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार कनिष्क के शासनकाल के तीसरे वर्ष में बनस्फर-बनस्पर उस प्रान्त का क्षत्रप था जिसमें बनारस पड़ता था। उस समय बनस्पर केवल एक क्षत्रप या गवर्नर था और उसका प्रधान खरपल्लन् महाक्षत्रप या वाइसराय था।[22]

श्री जायसवाल ने वनस्पर का शासन काल ९० ई. से १२० ई. तक माना है। बाद में वह भी महाक्षत्रप हो गया होगा।[23] श्रीमद्भागवत के अनुसार विश्वस्फूर्जि ने अपना केन्द्र पद्मावती[24] में स्थापित किया था। मगध से लेकर प्रयाग पर्यन्त उसने अपने राज्य का विस्तार किया था। अंत में समस्त बुन्देलखण्ड पर उसका अधिकार हो गया।[25] वह अपनी वीरता और युद्ध कौशल के लिए प्रसिद्ध था। पुराणों में उसे युद्ध में विष्णु के समान कहा गया है, किन्तु नीति में डॉ. जायसवाल ने पुराणों के आधार पर उसे ब्राह्मण और क्षत्रिय विरोधी बताया है। वे लिखते हैं - 'उसने अपनी प्रजा में से ब्राह्मणों को बिल्कुल नाश ही कर दिया था- प्रजाश्च अब्राह्म भूयिष्टाः। उसने उच्च वर्ग के हिन्दुओं को बहुत दबाया था और निम्न कोटि के लोगों तथा विदेशियों को अपने राज्य में उच्च पद प्रदान किए थे। उसने क्षत्रियों का भी नाश कर दिया था और एक नवीन शासक जाति का निर्माण किया था।''[26]

श्री वागीश शास्त्री ने काशी प्रसाद जायसवाल के मत का खंडन करते हुए स्पष्ट किया है कि ''बनाफर केवल क्षत्रियों से चिड़ता था।'' श्रीमद्भागवत के 'प्रजाश्चाब्रह्म भूयिष्ठाः' पाठ के स्थान पर 'प्रजाश्चाधर्म भूयिष्ठाः' पाठ के भी मिलने के आधार पर वे मानते हैं कि ब्रह्म का तात्पर्य ब्राह्मण नहीं, किन्तु वेद आदि हैं। बनाफर के शासन में प्रजा वैदिक अध्ययन से सर्वथा पराङ्मुख हो गई थी। सम्भवतः वह पुराणों की कथाओं और अवैदिक देवी-देवताओं के पूजन को महत्व देने लगी थी।[27]

ब्रह्माण्ड पुराण (३/७४/१९१) और वायुपुराण (९९/३७९) के अनुसार ''बनाफर (विश्वस्फाणि) ने क्षत्रियों को छोड़कर प्रायः समस्त जातियों को शासक बनाया। उसके साम्राज्य में पुलिन्द और ब्राह्मण भी भूपति थे।''[28] इसलिए बनस्पर को अधार्मिक और ब्राह्मण द्वेषी बतलाना असंगत है, किन्तु क्षत्रियों के प्रति जो विरोध भावना है, वह संभवतः क्षत्रियों द्वारा उसको निम्न कोटि का माना जाना तथा विवाह सम्बंधों में आने वाली कठिनाई रही होगी। इसीलिए उसने अन्य वर्णों को क्षत्रिय बनाया तथा भारत के आदिम निवासियों में से कई जातियों को आगे बढ़ाया।[29] धन देकर मद्रकों आदि जातियों को एक भाग से दूसरे भाग में बुलाने की नीति बनाई और अपने को स्थापित किया। इसके इसी विरुद्धाचरण के कारण इसे विदेशी बताने तथा इसके सहयोगियों को विदेशी और म्लेक्ष सिद्ध करने का प्रयास हुआ है। काशीप्रसाद जायसवाल ने इनकी आकृति की तुलना हूणों से की है।[30] वास्तव में वह कुषाणों की क्षत्रप था और उसने हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया था। इसीलिए उसके साथ-साथ उसके सहयोगियों को भी विदेशी बनाते हुए जायसवाल ने भारतीय पुलिन्दों के लिए शक पुलिन्द के रूप में

विदेशी होने की संभावना व्यक्त की है।

डॉ. वागीश शास्त्री ने महाभारत (३/१८८/३५) के 'आन्ध्राः शकाः पुलिन्दाश्च' में शक और पुलिन्दों को एक साथ पढ़े जाने के कारण शकपुलिन्द को एक विदेशी जाति बताना उचित नहीं माना है। पारद और पुलिन्द को भी वे भिन्न-भिन्न मानते हैं (महाभारत ६/८७/७)[२१] श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के समय पुलिन्दों की स्त्रियाँ (अरण्यक स्त्रियः - वीर राघवाचार्य) बृज में आतीं रहती थीं। श्रीधर स्वामी नें इन्हें 'शबरांगना' १०/२१/१७ तथा श्री सुदर्शन सूरि ने 'वनचर स्त्रियः' कहा है।[२२]

इससे स्पष्ट है कि बनस्पर भारतीय मूल की किसी वनचर जाति का योद्धा था। राजपूत वंशावली के अनुसार बनाफर-सारननाथ शिलालेख का वनस्पर-हिडिम्बा वनचर स्त्री से उत्पन्न भीम के पुत्र का कुलावतंश था, क्षत्रिय कुलोद्भव था, फिर भी हिडिम्बा के माता होने के कारण क्षत्रियों में समादृत न हो सका। निम्न कुल का माने जाने से क्षत्रियों के प्रति उसके मन में रोष था। स्वयं घटोत्कच को भी ऐसी ही कुछ स्थितियों का सामना करना पड़ा होगा।

श्रीकृष्ण से घटोत्कच ने जब एक बार अपने वर्ण और जाति के विषय में पूछा तो श्रीकृष्ण ने उसे उत्तर देते हुए कहा था - "तुम क्षत्रिय वीर हो, प्रथम अपनी देवी (शारदा देवी) की आराधना करो और कर्म विधिपूर्वक करने से तुम्हें बल प्राप्त होगा और पाँच यज्ञ को मत छोड़ो।"[२३] ये पाँच यज्ञ हैं - ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलि वैश्वदेव), पितृयज्ञ (पिंड क्रिया) और नृयज्ञ (अतिथि सत्कार)।

स्कन्दपुराण के अनुसार घटोत्कच की कुलदेवी शारदा कही गई है। आल्हा-ऊदल की भी कुलदेवी शारदा ही मानी जाती है।

आल्हखण्ड और उसकी कथा से संबंधित दूसरे ग्रंथों परमाल रासो तथा भविष्य पुराण में बनाफर वंश की उत्पत्ति 'आभीर मातृ संभवा' मानी गई है।[२४]

भविष्य पुराण के अनुसार बक्सर ग्राम में वृतपा नाम की प्रसिद्ध आभीरी थी। उसने नौ वर्ष तक देवी की आराधना की। चंडिका देवी प्रसन्न हुई। वृतपा ने वर माँगा कि मेरे वंश में रामकृष्ण के समान बेटे जन्म लें। देवी ने वरदान दिया। वसुमान नाम के राजा ने आसक्त होकर उसे अपनी रानी बनाया। उसके दो पुत्र हुए दस्सराज व वत्सराज। वे दोनों सौ हाथियों के समान बलशाली थे। वे मगध को जीतकर वहाँ के शासक बने। बाद में बनारस के अधिपति सूर सातवत्त के पुत्र वीरण जो ताल वृक्ष के समान बढ़ने के कारण तालन नाम से जाना जाता था से दस्सराज और वत्सराज का भयंकर युद्ध हुआ। तालन युद्ध में हार गये और बनाफरों से मित्रता हो गई...।[२५]

आल्हखण्ड में आभीरी से जन्म होने के कारण ही बनाफर वंश को ओछा कहा गया है, किन्तु इसमें दस्सराज और बच्छराज के पिता नहीं स्वयं दस्सराज और वत्सराज आभारी से विवाह करते हैं। - पंक्ति है -

बाप छत्तिरी माता अहिरिन तासों ओछो दओ बताय।
दस्सराज औ बच्छराज मिलि इक दिन खेलन गये शिकार।।
अहिर की बेटी देवै ब्रह्मा दोनों दधि बेंचन कों जायँ।
डगर संकोच हती वा बन में अरना भैंसा दुइ भिरि जाँय।।
सींग पकर कै दोउ भैंसन के देवै ब्रह्मा दये हटाय।
देखि तमासा दस्सराज ने बच्छराज सें कहो हवाल।।
इनके लरिका जो पैदा होयँ सो तरवारि बहादुर होंय।
दस्सराज ने देवै लीन्हीं ब्रह्मा बच्छराज संग जाय।।[२६]

कुछ आल्हखण्डों में इन्हें क्षत्रिय वंश की पुत्रियाँ ही माना गया है। खेमराज प्रेस से प्रकाशित आल्हखण्ड में ये महारानी मल्हना की बहनें हैं तो दिल्ली से प्रकाशित टीकम सिंह शर्मा के आल्हखण्ड में ग्वालियर के राजा वासुदेव की बेटियाँ हैं, किन्तु दस्सराज और बच्छराज को कहीं बनाफर वंशी तो कहीं तवँर कुल का कहा गया है। कीरतसागर उपन्यास में 'पंडित रमाकान्त पाण्डेय' 'अकेले' ने दस्सराज और बच्छराज को वन में पले बढ़े होने के कारण बनाफर कहा है और उनका विवाह झिंझावट के जागीरदार अनगढ़राय की बेटियों दिवला और तिलसा से होना बताया है।

उक्त संदर्भों पर विचार करने पर बनाफर वंश का प्रादुर्भाव वनचर स्त्री हिडिम्बा के गर्भ से भीम पुत्र के रूप में हुआ था, यह तथ्य अधिक विश्वसनीय है। यह वंश परवर्ती काल में कनिष्क के क्षत्रप के रूप में स्थापित हुआ और बनारस तथा पवाँया का अधिपति रहा। वनचर वंश से उत्पत्ति के कारण क्षत्रियों द्वारा इन्हें हेयता की दृष्टि से देखे जाने से इनके मन में क्षत्रियों के प्रति वैमनस्य और अपने को क्षत्रिय सिद्ध करने की भावना उत्कट रही, जिसका प्रभाव आल्हखण्ड में श्रेष्ठ क्षत्रिय वंशों से विवाह करने और उन्हें पराजित करने में लक्षित होती है। इस वंश में नवीं-दसवीं शताब्दी में चिंतामणि बनाफर हुए। बनाफरों की बहुत कुछ वंशावली यहीं से मिलती है। आभीरों (अहीरों) से शादी आदि की जनश्रुति भी इनके वीरत्व स्थापन की भावना की परिचायक है।

इसलिए बनाफर वंश को भले ही पहले छत्तीस राजवंशों की सूची में सम्मिलित न किया गया हो किन्तु बाद में समाज-शोधकों ने उनकी वीरता को महत्व देते हुए क्षत्रियों में सम्मिलित किया है। कहीं उन्हें तँवर वंश की शाखा माना है तो कहीं लक्ष्मण का वंशज और कहीं वन्हिदेव की सेवा से प्राप्त उपाधि के रूप में बनाफर वंश को उत्पन्न माना है। भले ही आज भी अपने को तीन और तेरह में मानने वाले क्षत्रिय उनसे परहेज करते हों पर आल्हा-ऊदल ने क्षत्रित्व की पराकाष्ठा को अपने कर्म से अलंकृत किया है और बनाफर वंश का नाम उज्ज्वल किया है।

संदर्भ -

१. शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। श्री भगवद्गीता अध्याय १८, श्लोक ४३,
(शूरवीरता, तेज, धैर्य प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता, युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना और शासन करने का भाव, ये सबके सब क्षत्रिय के स्वभाविक कर्म हैं)

२. मनुस्मृति, अध्याय-२, श्लोक १४५, पृ. ५६, प्रकाशन - संस्कृति संस्थान बरेली, सं. १९९१

३. क. वही अध्याय १, श्लोक ८९, पृ. २४
ख. क्षत्रत्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ़: राज्येन किं कद्विपरीत वृतेः प्राणैरूप कोशमलीन सर्वाः रघुवंश २-५३, राजपूत वंशावली, पृ. ६, ठा. ईश्वर सिंह मडाढ़, चेतना प्रकाशन नई दिल्ली

४. प्रख्यापयन्तः सभूति षटत्रिंशति कुलेषुये। तेजस्विनो श्रास्वतोपि सहन्ते नोधकैः स्थितियाः। राजतरंगिणी कल्हण - तरंग ७, श्लोक १६१७

५. राजपूत वंशावली - डॉ. ईश्वर सिंह मडाढ़, पृ. ४८

६. पृथ्वीराज रासो सभा संस्करण, छंद २७७, पृ. १३५-१३६

७. राजपूत वंशावली - डॉ. ईश्वर सिंह मडाढ़, पृ. ४८-४९

८. पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता - डा कृष्णचन्द्र अग्रवाल, पृ. ७

९. वही, पृ. ६ १०. वही, पृ. ६

११. कीरत सागर - रमाकान्त पाण्डेय अकेले

१२. राजपूत वंशावली - ठा. ईश्वर सिंह मडाढ़, पृ. ५०

१३. वही, पृ. ५१ १४. वही, पृ. २५३

१५. पृथ्वीराज रासो के पात्रों की ऐतिहासिकता, पृ. ८

१६. मामुलिया, अंक ८, सं. २०३९, पृ. ३१

१७. राजपूत वंशावली - पृ. २५३

१८. 'मामुलिया' आल्हखंड विशेषांक - ९, सं. २०४०, पृ. ६

१९. राजपूत वंशावली - डॉ. ईश्वरी सिंह मडाढ़, पृ. २५४

२०. वही, २५४

२१. वही, २५३

२२. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन - वासुदेव उपाध्या (द्वितीय खण्ड - मूल लेख), पृ. ३८, अंधकार युगीन भार - काशीप्रसाद जायसवाल, पृ. ७६

२३. अंधकारयुगीन भारत - काशीप्रसाद जायसवाल, पृ. ७६

२४. वही, पृ. ७७, (में 'बिंबस्फाटि' शब्द है); बुन्देलखंड की प्राचीनता - वागीश शास्त्री, पृ. ४९ (मे विश्वस्फूर्जि शब्द आया है)

२५. बुन्देलखण्ड की प्राचीनता - वागीश शास्त्री, पृ. ४९

२६. अंधकार युगीन भारत - काशीप्रसाद जायसवाल, पृ. ७७

२७. बुन्देलखण्ड की प्राचीनता - वागीश शास्त्री, पृ. ५१

२८. वही

२९. अंधकार युगीन भारत, पृ. ७८

३०. अंधकार युगीन भारत - काशी प्रसाद जायसवाल, पृ. ७७

३१. बुन्देलखण्ड की प्राचीनता - वागीश शास्त्री, पृ. ५२

३२. वही, पृ. ५२

३३. राजपूत वंशावली - ठा. ईश्वर सिंह मडाढ़, पृ. २५५ (स्कन्दपुराण-माहेश्वरखंड, अध्याय-६०)

३४. भविष्य पुराण - अध्याय २५

३५. भविष्य पुराण, अध्याय-४, श्लोक २२ से ३१, पृ. ४२८

३६. असली आल्हखंड - चिंतामणि शिवचरण लाल - आल्हा काव्याह, पृ. १४५

- एम.बी.-१२०, न्यू इन्दिरा कॉलोनी, बुरहानपुर (म.प्र.)

तुम रये भोरे के भोरे

- डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

जुगन-जुगन सें ठगे जात रये, वे सबरे अपनी हक्क खात रये
हम ती रये भूकें, पियासे-अध नंगे, वे सबरे ती गा रये हर-हर गंगे
हम ती भोरे रये जनम सें ऐई से नई बोले, तुम रये भोरे के भोरे।
कभउँ जात पे कभउँ बात पे, कभउँ नेताजी जू के कये हात पे
धरम-करम पे वोट देत रये, उनकी संग हम सबई देत रये
चाय चलावे चाकू फरसा के बम्म के गोले, तुम रये भोरे के भोरे।

बरसन से झोला रीतै कुपियाँ रीती, बिन रासन हमाई कैसे रतियाँ बीती
उनने बुलाई बेड़नी नचवे के लानें, तोउ पे हमें सबई जनन खों देखवे जानें
हम ती जैकारे कीं भये हैं उचक-२ के डोले, तुम रये भोरे के भोरे।
जबसें आई नरेगा गाँवन में मोडी-मोड़ा किलकत ते
बतकाव में संटोला जा रधिया से बोलत ते
रधियां सोउ सारी और सूटर खों मचलत ती
ते ती रई सिर्रन की सिर्रन, अब लौ खाते भर तौ खोले, तुम रये भोरे के भोरे।

- प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय राघौगढ़, गुना (म.प्र.)

तीन चौकड़ियाँ

- फेरन सिंह परिहार

होरी खेलें राधा-प्यारी। सँग मोहन गिरधारी।
कहें कबीर अबीर उड़त है, लयें हौंत पिचकारी।
सखी सहेली हैं राधा सँग, मोतिन माँग सँवारी।
'सिंह' सराहत बृज की होरी, धन-धन बृज की नारी।

रँग में रँगी फिरत मतवारी, ग्वालन जात निहारी।
मद में मती फिरत है प्यारी, घूँघट परदा भारी।
पतरी कमर बदन अति गोरी, कारी चूनर धारी।
'सिंह' सलोनी केशर ऐंसी, कहत लोग उजयारी।

बृज में फाग मची है भारी। ग्वालन सँग गिरधारी।
छरी छबीली सुघर सलोनी, सँग बृजभान दुलारी।
सखा-सखिन सँग जाय मिले हैं, राजा मिलै मुरारी।
बरसे रंग, अंग सब भीजे, भींजी पचरँग सारी।।

- पिपरा (माफ), महोबा (उ.प्र.)

जनपद जालौन के विशेष सन्दर्भ में -

अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव को मरहठों की चुनौती

- डॉ. हरीमोहन पुरवार 'बुन्देलरत्न'

मध्य भारत के उत्तरी प्रवेश द्वार के रूप में सुविख्यात वर्तमान जनपद जालौन का ऐतिहासिक महत्व मननीय है। जब समूचा भारत अंग्रेजों के अत्याचार तथा चंहुमुखी प्रताड़ना से त्रस्त था, तब भी यह जनपद अंग्रेजों द्वारा दी जा रही मर्मान्तक पीड़ा से मुक्त रहा है और इस कार्य में मरहठों की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही है।

उस समय ऐतिहासिक एवं सामरिक दृष्टि से इस जनपद का कालपी क्षेत्र अति महत्वपूर्ण था। चाहे मुगल हों या अंग्रेज, सभी की दृष्टि कालपी पर ही थी। चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल के कार्यकाल में इस जनपद पर मुगलों का प्रभाव नगण्य हो गया था। इससे मुगल समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। शीघ्र ही उन्हें यह अवसर प्राप्त भी हो गया।

मरहठों का जनपद में आगमन - सन् १७१३ में दिल्ली के शासक फरुख्कशियार ने फर्रुखाबाद के नबाब महमूद खां गजनफर जिसे नवाब बंगश के नाम से भी जाना जाता था, को कालपी जालौन की जागीर सौंप दी[१], परन्तु छत्रसाल के रहते वह इस क्षेत्र का काबिज नहीं हो पाया। १५ मई १७२१ को छत्रसाल के पुत्र जगतराज ने मौदहा (हमीरपुर) के दिलेर खां को, जो कि नवाब बंगश का खास व्यक्ति था तथा कालपी का जागीरदार भी था, को मारकर कालपी पर अधिकार कर लिया।[२] अब तो बंगस और छत्रसाल का युद्ध होना आवश्यक हो गया। नवाब बंगश सन् १७२७ में पूरी तैयारी के साथ छत्रसाल से युद्ध लड़ने के लिए आया। दो वर्षों तक चले अनवरत् युद्ध में दिसम्बर १७२८ में जैतपुर (महोबा) में छत्रसाल की हार हुयी। तब छत्रसाल ने पन्द्रह हजार सैनिकों तथा दस हजार घोड़ों के साथ आत्मसमर्पण किया।[३] नवाब बंगश ने छत्रसाल को जैतपुर किले में ही बंदी बना कर रखा। उस समय नवाब बंगश को बगैर किसी सूचना के जैतपुर किले से छत्रसाल ने गुप्तरूप से अपने दूतों के द्वारा पूना के पेशवा बाजीराव प्रथम को पत्र भेजा जिसमें लिखा-

जो गति भई गजेन्द्र की, तौ गति पहुंची आय।
बाजी! जात बुन्देल की, राखौ बाजी लाज।।[४]

महाराज छत्रसाल के इस पत्र पर पूना के पेशवा मार्च १७२९ में सहायता के लिये आ गये। दोनों की सम्मिलित सेना ने नवाब बंगश को घेर लिया। अगस्त १७२९ में बंगश के साथ सन्धि हुयी तथा २३ सितम्बर १७२९ को बंगश की सेना कालपी से यमुना पार करके वापिस चली गयी।[५]

बाजीराव पेशवा प्रथम ने छत्रसाल का जो सहयोग किया था उसके बदले में छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा को अपना तीसरा पुत्र मानते हुये अपने राज्य का एक तिहाई हिस्सा प्रदान करने का वचन दिया।[६] सन् १७३२ में पेशवा ने चिमाजी के साथ गोविन्द पंत बल्लल खेर को यहां पर भेजा जिन्होंने यहाँ मरहठा राज्य की नींव रखी। कुछ समय में ही गोविन्द पंत व उनके पुत्रों ने चुर्खी, रायपुर, कनार, जालौन, कोंच, मोहम्मदाबाद, एट, कैलिया, महोबा, हमीरपुर, सागर आदि के क्षेत्र को प्राप्त करके सागर को अपना प्रशासनिक केन्द्र बनाया।[७] इधर गोविन्द पंत ने अपने छोटे पुत्र गंगाधर गोविन्दको कालपी, उरई तथा जालौन का क्षेत्र दे दिया। गंगाधर ने कालपी को अपना मुख्यालय बनाया तथा इन्हीं के पुत्र यहाँ के राजा कहलाये।[८] इस प्रकार से इस क्षेत्र में मरहठा आये।

अंग्रेजों को मरहठों की चुनौती - अंग्रेज अपने राज्य का विस्तार करते जा रहे थे। अंग्रेजों के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने अपनी फौज को बंगाल से बम्बई जाने के लिये 'कालपी होकर' जाने के मार्ग का निर्धारण किया। वे बुन्देलखण्ड की जानकारी भी चाहते थे। अतः उन्होंने अपने अंग्रेज सेनापति कर्नल लेसली को मई १७७८ में कालपी के यमुना तट पर भेजा। गंगाधर गोविन्द ने कर्नल लेसली के पास अपने दूत लाला नन्द कुमार को यह संदेश लेकर भेजा कि अंग्रेजी फौज कालपी होकर न जाये। इसे कर्नल लेसली ने अस्वीकार कर दिया। इसके पश्चात् गंगाधर गोविन्द ने यह भरसक प्रयास किया कि अंग्रेजी फौजें कालपी न आ सकें। इसके लिये उन्होंने यमुना नदी के तट से नावें, रसद आदि सब हटावा दिय। इस जनपद में मरहठों द्वारा अंग्रेजों को दी जाने वाली यह पहली चुनौती थी। इसके बावजूद गंगाधर गोविन्द, अंग्रेजों को रोकने में सफल न हो सके और मई १७७८ में कर्नल लेसली ने यमुना पार करके कालपी पर अधिकार कर लिया।[९] कर्नल लेसली ने ३० मई १७७८ को गवर्नर जनरल हेस्टिंग को पत्र लिखकर कालपी पर अधिकार कर लेने की सूचना भेज दी।[१०] सन् १८०१ में गंगाधर गोविन्द की मृत्यु हो गयी। उनके बाद उनका पुत्र गोविन्द राव उर्फ नाना जालौन के शासक हुये।

इधर बांदा के नवाब शमसेर बहादुर अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा ले रहे थे। उनके इस मोर्चे में नाना गोविन्द राव सहायता कर रहे थे। इस कारण अंग्रेज नाना गोविन्द राव से नाराज हो गये। अतः उन्होंने शमसेर बहादुर को परास्त करने के बाद नाना गोविन्द राव से प्रतिशोध लेने के लिये सन् १८०३ में कर्नल पावेल के निर्देशन में कालपी पर आक्रमण कर दिया। चार दिनों के युद्ध के बाद ८ दिसम्बर १८०३ को नाना गोविन्द राव को पराजय स्वीकार करनी पड़ी।[११] परन्तु अंग्रेजी सेना कालपी विजय से ही सन्तुष्ट नहीं हुई। उसने उरई, मुहम्मदाबाद, कोटरा, सैदनगर आदि पर भी अपना अधिकार कर लिया।[१२]

नाना गोविन्द राव ने पराजित होकर कालपी में अंग्रेजों के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। अतः अंग्रेजों ने सन् १८०४ में उरई व मुहम्मदाबाद का क्षेत्र उन्हें वापिस कर दिया, परन्तु कालपी शहर, किले आदि पर अपना अधिकार बनाये रखा तथा नाना को कालपी के बराबर का क्षेत्र अन्य स्थान पर देने का वचन दिया।[१३] यदि गंगाधर गोविन्द विरोध न करते तो वर्ष १७७८ में ही इस जनपद के अन्य क्षेत्रों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया होता।[१४] सन् १८०६ में गोविन्द गंगाधर उर्फ नाना साहब के समय में उनके राज्य के कालपी क्षेत्र पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया था। कैप्टन रैमजे कालपी का शासक था। वह कठोर शासक था। परन्तु नाना साहब के कारण वह शातिपूर्वक शासन नहीं कर पा रहा था। इसी कारण २३ अक्टूबर १८०६ की सन्धि के अन्तर्गत मजबूरन अंग्रेजों को परगना कोटरा, परगना सैदनगर, आटा, मुहम्मदाबाद आदि के कुल ११५ गांव जिनका मूल्य १४५३६८ बाला साही रुपया था, नाना साहब को हस्तांतरित करने पड़े।[१५] इधर जालीन के मरहठे राजा बालाराव मीका देखकर कालपी के अंग्रेजी क्षेत्र में अपने आदमियों से लूटपात करवा दिया करते थे।[१६] इससे अंग्रेज बहुत त्रस्त थे।

सन् १८३८ में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शासन में सुधार लाने के लिये, जालीन राज्य को अपने हाथ में लेकर कैप्टन डूलन को प्रशासक बनाया। डूलन ने उरई को अपना मुख्यालय बनाया तथा अपने नाम से डोलनगंज नामक मुहल्ला बसाया।[१७]

अंग्रेजों ने जालीन राज्य का कोई सही उत्तराधिकारी न होने के कारण बताकर, पूरे जनपद जालीन का अपने राज्य में विलय कर लिया जबकि नाना गोविन्द राव की नातिन ताई बाई जालीन में ही निवास करती थी। अंग्रेज उसके पुत्र को जालीन का राज्य दे सकते थे परन्तु ऐसा नहीं हुआ।[१८]

इन्दौर के जसवन्त राव होल्कर भी अंग्रेजों के विरोध में थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लार्ड लेक को होल्कर को दबाने की जिम्मेदारी दी गई। रामपुरा के निकट होल्कर ने अंग्रेजों के सेनापति मोनसेन को प्रथम युद्ध में पराजित कर दिया। दूसरी बार लार्ड लेक ने स्वयं सेना की कमान सम्हाल कर होल्कर को व्यास नदी के निकट उस समय पराजित किया, जब वह अपने बचाव के लिये पंजाब की ओर बढ़ रहा था। होल्कर को कर्नल जान मेलकम ने संधि करने के लिये बाध्य कर दिया। इस संधि के अन्तर्गत होल्कर को अपना कोंच क्षेत्र छोड़कर, अंग्रेजों को सुपुर्द करना पड़ा। इसमें अंग्रेजों को ८३ गांव मिले।[१९] इसके पश्चात् सन् १८५६ में होल्कर की बहिन भीमाबाई की मृत्यु के पश्चात् उसके परिजनों को बीस हजार रुपया प्रति वर्ष का गुजारा भत्ता देकर पूरी तरह से कोंच को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन कर लिया।[२०]

अस्तु हम देखते हैं कि सन् १७७८ से सन् १८५६ तक ८० वर्षों तक इस जनपद जालीन के विभिन्न क्षेत्रों में बसे मरहठों ने अंग्रेजों की उस सत्ता को जिसका दुनिया के मानचित्र पर सूर्यास्त नहीं होता था, को चैन की नींद सोने नहीं दिया और जहाँ कहीं वे पराजित हुये उन्होंने अवसर मिलने पर अपनों को संगठित करके अंग्रेजों से लोहा लिया और उनकी सत्ता को चुनौती देते रहे। इसके साथ ही प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अंग्रेजों का व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ मरहठों ने विरोध किया जिसके कारण उन्हें भारी कष्ट उटाना पड़ा और कुछ को अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ा। ऐसे ही कुछ अदम्य साहसी मरहठों का हम स्मरण कर रहे हैं -

नारायण राव पाण्डुरंग - क्रान्ति से पूर्व ऑफ अंग्रेजों के रोजनामचा नवीस के पद पर कार्यरत थे। अभिलेखों में गड़बड़ी करके क्रांतिकारियों की सहायता करने के कारण इनकी सारी सम्पत्ति जब्त करके इन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया।[२१]

नारायण राव - ये ताईबाई के पति थे। सन् १८७० में ताईबाई की मृत्यु के उपरान्त ये जालीन आकर रहना चाहते थे, परन्तु अंग्रेजी सरकार ने इन्हें अनुमति नहीं दी।[२२]

बलवन्तराव वकील - इन्हें अंग्रेजी खजाने से रु. ३३३ की वार्षिक पेंशन मिलती थी। ताईबाई के सक्रिय सहयोगी थे। जिसके कारण इनकी सारी सम्पत्ति जब्त करके, ताईबाई के साथ ७ वर्ष की सजा भुगतने हेतु मुँगेर गये।[२३]

जनार्दन राव भास्कर - क्रान्ति के समय ताईबाई ने इनको १४ गांव व ४० घोड़ों का सरदार बनाया। इन्होंने अपने गांवों से ८-१० हजार रुपये वसूल करके कालपी में तात्या टोपे की सहायतार्थ भेजे जिसके कारण देशद्रोही के जुर्म में अंग्रेजों ने इनकी सम्पत्ति जब्त करके ७ वर्ष की सजा दी।[२४]

बलवन्त राव व बालकिशन पाण्डुरंग - ये दोनों ताई बाई के निजी कर्मचारी थे। जो अपनी स्वामिनी के साथ ही मुंगेर सजा काटने गये।[२५]

भाऊ विश्वास राव - ये जालीन राजवंश के अति विश्वसनीय कर्मचारी थे। क्रान्ति के समय ये ताई बाई के दीवान थे। इन्होंने कालपी, जालीन, इटौरा के इलाकों का सैटिलमैन्ट तीन लाख रुपये में तथा कछवाहा धार का सैटिलमैण्ट ढाई लाख रुपये में करके सारा रुपया कालपी में तात्या टोपे के पास भेजा। इनके खिलाफ अंग्रेजों ने मुकदमा चलाया जिसके परिणामस्वरूप इनकी समस्त सम्पत्ति जब्त करके इन्हें आजीवन कारावास की सजा दी गई।[२६]

बाजू गोपाल - ताईबाई ने इन्हें ८ गांव तथा चालीस घुड़सवारों का नायक बनाकर अपना ध्वज वाहक नियुक्त किया था। १० मई १८५८ को ताईबाई के आत्मसमर्पण के साथ इन्होंने भी आत्मसमर्पण किया था। इनकी सम्पत्ति अंग्रेजों ने जब्त करके इन्हें सात वर्ष की सजा दी थी जो बाद में गवर्नर जनरल कलकत्ता द्वारा माफ कर दी गई थी।[२७]

गनपत राव, त्रम्बकराव - ये दोनों भी बहैसियत सेवक

ताईबाई के साथ मुंगेर सजा काटने गये थे।[२८]

नारायण राव चिन्तामणि - इन्हें क्रान्तिकारियों द्वारा इटौरा का तहसीलदार नियुक्त किया गया था। अतः मई १८५८ में जनरल रोज जब अपनी अंग्रेजी सेना के साथ कालपी पहुंचे तब इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।[२९]

सुल्तान सॉवले - इन पर अंग्रेजों के यहाँ लूटपाट तथा क्रान्तिकारियों का साथ देने का आरोप था। इनको १४ वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। इनका इतना आतंक था कि इन्हें हमेशा हथकड़ी तथा बेड़ी लगाकर रखा जाता था।[३०]

ऐसे ही न जाने कितने मरहठे क्रान्तिवीर हुये हैं जिन्हें न प्रशंसा की जरूरत थी न धन पाने की लालसा। बस धुन थी तो केवल अपनी मातृभूमि की सेवा की। ऐसे न जाने कितने जांबाज मरहठे आज गुमनामी के अंधेरे में है। उन सभी को हमारा शत-शत नमन। इस जनपद को अंग्रेजों के अत्याचारों से मुक्त रखने में मरहठों के क्रियाकलाप इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित किये जायेंगे।

संदर्भ -

१. गोरेलाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. २१०
२. विलियम इरविन - लेटर मुगल्स भाग दो, पृ. २३०
३. जनरल ऑफ एशियाटिक ऑफ बंगास १८७८, पृ. २६६ व गोरेलाल तिवारी, पृ. सं. २१६
४. डी.बी. परसनीस - मराठायाचे पराक्रम - पृ. ६५
५. जी.एस. सरदेसाई - मराठों का नवीन इतिहास भाग दो, पृ. १०५
६. वी.जी. दिघे - पेशवा बाजीराव प्रथम एण्ड मराठा एक्सपेन्शन, पृ. १०३
७. आर.के. लंघाटे - गोविन्दपंत बुन्देलयांची कैफियात, ९-१०-११-१४, आर.बी. हीरालाल - म.प्र. का इतिहास पृ. ७६, गोरेलाल तिवारी - पृ. २३३
८. डी.के. सिंह - १८५७ की क्रान्ति और जनपद जालौन पृ. २६
९. फारेन डिपार्टमैन्ट सीक्रेट कन्सलटेशन - भाग दो, ८ जून १७७८, पृ. सं. २३८ (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली)
१०. वही, १५-६-१९७८
११. डॉ. एस.एन. सिन्हा - दि रिवोल्ट ऑफ १८५७ इन बुंदेलखण्ड पृ. १९
१२. डी.के. सिंह. - १८५७ की क्रान्ति और जनपद जालौन, पृ. ३६
१३. एचीसन - ट्रीटीज एण्ड ऐंगेजमैन्ट - १९०६ भाग ५, पृ. ५३ व भाग तीन, पृ. १५१
१४. डी.के. सिंह - १८५७ की क्रान्ति - पृ. २९
१५. वही, पृ. ४०
१६. वही, पृ. ३०
१७. वही, पृ. ३०
१८. पी.जे. व्हाइट (फाईनल रिपोर्ट ऑफ सेटेलमैंट), पृ. ४५
१९. डी.एल. ब्रोकमैन - जालौन गजेटियर, पृ. ८१
२०. पी.जे. व्हाइट (फाइनल रिपोर्ट ऑफ सेटेलमैन्ट), पृ. ४४
२१. डिपार्टमेन्ट नं. XXII, ऑफ १८५८ फाईल नं. ७, सेल आफ दि हाउस ऑफ नारायण राव - पत्र नं. १४६, आफ १८५८ (राज्य अभिलेखागार, इलाहाबाद)
२२. डिपार्टमेन्ट नं. XXI, ऑफ १८७० फाईल नं. ११६, (राज्य अभिलेखागार, इलाहाबाद)
२३. पॉलिटिकल एजेन्ट हैमिल्टन का पत्र दिनांक ३ जून १८५८ राजकीय अभिलेखागार इलाहाबाद
२४. डी.के. सिंह - १८५७ की क्रान्ति - पृ. ६७ २५. वही
२६. डिपार्टमेन्ट नं. XXI, फाईल नं. २५, ऑफ जिला जालौन (राजकीय अभिलेखागार, इलाहाबाद)
२७. डी.के. सिंह - १८५७ की क्रान्ति, पृ. सं. ९८ २८. वही
२९. डिपार्टमेन्ट नं. XXI, ऑफ १८७० फाईल नं. १४, ऑफ जिला जालौन राजकीय अभिलेखागार, इलाहाबाद
३०. डी.के. सिंह - १८५७ की क्रान्ति, पृ. सं. १०२

- भरत चौक, उरई, जिला जालौन (म.प्र.)

किस्मत किसान की

- चौधरी शीलचन्द्र जैन

काय खों खेउत आये सदा सें, तुम भारत की नैया।
परत अबेरा जब तुमपै, नइयाँ कोउ पुछैया।।
भूख प्यास की खबर बिसारें, लगे रहत धन्दे में।
जाड़ी घामी बिसर सबइ, तुम फँसे रहत फन्दे में।।
एड़ी चोटी एक करत रत, तुम काये खों भइया।।१।।
उन्ना लौं नईं पूजत तुमखों, ढाँकन खों जा काया।
राने परत सदा अधपेटौं, जा ईसुर की माया।।
दार भात तौ अजुर रहत है, कैसें चड़त करैया।।२।।
तित्योहारन कभउँ भाग्य सें, बनें गोंउँ के फुल्का।
किलकन लगतइ हरजू, विरजू, दोइ तुमाये लरका।।
दो दो फुल्कन के लानें वे, कर रय हा हा दैया।।३।।
कोउ बचो नइँ खारव तुमरी, सबरी मुलक कमाई।
सम्पत सब भैंयन ने लै लइ, खा रय दूद मलाई।।
वदे तुमें वेई नोंन ठटउवा, जवै लगै लीलइया।।४।।
लौटे दुपरैं आवै तुमखों, रोटी और महेरी।
खावे सबखों मेंड़ मेंड़ सें, बड़े प्रेम सें टेरी।।
रात काटबे सेज तुमाई, कोड़ी और मड़ैया।।५।।
साव और सरकार दोइ की, धरें मूड़ पै करजा।
देत देत पै मिलो आखिरी बेइमान की दरजा।।
करजा में पूरी भइ उम्मर, तउ नें चुके रुपैया।।६।।
जोंन मुलक में पालनहारे, की ऐसी गति रैबै।
दूद मलाई खुवा और खों, खुदइँ खकरियाँ खैवै।
भोरन की भगवान बिना, अब नइयाँ कोउ पुछइया।।७।।
देख कसाले जे किसान के हुकम कड़ो सरकारी।
जिमी जगा दै दई मुफ्त में, छुटा दियौ रिनभारी।
खाद बीज सरकारू से भव, नोंनौं 'शील' समइया।।८।।

- बस स्टैण्ड, घुवारा, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बंकट

- डॉ. लखन लाल पाल

अक्सर दिवारीलाल घूरे पै कछू न कछू ढूड़त मिल जात। कंचा, गोटी, छूछी दियासलाई, गुटका के रैपर या फिर घूरे में डरे बिरिया के सूखे बेर। बेर मूँ में डार लेत। घर कौ झारन-झूरन आदमी घूरेई में तौ फैंकत। जेखे लानै वे चीजें बेकार की होत, दिवारीलाल के लानै ओई चीजें बड़ी काम की हो जात। टूटे खिलौनन सें तो ओखौ आरौ भरो परो। सावन के महीना में, जब खूब पानी बरसत, तब ऊ हरीरे पौधा ढूड़त। आम, जामुन की गुठली सब घूरेयई में तौ जात। पानी बरसे सें वे गुठली पीका दै देत औ लाल हरीरे पत्तन सें बढ़िया पौधन कौ रूप धर लेत। दिवारीलाल ओई पौधन खें उखार ल्याउत और बखरी में खुरपी से गड़वा खोद खें लगा देत। या अलग बात है कि आज लौ वे पौधा ओखी बखरी में पेड़े न बन पाये। कभऊँ बुकरिया चर जात तौ कभऊँ ओखौ बाप गुस्सया खें ईसें उखार खें फैंक देत कि जे पौधा बड़े हो जाये सें ओखी जरें कच्ची मड़इयन की दिवार में घुस जैहैं औ दिवार फार दैहैं। ये पौधा ओखें कछू दिनन साजे लगत फिर ऊ ई पौधन को नजर उठाखें नई हेरत, काये कि ऊ हर चीज नई चाहत। चैत के महीना में दिवारी लाल खूब सिला बीनत। सिला बीन खें ऊ तरां-तरां की मिठाई खात। दिवारी लाल मन कौ मौजी। उम्मर अभै कछू जादा नहियाँ.... दसई बरस की तौ है। मनै आओ ता पढ़न चलो गओ, नई मनैं आओ ता पूरे गाँव की चक्कर लगाउत। बस इस्कूल वाली कोनी छोड़ देत। न मास्टर दिखै ओखें, न कौन्हऊ संगी पढ़त वाली लरका। मास्टर खराब है.... मास्टर नै दिखलओ ता ऊ लरकन सें कहखें जबरई पकरवा लेत फिर ऊ चहौं जित्ती रोवै चिल्लावै, चहौं चित्ती फरफरावै, इस्कूल में बैठनई परत। रोज-रोज इकठौर पै घंटन बैठो रहबौ ओखें बिलकुल नई पुशात। ईसें ऊ इस्कूल की छैरी कम दाबत। ऊतौ बाप चिल्लात रहात, कभँऊ-कभँऊ थपड़या देत सो ओखें जानै परत, नईंतर ऊ छुट्टा घूमत वाली जिनावर आय। खेलबे में ओकौ खूब मन लगत, ओऊ किरकेट कौ खेल। किरकेट कौ छक्का ओखें सबसे जादाभाउत। जब गेंद बल्ला सें लगखें ऊपरई ऊपर पाला के बाहर हो जाय, तब ऊ खुश होकें बहुत उचक्त। ओखे हाँत में बल्ला होत तौ ऊ छक्कई मारत, भलेई चहौं आउट हो जाय। रुघन्टी में लम्बर एक, कौन्हऊ लरका नै कैच पकर लओ ता ऊ नो बौल कहखें किरीच सें नई हटत। लड़े झगरे पै उतारू हो जात। जब ओखे सबरे दाव फेल हो जात तभई बल्ला दूसरन खें छुअन देत।

दिवारीलाल निचाट करिया रंग कौ है। बाप तौ खूब गोरौ है पै मताई कौ रंग केवला। ऊ मताई कौ पूरौ रंग लै गओ। रंग औ आदत में तौ बाप के एकऊ लच्छन न हते पै लम्बाई में लगत तो कै बाप के शरीर पै जैहै। जैसौ बाप हड़ीलौ सो लरकऊ के हाड़गोड़ साजे। ऊधमी बहुत है, ऐसी ओखौ बापऊ कहात। ओखी मताई कहात कि दिवारी लाल मड़ारे पर कौ आय, ईसें ऊ जिद्दी बहुत है। चार लरकन के मरे पै यौ भओ तो सो मतारी खें दिवारीलाल आँखिन उँगरिया एक लाल दिखात तो। ऊ कछू करत रहाय, मतारी सब माफ करत। बाप इत्ती हमदरदी नई दिखाउत तो। होत है ऐसी, कौन बाप खें पीरें आई, पीरा तौ सही मताई नै। कारौ, करचुट्टा कैसऊ है, आखिर है तौ ओखे करेजे कौ टूँका। वा कहात - 'गंगाजू के गरे हाड़ येई लै जैहै, मो तरन-तारन हो जैहै। दिवारी लाल कौ बाप चत्तू देवी कौ पुजारी। गाँव वारे ओखें चत्तू पंडा कहखें टेरत। चत्तू पंडा के सिरें देवी खेलत... ताबीजऊ भर देत। येई में ओखें कुल सम्मान मिल जात। पंडा भलेई दिनभर मजूरी करै पै दिन डूबे देवी के दिवाले पै दीवलिया धरन रोज जात। जौन दिना देवी की पूजा होत, ऊ दिना खूब नारियल चढ़त। आधी गरी पंडा की होत, आधी चढ़ाउत वाले की। दिवारीलाल महीनन गरी खात। मतारी गरी सेंतें धरै रहात कि जभई दिवारीलाल मचलो तभई मतारी गरी दैखें ओखें शांत कर देत।

आज दिवारीलाल बहुत खुश हतो। पूरे मुहल्ला में उचकत फिरत तो। पंडा ओखे लानै बजार सें नए उन्हा खरीद ल्याओ तो। जहाँ लरका इकट्ठे, उतई पहुँच गओ। एक लरका बराती नै ओखी शरट छुई तो ऊ नाराज हो गओ।

- "तैने धूरा के हाँत लगा दए, मैली न हो जैहै? बापू काल्हई तो राठ सें ल्याओ।'

- "ये उन्हा कित्ते के आये दिवारीलाल?" ओखे दोस्त हरगिन्ना नै पूछी।

- "बिट्टू बहुत तेज है.... दस हजार रुपइया के आये।' दिवारीलाल गरब से मूँड़ हलाउत भओ बोलो।

- "अर र र... रे! दस हजार के।' हरगिन्ना ओखी मजाक उड़ाउत भओ बोलो - "दस हजार के कहूँ उन्हा आउत हैं... दस हजार कौ तो घर आ जैहै।

हरगिन्ना के बिंग और लरकन की हँसी से दिवारी लाल लरम पर गओ। ओनै सोची कि मैंने रुपइया जादा बता दए। दोस्तन नै दस हजार रुपइया मान्न नई करे सो ऊ बोलो - 'हरगिन्ना यार! तैं बता, कित्ते के होहैं?'

- "सौ रुपइया सें जादा के न होहै।'

- 'अरा! सौ रुपइया के...।' दिवारीलाल नै ओखे तुच्छपन पै अचंभे सें आँखी सिकोरी।

- "सौ के नहियाँ, ता कित्ते के है?" हरगिन्ना नै दिवारीलाल पै उल्टी चड्डी गाँठी।

- "हमाऔ बापू एक हजार के कहात तो।"

- 'तुमाऔ बापू झूठी बोलत रे।' हरगिन्ना नै एक हजार रुपइया नई माने - 'जादा से जादा दो सौ रुपइया के होहैं।'

- दोसी के नहियाँ, पनसी के हैं।'
- 'दोई सै के होहैं।' हरगिन्ना अबकी देर अड़ खें रह गओ।
- 'दिख लै यार हरगिन्ना! मैं पान सै सें कम न करिहों, अब तैं मान चहाँ न मान।' दिवारीलाल ई देर इत्ते पक्के सें बोलो कि लरकन खें वा बात साँची लगी। अब सब लरका ओखें उन्हा थतोल-थतोल दिखन लगे। नए उन्हन की ठसक में ऊ सब लरकन कौ हीरो बन गओ। ओखी रुघन्टी की बजै से कोऊ लरका बस भर ओखें खिलाबो नई चाहत रहो पै ई नए उन्हन नै ऐशो जादू करो के सब लरका ओखें खेल खिलावे खें तइयार हो रए। नए उन्हम की बजै सें दिवारीलाल के दो देर आउट हो जाये पै कोऊ नै ओखें आउट करार नई दओ। तीसरी देर के आउट होवे सें ओनै खुदई बल्ला छाँड़ दओ और फिल्डिंग करन लगो। दिवारीलाल के आउट होय सें लरका खुश नई भए बलखें दुखी हो गए। दिवारीलाल ई देर छक्का मार देतो। कौन्हऊ और दिना होतो ता दिवारीलाल सें जबरई बल्ला सब मिल खें छुड़ा लेते।

उनकी खेल खतम हो गओ तो। दिवारीलाल के उन्हन में खूबई धूरा चिपक गई ती। धूरा झराखें दिवारीलाल और खिलाड़ी लरका बिना हार जीत की फैसला करें अपने-अपने घर खें लौट आए। पिरति दुन्दी ती दिवारीलाल हतो, जब ओई सब में मिल गओ ता अब खेल को मजा का रह गओ। खेल की मजा ती जभई है जब कोऊ कड़ी टक्कर दैबे बालो होबै। दिवारीलाल अपने उन्हन की बजै सें सूधरी बन गओ, सो खेल, खेल कहाँ रहो, बक्वाद कहाँ भई। न उरझे, न पुरझे-बिना उरझे-पुरछे कहूँ लरकन के खेल, खेल होत है। ऐसी नहियाँ ता ऊ ती महान लोगन की खेल हो गओ, ... भदुदर लोगन की।

दिवारीलाल नै एक गिलास पानी पियो। मैले उन्हा दिखखें बापू नाराज हो जैहे सो ऊनै वे उन्हा उतार खे घरी लगा खे धर दए औ बाहर निकर आओ। रामदेव ओखे दोस्त चौतरिया पै बैठो-बैठो केला खा रओ तो। दो कखरी में अलग से दाबें हतो। केला दिखखें दिवारीलाल की जीब लपलपानी। कैसें मिलै? ऐसें ती यी दै न देहै। जीब सें जादा अब दिवारीलाल की दिमाग चलन लगो। दिवारीलाल रामदेव के नीगर पहुँच गओ और ओखे कंधा पै हाँत धर खें बोलो- 'कहाँ सें ल्याओ केला?' रामदेव ने दिवारीलाल की हाँत झटक खें दूर फैको। रामदेव अच्छी तरां सें जानत तो कि यी केलन खें आय लौलया रहो सो ऊ पलहई सें चौकन्नौ हो गओ। ऊ केला चाट-चाट खें खात भओ बोलो - 'हमाऔ दद्दू बजार सें ल्याओ।'
- ''उरे! काल हमाऔ बापू ल्याओ तो, मैंने बहुत खाए, अभै लौ डकराई आउत।' दिवारीलाल ने निचाट झूठी मसकी।
- ''मीठी न होहै केला।' दिवारीलाल ने ललत्तया खें कहो।
- ''एरे! बकला मोखें दैदे।' दिवारीलाल हँस सें बोलो।

रामदेव कछू नई दैबौ चाहत तो। आज लौ कोऊ नै ओखी कौन्हऊ चीज नई लै पाई। 'तै डार-डार मैं पात-पात' ऐसी है रामदेव। ऊती दिवारीलाल खें केला दिखा-दिखा खा रओ तो। ओखी ललत्तयाबो रामदेव खें साजी लगत तो। दिवारीलाल देर पै देर ओठन पै जीब फेरन लगो। आज रामदेव के हाँत में केला सो ऊ शहंशाह, दिवारीलाल के हाँत खाली सोऊ दरिद्दरी। जौन दिना दिवारीलाल के हाँत में कछू चीज होत सो ऊ बादशाह बन जात, सारौ जग ओखें दलुद्दरी दिखात। दिवारीलाल मनई मन कुढ़ गओ - 'यी सारौ बक्ला नईं दैबो चाहत'। खात वाली चीज न होती ती अब लौ ती ऊ छुड़ा खें लै भगतो फिर चहाँ कछू हो जातो। केला छुड़ाखें दिवारीलाल लरकन के बीच में अपनी बेइज्जती थोरी करवा है। लरका तिनगाउन लगहैं कि दिवारीलाल चटा है। रामदेव के केला छुड़ा खें खा गयो। ओऊ की कछू इज्जत है। लड़ सकत, झगड़ सकत, लरकन की चीजें छुड़ाखें भाग सकत, ये दिवारीलाल के लानै बहादुरी वाले काम है। बापू दो तमाचा मारहै, कोऊ बात नई। केला..... हाय यी दुष्टी कभै टिघलहै।
- ''अरे रामदेव! तुहै पती नहियाँ, आज हमाऔ बापू जलेबी ल्याहै।' दिवारीलाल की नजर बरोबर केला पै टिकी ती।
- झूठी! - रामदेव नै अपनी तरक दओ - 'तो बापू खाई डारन गओ। खेतन में कहूँ जलेबी होत।'
- 'खाई डारन ती गओ है।' दिवारीलाल नै अन्त समै लौ अपने हतयार नई डारे औ न डारें की ओखी विचार हतो। दिवारीलाल नै मिला खें दई - 'दुफरिया सें वहीं को वहीं बापू बजारै चलो जैहै। आज एकादशी है न, देवी मइया की पूजा जलेबियन से होत। देवी मइया खें ती जलेबी तनक चढ़ाई जात, बाकी सब महीं ती खैहीं। जलेबी बहुत मीठी होत...'....बहुत..... बहुत।' दिवारी लाल नै अपनी ऐसी मूँ बनाओ जैसें साँचऊँ जलेबी मूँ में डारें होय औ स्वाद लै.. .. लै... खा रओ होय।
- 'चार जलेबी मैं तोखें दै दैहों। हरगिन्ना खें न दैहों ओनै मोखें काल लड्डुआ न खबाये ते।' दिवारीलाल की आँखीं रामदेव के मूँ पै चिपक गई।
- 'आधी केला दैहों'?
- 'हओ' दिवारीलाल नै झट मुही हिला दई। रामदेव ने आधी केला दिवारीलाल खें दै दओ।

केलाई के लानै तो ओनै इतने गुना गीठे ते। केला साँचऊँ बहुत मीठी है। दिवारीलाल सोचन लगो - ''मैंने कभै केलाखाये ते? बहुत दिना पहलूँ लोहे के बरोबर लए ते। टूटी खुरपी डरी ती, ऊमें राई-राई दो केला चढ़े ते। वे इत्ते मीठे न हते जिती यी मीठी है।''
- 'रामदेव! तुमाए केला बहुत मीठे हैं। मैंने इत्ते मीठे केला कभऊँ नई खाए।'
- 'हमाऔ दद्दू उरई से ल्याओ। उरई बहुत बड़ी है। आदमी उरई में हिरा जात। वा इत्ती बड़ी है कि कोऊ ई पार सें ऊ पार नई हो पाउत।' रामदेव ने अपने थोरे ग्यान की बघार लगाओ।
- 'काये रामदेव, उरई में चीलगाड़ी उतरत होहै।' दिवारीलाल की केला खतम हो गओ सो ऊ हाँत झराउत भयो बोलो -
- 'तुमाऔ दद्दू चीलगाड़ी में बैठखें आओ होहैं।'

- 'हमाओ दद्दू कई देर बैठो चीलगाड़ी में। रामदेव घमंड से बोलो - 'तुहै पती नइयाँ?'

- 'हओ, पता है, मैंने कई देर तुम्हाए दद्दू खें चीलगाड़ी पै बैठो दिखो।' दिवारीलाल पूरी तरां से केला की बजाउन लगो।

जैसई बातें लम्बी बढ़ रई ती, ऊसई रामदेव कौ दिल बढ़न लगो। आधी केला अब दिवारीलाल के हींसा में औ आ गओ, फिर एक चौथाई औ फिर पूरो केला दिवारीलाल के हाँत में हतो। रामदेव बातन में मस्त और दिवारीलाल केला खाबे में मस्त। दिवारीलाल खें केला देखें रामदेव ऐसी लग रओ तो जैसें ऊ वीर बिकरमाजीत होबै औ दिवारीलाल मंगता। रामदेव दिल्ली की राजा, दिवारीलाल वीरगाथा काल कौ भटवा।

मौका की फायदा उठावो आदमी नै न जानै कहाँ से सीख लओ। स्यात या बहुत पुरानी परपाटी आय। मौका कौ फायदा न उठावे सें कइयन के राज डूब गए। दर-दर के भिकारी बन गए। औ जेनै मौका कौ फायदा उठाबो सीख लओ वे आझऊँ दिन मौज में है। पीढ़ियन सें या बात चली आई। कछू हालात सिका देत। दिवारीलाल कौ बाप मजूरी करत, ऊ रोज या आतरें चौथें लरका पै दस-बीस रुपइया खरच न कर पाहै। फावरे कौ पइसा.... जौन दिना चलो सो हाँत पास रुपइया और जौन दिना टिक गओ ऊ दिना खाली हाँत। रोज-रोज थोरी आदमी बंधिया डरवाउत। फिर ऊ कछू न कछू मजूरी मिलत रहत। अब तौ सुनो है रोजगार गारंन्टी योजना आ गई है, ओमें ओखें काम जरूर मिल है। दिवारीलाल अपने संगी साथियन सें हरेक मौका भंजा लेत। दिवारीलाल उनके बाप मतारी की नजरें बचाये रहात। बाप-मतारी सें तनकई अलग भए लरका, सो वे दिवारीलाल की छतरी तरें दिखात। लरकन के बाप मतारी अपने-अपने लरकन खें दिवारीलाल के संगै खेलें सें रोकत पै दिवारीलाल में ऐसी न जानै का है कि घर सें छूटे लरका सूधी ओई की टोली में दिखात। हरगिन्ना दिवारीलाल खें सवेरे सें नई दिखानो। इतनी बेरा ली तौ ऊ घर सें निकर आउत तो। का बात है? ईकौ उत्तर दिवारी लाल के पास नई हतो। येई उत्तर के खोजबे के लानै दिवारीलाल हरगिन्ना के घरै पहुँच गओ। हरगिन्ना मूँड़ औंधाय किताब लेंय बैठो तो। हरगिन्ना की ई हालात पै दिवारी लाल तरें से ऊपर लौ कँप गओ। ओखी सबसें बड़ी कमजोरी येई बैरिन किताबई तौ है। दिवारीलाल तौ ऐसी बैल आय कि जुन पेड़ की डिरइया में जुआँ बनत ऊ पेड़े के तरें भे भूलऊखे नई निकरत। ऊ डिरात-डिरात बखरी में बैठ गओ। हरगिन्ना के बाप कौ मूड़ ओखे कछू गड़बड़ सो दिखानो। मन तौ हो रओ तो कि लौट परै। ई माहौल में तौ ओखी दम घुटी जात। अपने आबे कौ कारन बतायें बिना ऊ कैसें जा सकत तो। दूसरी बात ओखौ दोस्त किताब पढ़ रओ तो। किताब भलेई ओखें कभऊँ अच्छी नई लगी पै किताब कौ रुतबा तौ होतई है। किताब औ किताब लहै बाले के आँगू तो साजे-साजे मूँड़ झुका लेत। सो दिवारीलाल झुक गओ।

- 'दिवारीलाल काए खें आए?' हरगिन्ना कौ बाप पुलिस वाले की नाई कड़को।

- 'कछू खें नई कक्का, मैं हरगिन्ना सें पूछन आओ तो कि पढ़न नई चलनै आय।'

- 'एरे! तैं मोखें चुदबैसी न सिकै।' हरगिन्ना कौ बाप तमतमयानो - 'आज इत्तवार नुहै? तै यौ सब जानत हित। लौंड़ा के बिगारें खें आ गओ। तुम्हाओ तौ मंजूरी में सट जैहै, हमाओ काये में सट है।

'आज इन्नै हरगिन्ना खें बहुत मारो भइया। 'हरगिन्ना की मतारी फूँसी- 'कभऊँ बैठ खें लगातार घंटा दो घंटा नई पढ़ाओ, आज पढ़ाओ सो लौंडा खें गुधल खें धर दओ। आज ये अभई मौड़ा खें डी.अम. बनाखें छाँड़ हैं।

दिवारीलाल की धुकधुकी चलन लगी। ऊ जित्ती जल्दी हो सकत तो उतनी जल्दी वहाँ से खिसकवो चाह रओ तो पै ओखो कौन्हऊ वाजिब बहानी नईं सूझ रओ तो। दिवारीलाल कायर थोरी हैं ठीक-ठाक बहाने के बिना ती ऊ टरत वाली नहियाँ। दिवारीलाल बुरओ फँस गओ। बड़ी बात येई हती कि हरगिन्ना की मतारी हरगिन्ना के बाप पै रुक-रुक खें बरसत हती, नईतर उतै तौ मरघटा कैसी सन्नाटी छाओ तो।

- 'नाक छिनकया रे चमड़ेल!' हरगिन्ना कौ बाप दिवारीलाल पै खिसयानो - 'सूँड़ा से बुचकाउत रात' दिवारीलाल कौ मूँ औ करिया पर गओ। हरगिन्ना की मतारी कौ सुभाव दिवारीलाल के लानै हमेशा साजौ रओ। ओखे सामूँ दिवारीलाल खें और जादा शरम लगी। ऊ बिल्ली कैसी चाल सें उठो। शरम सें ओखे ओंठ सिकुर गए। दिवारीलाल ने कसखें नाक सुड़की। पूरी नाक (पीरी गाढ़ौ द्रव) मगज में चढ़ गई। बाहर निकर खें ठीक ठौर पाखें ओनैं अपनी नाक छिनकी औ शरट की बाँह से बायी नाक पोंछ डारी। फाँसी सें निनुर आओ दिवारी लाल।

इतवार की छुट्टी में लरकन के मजई मजा होत गाँव के बाहर मैदान में लरकई लरका उतरात ते। बइरें हार-खेत खें जा रई ती। कछू बइरें पानू से भरे डब्बा मूँड़ पै अछंगा धरें चली जा रई ती। लरकन खें ई बातन सें का मतलब कि को कहाँ जा रओ है? या कौन नई बात आय। यौ तौ रोज की धातम आय। बराती की अम्मा के संगै दो बइरें और हती। बराती की अम्मा नें बराती खें बुलाखें समझाई कि रोटी तरकारी ऊ ठौर पै धरी है, जाखें खा लइये। दिन भर दिवारीलाल ने संगै न खेलत रहिये, थोरी बहुत पढ़ लइये। बराती ने अपनी अम्मा की कछू बातें सुनी औ कछू अनसुनी कर खें फिर लरकन के संग में मिल गओ। बइरें आँगू बढ़ गई। बराती की अम्मा संग वाली सें बोली - बरगओ, दिवारीलाल ऊ धमी भौत है, कभऊँ-कभऊँ लौंडा खें मार देत।'

- 'जिज्जी, ऊधमी अकेली नहियाँ।' वा बइयर घूँघट माथे पै धरखें यहाँ वहाँ हेरी- नाटपरो, बड़ी कतन्ना है। एक दिना मैंने चोदे के

गालन पै तीन-चार तमाचा रगड़ दए ते।

- 'हरामी है, मताई धरी सिर्रिन।'

- 'सिर्रिन नहियाँ जिज्जी वा। सिर्रिन होती ता पाँच-पाँच लरका कहाँ से हो जाते।' ओई बइयर बोली - कहात कि मो दिवारीलाल इत्ते टिहारी नहियाँ जित्ती आदमी कहात हैं।'

दिवारीलाल टिहारी में बदनाम हतो। अब तौ ओखी साजी बातऊँ - टिहारी वाले कालम में जुर जात।

खेल की मतलब का होत, या बात लरका नई जानत। वे यी नई जानत कि खेले में शरीर तन्दुरुस्त होत, बिना जानै वे खूब मन सें खेलत। खेल से सामाजिकता आउत, वे येऊ नई जानत।' खेल में न कोऊ हल्की न बड़ी, जौन जीतो ओई बड़ी.... अच्छी खेलो ओई हुशियार। खेल सुभाविक है.... कुदरती है। लरका मताई की ओली से उतर खें पिरकति की गोदी में आउत। उन्हें ऊसई आनन्द मिलत- जैसी अपनी मतारी की ओली में परखें दूद पिये में मिलत। खेल में इतने मस्त हो जात कि दुनिया जहान भूल जात। तनक देर में लड़ गए... तनक देर में दोस्ती गाँठ लई। हरगिन्ना ने दिवारीलाल की गेंद छुड़ा लई। दिवारीलाल ने हरगिन्ना सें कई देर गेंद मँगाई। खूब पुटयाओ पै ऊ टस सें मस नई भओ। हरगिन्ना के गेंद न दए सें दिवारीलाल ने ओखें पटक दओ और तीन-चार लातें धमक दई। हरगिना कस खें चिल्ला परो। लरकन की खेल बन्द हो गओ। हरगिन्ना की बाप दिवारीलाल खें मार है, यी सोच खें ऊ कछू सकानो। अब का होबे? दिवारीलाल हरगिन्ना के नीगर गओ औ बोलो - 'हरगिन्ना यार, तै मोखें मार लै। मैंने तुहै जादा कहाँ मारी? बता, मैंने मारो है?'

- 'हाँ' - आँ... तैने मोखें पटक नई दओ। हरगन्ना कस खें चिल्लानो।

- 'धोके में लात नुहै लग गई ती, सो तैं गिर परो।' दिवारीलाल ने हरगिन्ना के कंधा पै हाँत धरो। हरगिन्ना ने दिवारी लाल की हाँत झटक दओ। दिवारीलाल ओखे कोद पीठ करकें ठाड़ो हो गओ।'

- 'तैं मोखें मार लै।' हरगिन्ना ने रोबो बन्द कर दओ औ ओखी पीठ पै घमूसा मारन लगो। ओनै दिवारी लाल की पीठ पै डिरात-डिरात घमूसा मारे। कहूँ दिवारीलाल फिर खें उखर परो ता ऊ तौ कमरई कर दैहै। दिवारीलाल खें घमूसन की तनकऊ असर नई भओ फिर ऊ हरगिन्ना कोद मूँ करखें बोलो - 'अरे यार! तैनें बहुत कसखें घमूसा मारे। मोई पिठी पिरान लगी। अब तौ मैं निंग न पैहौं। हरगिन्ना खुश हो गओ। दिवारीलाल ईसें खुश हतो कि चली अब घरै उरहानी न आहै, नईतर बापू तौ पीठई सुधै देतो। खेल फिर सें शुरू हो गओ। हरगिन्ना बल्ला पकरैं तो और दिवारी लाल गेंद। दिवारी लाल चाहत तो कि आज हरगिन्ना छक्का मार देबै ता बची खुची गुस्सा ओऊ निकर जैहै। फिर तौ छक्काई की चर्चा में सब मस्त हो जैहैं। खुद हरगिन्नाऊ। अगर यी समै न होतो ता ऊ दोई तीन बॉल में हरगिन्ना खें आउत कर देतो। वैसे लरकन भरे में सबसे जादा आउट ऊने हरगिन्ना और बराती खें करो। ई मे दिवारीलाल की इस्पेशल रिकाड है।

खेलत-खेलत बराती भूकी हो आओ। खेल बन्द होय पै सब लरका अपने-अपने घर कोद चले गए। पछाऊँ खें बराती औ दिवारीलाल रह गए। बराती के घर में कोऊ न हतो। दरबाजे में तारौ (ताला) लगो तो। उघन्नी ऊ गरे में टाँगें हतो। अकेले घर में कैसें जाय। अकेले जायें में डिर लगत। बड़ी बखरी, इतनी बिलात अटरियाँ सूने घर में भाँय-भाँय लगत। बराती दिवारीलाल सें बोलो - 'दिवारीलाल, हमाए घर लौ चल तनक। मोखें रोटी खानै है। अकेले में डिर लगत।'

- 'अरे यार! मैं नई जात।' दिवारीलाल ने सूधी नहियाँ कर दई - 'तैं चलो जा, काए कौ डिर?'

- 'हमाए इतै कारी बिलइया आ जात। मैं ऊ बिलइया सें बहुत डिरात।'

- 'तै बिलइया सें डिरात? इतनी न डिरए करे।' दिवारी लाल आँखी निकार खें बोलो - 'बिलइया मोखे मिल जाए ता मैं चोदी के पछाऊँ के दोऊ पाँव पकर खें पछार लगा दऊँ। बिलइया तौ आय, कौन बड़ी शेर आय।'

- 'तैं शेर ऊ सें नई डिरात।'

- 'हाँ, नई डिरात।'

- 'शेर, आ जाय ता, तैं का करत दिवारीलाल?'

- 'का करौ।' दिवारीलाल अकड़ो- 'शेर आदमी पै उचक खें वार करत। मोय ऊपर उचकै ता मैं उचकतई में ओखे दाँतन में बल्ला मारौं औ तुरतई जमीन में लोट जाऊँ, फिर फुरती सें उठखें बल्ला ओखें मूँ में बैंड़ दऊँ। शेर ने जो कछू खाओ होहै, सो सब उछर दैहै।'

- 'ता चल यार मोय संगै। मैं रोटी खा लैंऊ सो भग आइए।' बराती खें अपनी परी ती।

- 'यार बराती, मैं जैहों न।'

- 'काये न जैहित, बता?' बराती अब मान मनउअल पै आ गओ।

- 'ईसें न जैहौं कि एक दिना, जब मैं तुमाए इतै तेलू खान गओ, तो ता तुम्हाए नन्ना नै मोसें जूठी टाठी धुबवा लई ती। तुमाई अम्मा सबकी जूठी टाठी उठाखें लै गई ती औ मोई टाठी नई उठाई ती। टाठी मोरहई खें धोने परी ती।'

- 'अरे यार! तैं बता देतो तो तोई टाठी मैं धो देतो।' बराती बुरओ मूँ बनाखें बोलो। बराती की ुरओ मूँ दिख खें दिवारी लाल कछू टिघलो। ऊ बोलो - 'ता एक बात सुन लै, मैं तोय भीतर न जैहों, दोरें ठाड़ो रैहों।'

- 'भीतरई तौ डिर लगत यार।'

- 'तुहै का कन्नै, मैं बाहर सें आवाज लगाउत रैहों। कौन्हऊ बात पर जाय ता तैं चिल्ला दइये। मैं आ जैहों। तैं चिन्ता न कर, मैं तौ हौं।' बराती की मन भर गओ। दिवारीलाल ओखे पछाऊँ-पछाऊँ चलो गओ।'

खिलाड़ी दिवारीलाल सें ओखे बापऊ हड़याओ। रोज-रोज कहाँ ली उरहाने सुनै। अकेली लरका कहूँ ठौर-कुठौर लग गओ ता पइसा धरै टका उठाने परिहै। खूब बेटा- बच्छा करखें समझाओ पै स्वसुर की यी मानतई नहियाँ। चत्तू पंडा करम पै हाँत धरें येई सोच में डूबो तो। दिवारीलाल उचकत-कूदत घर में घूसो। आंतई-आत अपने बापू सें बोलो - 'बापू एक नओ मास्टर आओ है। ऊकी मूँछें घुट्टवाय है। अपनी जौन ऊ शहर वाले फूफा की लरका है न, बापू बिलकुल ऊसई है। अच्छे पेन्ट-शरट पहरें है औ आँखियन में चश्मा लगाय। बापू भुक्क हतो सो दिवारीलाल पै तमतमया परो - 'सो मैं का करौं?'

- 'आँहाँ बापू, पूरी बात तौ सुन।' दिवारीलाल ने साँस लई - 'ऊ मास्टर घरन-घरन घूमत फिरत। ओखे सगै अपने ओई गिनती-पहाड़े वाले मास्साब हैं। हरगिन्ना के घर सें बराती के घरै चले गए। काल सें इस्कूल में सब लरकन खें रोज खाना मिले करिहै।' चत्तू पंडा दिवारीलाल की बचकानी बातन पै हँसो। दिवारी लाल बातें करे में कोऊ खें दिखत-सुनत नहियाँ ऊती बोलें चलो जात - 'बापूं परसाल वजीफा कहाँ मिलो तो? आसों वजीफा पक्के खें मिलहै। हरगिन्ना बताउत तो कि डिरेशऊ मिलहै। ये सब चीजें काट बँट हैं।

- 'काये रे! काहे खें झूठी बतात। ई गाँव में ऐसी हो पाहै? ऊपरई वाले आधी खा जात। जौन कछू बचो-बचाव आहै सो चुन्न-पुन्न इतै हो जैहै।'

- 'दिवारीलाल की बात सही आय पंडा' बराती को बाप बोलो। ऊ पंडा के इतै कछू काम सें आओ तो। बाप-बेटा की बातें सुनखें ओनै दिवारीलाल की बात पै मुहर ठोक दई। पंडा उठ खें ठाड़ो हो गओ

- 'खाबे पीबे में लगे रैहै लरका ता पढ़ाई का होहै?'

- अब चार मास्टर हो गए इस्कूल में। कछू ती पढ़ा है। यी नओ मास्टर खल बाली आय। लरकन खें खेल खिला है। लरका के बिकास में सब कछू जरूरी होत।

- 'हूँ' लरका ती यी चाहतई हैं भइया। काये खें चक्कर में रे हौ।'

- 'पंडा बात माने करे। खेल ऊ खें कैरियर बनाओ जा सकत।' बराती के बाप ने ओखें समझाओ - 'जब सरकार इतनी सब कछू कर रई है ता हमें तुम्हें लरका पहुचाए में का परेशानी है? ससुरे इस्कूल में बैठ है ता कछू ती पढ़ है। सब कछू मुफ्त में ती मिलने है। हुशियार होहै ता वे आँगू ती निकरई जैहैं।

- 'कक्का किरकेट नई खिला है।' दिवारीलाल बीच में बोलो।

- 'नई किरकेट नई खिलाहै। मोई ऊ मास्टर से बात हो गई है। ऊ कहात तो कि क्रिकेट ओलम्पिक में शामिल नहियाँ। औ ऊ खेल बहुत अच्छे हैं।' ओऊ खेलन में मजा आहै।'

- 'दिवारीलाल खुश हो गओ। बराती के बाप ने पंडा सें अपनी काम बताओ। पंडा ने हाँ कर दई। ऊ बाहर निकर खें बोलो - 'हो सकत वे मास्टर काल तुम्हाए इतै आवे। आज कुबेरा हो गई सो आय तुम्हाए इतै एक नई आ पाये, नईतर वे घरन-घरन समझाउत फिर रए।' अब पंडा खें बिसवास होन लगो कि स्यात दिवारी लाल मन से पढ़न लग है। चली पढ़ जाय हम ती करिया अक्षर भैंस बराबर है। लरका पढ़ जैहै ता कछू बनत जैहै। पंडा ने राम-राम करी। बराती की बाप अपने घर कोद चलो गओ।

दिवारीलाल सवेरें सीकारूँ जग गओ। ऊनै सपर खोर खें तेल लगाओ औ ककई सें अपनी माँग काढ़ी। झोल्ला लैखें ऊ इस्कूल खें तइयार हो गओ। दिवारीलाल आज उमंग में हतो। मतारी खें दिवारीलाल आज बहुतई नीनी लगो। ओनै बहरिया उठाई औ दिवारीलाल के सामूँ ठाड़ी होकें बोली - 'बेटा ठाड़ी री... मैं तोई नजर उतार दऊँ।' दिवारीलाल ओई ठौर पै ठाड़ो हो गओ। मतारी ने बहरिया ओखे मूँ के सामूँ चार-पाँच देर घुमाई औ धोती उसकार खें बहरिया दोऊ पाँवन के बीच में से पछाऊँ खें फैंक दई।

- नया रामनगर, उरई (जालौन)

दो रोटी

- संतोष सोनकिया 'नवरस'

दो रोटी कों ऊकी मौड़ा बारी रोरउ है।
सीन चिरैया के छीनन की फाँको होरउ है।

पानी पिबा पिबा पुचकारे काँनों महतारी।
काँनों गम के घूँट पियै खुद भूकन की मारी।
घिरना की बीजा भीतर जानें को बोरउ है।
दो रोटी कों ऊकी मोड़ा बारी रोरउ है।।

सोजउ आज लाड़ले ऐसइ काल कछू करहैं।
माँग जाँच कें कैसउँ पेट तुमाओ ती भरहैं।
आँचर चिपकी भूँकी प्रान पियारो सोरउ है।
दो रोटी कों ऊकी मोड़ा बारी रोरउ है।।

कैबे कों कै दइ पै कल कौंसें का हो जैहै।
झूटी बातन में आकें कल कैसें सो जैहै।
नई उमर में कैसो पीरी पीरी होरउ है।
दो रोटी कों ऊकी मोड़ा बारी रोरउ है।।

करैं मजूरी कैसें जाकें अपनो मन मारें।
धनी लुटेरे मालिक इज्जत पै डाँको डारें।
कितउँ उजेरी दिखै न, पथ अँधियारो होरउ है।
दो रोटी कों ऊकी मोड़ा बारी रोरउ है।।

बड़े बड़े पेटन में सिगरी अन्न समा गउ है।
इनके हींसा में आँखन में पानी आ गउ है।
हर बेबस अँसुआ ऊकी सूरत को धो रउ है।
दो रोटी कों ऊकी मोड़ा बारी रोरउ है।।

- गणेशजी, जालौन (उ.प्र.)

बेटा कौ मताई द्वारा लओ भऔ इंटरव्यू

- दिनेश चन्द्र दुबे

अच्छा तुमई बताव। जा घर में तुम सात भैया एक बैन हो। आठउँ जनन में तुमई काये अकेले लिखत? पढ़े लिखे तो सब तुमसै ज्यादई हैं।... और और सबसे गधा तौ पढ़वे में तुमई हते। याद है सुरेशा कैसी मारत ती तोय कभउँ कभउँ। जब स्कूल खौं देर हो रइ होत ती और तुम वार औंछवे में देर करत रतते। भैन... पटिया पारवे में लगौ। उतै चाँय स्कूल की घंटी बज जाये तौ मास्टर क्लासई में न घुसन देय। भैड़ा वैसई सबसे बुरऔ लगत, देखवे में। लेकिन...

हमें ठीक सें याद परती सब बातें साठ साल हो गये तों भी। सब भाई बैनन में, सबसे ज्यादा खराब शक्ल सूरत हमाई अई हती। छुटपन से लेके ज्वानी की देरी पै पाँव रखत तक हम अक्सर सोचत ते कै अम्मा दादा ने हमाये सँगै दुभाती करी। भाई साव कों देखी जैसे करन दीवान होय बिलकुल। जिज्जी ऐसे लगती जैसे गँगा जमुना में वैजन्ती माला लगत ती। और एक हम हैं तीन पै एक आँख भैड़ी। व्याव भओ तो, तौ मड़वा के नैचे पैली बेर देखकैं वौ बाद में बताई ती कै...।

अम्मा अपने सबसे खराब मौड़ा खौं, सब मौड़ी मोड़न में सबसे ज्यादा नाव कमावे बारी, और सबसें जादा बड़े और इज्जतदार नौकरी में पौचने पे, वे जब भी मौका मिलत तौ अजीव अजीब सावल करकै, अजीव चक्कर में डार देत ती। उनकी बेई यादें, आज तक उनै आउती और चाँये न चाँये, कउँ न कउँ उनकी जिकिर कछू लिखवे, वे बैठे, वे जैसे उनके सामने आ बैठतती। पतरी दूबरी, गोरी चिट्टी हमेशा कानन में सोने की झुमकीयाँ और गरे में कुलदेवी की तबिजियाँ डारे साधारण धोती में केवल मौं दिखावे वारी अम्मा यानि कै श्रीमती मिथलेश पत्नि भगवानदास, डिप्टी साब, घोड़ा पै बैठके गाँवन गाँवन दौरा करवे बारे। एक बेरें उनकी लिखी एक चिट्टी सबसे छोटे हरीशा के हाते लग गई ती। डाक्टर भाई साब यानी कि लुगाइयन जैसे सीना वारे कसरती शरीर वारे करन दीवान रमेश भाई साव, के पास जब वे मुरैना हती, तब उनने दतिया दादाय लिखी ती, 'प्रिय प्राणनाथ.. इहाँ सब ठीक है। भैया अस्पताल जा रओ टैम पै। दारू केबल सुवै, शाम लेत... पर तुमाई चिन्ता खाँय रत। जाने टैम पै कछू खावे मिलत कै नई। खुरमा बना के रखियाय ते। खतम हो गये हूँ और बनवा लियो बाई सें। कामवारी से कैदियो के हम धोती दें आंके इनाम में।...

पर छोटो भइया हरीश केवल प्रिय प्राणनाथ शब्द पै जोर दैके ठिलठिलात भऔ हम सबके सामन्ने अम्माय चिढ़ाउत ती और वे... उसे पछियातीं अरे नासमिटे कोऊ की चिट्ठी पढ़ी जात? बहू आ जान दे तब पता चल है...., आँखे भर सी आई हैं। लग रऔ जैसे कें.. पर मूल सवाल जां कौ तो न ठाड़ौ रै जाय यादन में जासे..

'अरे काँ कछू ऐसी लिखी कै लेखकन में नांव हो जातौ। बौ तौ बस जब कभऊँ...' हमने सुनी ती सरसुती की किरपा जौन पै होत बोइ लिख पढ़ पाउत। तौ जौ किरपा कौ फल मानें कै..

अम्मा अपढ़ प्राय है। केवल रामान पढ़बे और टूटी फूटी बुन्देली में चिट्ठी लिखवे तक सीमित ज्ञान वारी हती। लेकिन उनके सवाल रचनाओ, रचनाकार की जमीन तक जाने बाले पाकैं, मैं हक्की बक्की सी कई बेर उनै देखत रत ती। जानत ती कै हमने उनके सवाल टारे तौ अगली बेर दतिया आने पै वे घूँम फिर कै फिर बई आजें। जासें थोड़ी देर तक सोच कैं, चालीस साल से जा लिखा पढ़ी के गर्भ में जाने के लानै, हम थोड़े, अतीत से अब तक की लेखन यात्रा पर विचार में डूब गये।

अम्मा तौ अब तुमऊ पास बैठी। अरई बाद में बनाइयो। तुम ऐसे सवाल करती हौ जैसे टेलीविजन वारे करत हम से। जानती हौ जौन बतावें हमाई हो रइ वे लिखा पढ़ी वारिन की बोली में का क्वाउत?

का?

इन्टरव्यू।

अम्मा लिखवे के लाने हमने कभउँ नई सोची ती। लेकिन कछू बातें ऐंसी होती कैं उनें बिना सब तक पौचाये बिना, एक अकबकी सी मन में बनी यई रत। तब आदमी कलम उठा लेत। शुरू में कच्चो पक्की लिखत। फिर करत करत अभ्यास के जड़मतउ सुजान हो जात।

भैया दादा तुमाई दोऊ प्रकार की लिखी कहानियां और कवितायें ल्याकै हमै चश्मा सहित पढ़वै रख देत। कभउँ-कभउँ कविता तौ हम पढ़ लेत। लेकिन बड़ी कहानियां पढ़त-पढ़त थक जात। सो... तुम बताओ दोऊअन में का अन्तर रत।

'एक कविता में सैकड़ों कहानियाँ होती अम्मा। हम लोगों की भाषा में कविता, कहानियों की शीर्षक समझ लो।' 'तुमने पैले कविता लिखवी शुरू करी तो कहानियाँ। औरकाय पै। भैया एक बात और हमारी समझ सैं तो हर कहानियाँ, कविता तबई पैदा होत जब कोऊ प्रेम में... का तैने लिखवी ऐसीयई कछू बात से शुरू करी?'

माँ औ बेटा! इन्टरव्यू लै रई माँ औ उत्तर दे रओ बेटा। तुम पढ़वे वारे जे बाते सोची तो यार। मजा तौ आयेगीई। लेकिन लेखक/कवि यानी कि मेरी स्थिति। हम कछू देर तक किंकर्तव्यविमूढ़ से। का कँय? तुमई ने बुनी, बुनियाद और तुमई पूंछ रई कै...

याद है तुमै। तुमने दादा के कैवे वे छाती पै मूंढ़ धर कै कई ती बेटा घरै आई लक्ष्मी नई ठुकराई जात। और मैं मान गऔ तो व्याव खौ। फिर याद करौ १९६५ की बात। तुमई वा सुनार की मौड़ी से हमाव व्याव करवे बाकी मताई से मिन्नत करवे गई ती। ससुर ने रुपैयन के जोर से वा मौड़ी खौ विवआ दऔ तो अन्त। याद करौ

कै जौन दिना व्याव हती वा मोड़ी को, ठीक सामने के मकान में, हम चले गए ते मन्दसोर ए.पी.पी. की नौकरी ज्वाइन करवे।

हम जानत ते कै जोई बात हूयै, वे रोन लगी ती। तबई तौ मुकेश के गाना ऐसे गाऊत कै... हमई हैं तोरे दोषवार। पर बेटा हममें तब उतैकई अकल हती। हम समझे ते कै. बिना पसंद की लुगाई के आदमी कैसे जियत हूयै हम सब समझ सकत। तब...

लेओ अब खुदई बात शुरू करकै खुदई.... तुलसीदास के साथ तो किसी मां बाप ने ऐसा नहीं किया था न? यह सब तौ जीवन कौ क्रम है। तुमने कछू बुरऔ नई करी तो। आज सोचत तौ लगत सब ठीकई भऔ। वरना... वा सबनें बई उमर में भीतर एक आग सी भर दई ती। बई से तुमाओ मोंड़ा आज यहां तक पौंचो।

'सबसे पैले का लिखौ तो?'

'एक असफल प्रेम, आदिवासी युगल कथा। यह छपी तो प्रोत्साहन मिलौ। जीवनानुभव ने हर गलत बात के प्रति विद्रोह करने की ताकर भर दई ती, न्यायालयीन मामलन में न्यायधीश की कुर्सी पर बैठकर कानून से बंधे हाथन सें जब न्याय नई हो पाउत तो लिखत। धर्मयुग, कादम्बनी, सारिका ने उन्हें निरन्तर छापा। तब बिना कोई बड़ी डिग्री के भाषा खुद तनती चली गई। कबीर कौन से पढ़े लिखे ते। ईसुरी ने कौन सी डिग्रियाँ ली थी अम्मा। अकल आई तो पद के साथ शक्ल सूरत भी बदल गई।'

'तुमाई सबसें अच्छी कविता?'

'गीत बीते हुये गुजरे पल, कितना तड़पाते हैं, जाने वे पल क्षण, लौट कहाँ पाते हैं?'

कई गीत हैं -

'बुन्देली में?'

'भौजी तनक सम्हर कै रईयो
होरी पै जिन निकरियो.... या
अमियन में बौर परे, फूले करौंदा हरे
सखी री वे ऐसे में जाने का डरे।।'

और कई रचनायें। तुमई ने कई ती बुन्देली, मातृभाषा की सेवा की। इसीलिए इस भाषा में जो साहित्य नहीं है, उसकी आपूर्ति की कोशिश करूँगा। तुमाओ आशीर्वाद चइये। रिटायर होने के बाद जोई काम करनै जो समझ लों।

- ६८, विनय नगर-१, ग्वालियर (म.प्र.)

पानी की किल्लत

- दीनदयाल तिवारी 'बेताल'

दिन पै दिन कम हो रऔ पानी, करत न कोउ ग्यासौ।
मोरी बात पानी में डारी, तौ राने परै प्यासौ।।
पैलउँ जल जैसी बरसत तौ, ऊसौ अब नईं बरसत।
कितउँ कितउँ की जनता अब, बूँद बूँद खौं तरसत।।
मूड़ाफोरी होन लगी अब, हो रऔ झगड़ा झाँसौ।
मोरी बात पानी में.....।।

कुआँ बाबरी सबइ सूक गए, सूके ताल तलैयाँ।
नदियाँ नारे परे हैं सूके, खोदें पानी नइयाँ।।
रतजगा हो रऔ पानी में, देखत मान्स तमासौ।
मोरी बात पानी में.....।।

बिरथा ना बगराओ पानी, बड़े जतन सें भरियौ।
बूँद बूँद सें भरियौ गगरी, जल कौ मान समझियौ।।
तनक चूक गए बात न मानी, तौ मूड़ पिराने खासौ।
मोरी बात पानी में.....।।

काए से बनत महल अटाली, काए से फसलें सींसत।
बैला गइयाँ भैंस चरेउ, सब पानी खौं हींसत।।
अबइ से चेत जाव रे भइया, 'बेताल' बोल रऔ साँसौ।
मोरी बात पानी में.....।।

- सिद्धबाबा कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

उन्नें हऔ न करी...

- डॉ. एल.आर. सोनी 'सीकर'

उन्नें हऔ नाँ करी, उन्नें हऔ नाँ करी।
घर आबे के लानें, कोंनउँ बात नाँ करी।।

फोनउँ पै तौ दस दैयाँ तक वे बतियाते हैं।
मीठी-मीठी बातन सें जियरा भरमाते हैं।
एकउ खुशी नाँ परी, एकउ खुशी नाँ परी।
घर आबे के लानें, कोंनउँ बात नाँ करी।।

फागुन में तो शिवरात्रि पै दर्शन पाये हैं।
होरी निकरी पर गये झूला सावन आये हैं।
नेंकउँ याद नाँ करी, नेंकउँ याद नाँ करी।
घर आबे के लानें, कोंनउँ बात नाँ करी।।

ऐसी नौकरिया कों बोलो का कर देबें हम।
जानें कौनउँ सर-सबाद नईं चायें मिट जायें हम।
हम पै का का नाँ परी, हम पै का-का नाँ परी।
घर आबे के लानें, कोंनउँ बात नाँ करी।।

'सीकर' जा साँची-साँची सी बात कर रये हैं।
हमकों तौ लागत है सौतन चक्कर पर रये हैं।
मैं तौ जीते जी मरी, मैं तौ जीते जी मरी।
घर आबे के लानें, कोंनउँ बात नाँ करी।।

- न्यू दतिया पब्लिक स्कूल, ठंडी सड़क, दतिया (म.प्र.)

फैशन के सिरमौर : बुन्देली उन्ना-लत्ता

- जगदीश किंजल्क

भूषाचार का युग कभी समाप्त नहीं होता। पाषाण युग के परिधान भी तत्कालीन भूषाचार के प्रतीक रहे हैं। आज के युग में 'फैन्सी ड्रेसिस' के प्रति जो उन्माद है, यही उन्माद प्राचीन बुन्देलखण्ड में, तत्कालीन परिधानों अर्थात् 'उन्ना-लत्तो' के प्रति रहा है। बुंदेलखंड, मध्यप्रदेश का ऐतिहासिक महत्व का एक लम्बा चौड़ा भूभाग है, जिसकी सीमा इस दोहे में वर्णित है -

'इत जमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टौंस,
छत्रसाल से लरन की, रही न काहू हौंस।'

बुंदेलखण्ड का इतिहास शौर्य, पराक्रम और अनहोनियों से भरा पड़ा है। यहाँ जितनी विभूतियों, राजा-महाराजाओं, कवि लेखकों ने जन्म लिया, शायद ही किसी अन्य भूभाग में पैदा हुये हों। 'परिधान' के लिए बुन्देली में 'पहनाव' या 'पोसाक' शब्द प्रचलित है। गाँवों के लोग बुन्देली परिधानों को 'उन्ना-लत्ता' कहते हैं। आज भी यह सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय शब्द है। लोकप्रिय शब्द मात्र नहीं, इसमें परिधानों, वस्त्रों के उद्गम का इतिहास छुपा हुआ है। परिधानों की एक लम्बी परम्परा सन्निहित है। 'उन्ना' शब्द बुंदेली का है। 'उड़ौना' शब्द इसका समानार्थी है। इसी प्रकार 'बिछौना' वस्त्र का समानार्थी शब्द है। गहराई से दृष्टिपात करें तो 'ऊर्णा', 'लत्ता' अपभ्रंश बुंदेली के ऐतिहासिक शब्द हैं। 'ऊन' या 'उड़ौना' का भाव प्रकट करने वाले ये शब्द प्राचीन मानव के शरीर को शीत और ताप से बचने के लिए प्रयोग की गई छालों, लताओं और पत्तों की ओर इंगित करते हैं। कालान्तर में मानव ने 'ऊन' और अंत में 'कपास' का उपयोग करना सीखा।

'कपास' के संदर्भ में एक दंत कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि इन्द्रलोक में राजा इन्द्र का एक नंदन वन था। उसमें कल्पतरु वृक्ष था। कपास उस कल्पतरु से उत्पन्न हुआ। यही कपास कालान्तर में मानव शरीर को ढकने का सबसे महत्वपूर्ण साधन बना। बुन्देली बोली में 'कपास' को 'वन' भी कहते हैं। कहा जाता है कि बाद में 'बरार' (म.प्र.) क्षेत्र में बड़े पैमाने पर कपास की खेती की गई। परिधानों का इतिहास बड़ा रोचक है। चीन और जापान में भी परिधानों की उत्पत्ति के सन्दर्भ में आज भी अनेक लोक कथायें कही जाती हैं।

'वपुषि + त्रायते = वस्त्र'

वस्त्र के अन्तर्गत के परिधान आते हैं जिनसे मानव शरीर की रक्षा, शीत और उष्णता से होती है। 'परिधान = परिवेष्ठने'। परिवेष्ठने से शरीर रक्षा के साथ ही साथ सौन्दर्य और शील आदि गुणों का बोध होता है। इस प्रकार वस्त्र और परिधान शब्द के आधार पर इसके उक्त दो प्रकार हुए। परिधानों का उपयोग जानने के बाद मानव मन में 'रंग-बोध' की अकुलाहट हुई, क्योंकि शरीर, सुरक्षा, सौन्दर्य और शील आदि गुणों का बोध, अब तक मानव को हो चुका था। स्वाभाविक है उसके मन में रंगों की परिकल्पना जागृत हुई। बुंदेली साहित्य में यह परिकल्पना, स्त्री के अंग-प्रत्यंगों से उद्भूत मानी जाती है। प्राचीन लोकगीतों में इसके प्रमाण मिलते हैं। यथा -

'कारी पाग सिर बाँधो मोरे बनरे, कारे हैं बनरी के केस, बना जू।
लाग पाग सिर बाँधों मोरे बनरे, लाली भारी बाकी मांग, बना जू।
पीरी पाग सिर बाँधो मोरे बनरे, सोने की बनरी की देह बना जू।'

जिस प्रकार समयान्तर में परिधानों में रंगों का प्रवेश हुआ, और परिधान रंग बिरंगे हो गये। ये रंग ऐसे खिले, ऐसे खिले कि वस्त्रों में क्रान्तिकारी आधुनिकता आती गई। विज्ञान ने कपड़ों के संसार को ही बदल कर रख दिया। कपास, सूत, रेशम, नायलान, सिफॉन, टेरीकाट की यह प्रगतिशील यात्रा आज भी जारी है। कहाँ तक जायेगी कोई नहीं जानता।

बुंदेली लोक जीवन में परिधानों के आधार स्तम्भ तीन माने जाते हैं। बालक-बालिकायें, महिलाएँ और पुरुष। बालक, बालिकाओं के परिधानों में प्रमुख हैं -

रक्कास का झमला (झवला) - बुन्देलखण्ड में यह वस्त्र छोटे बच्चों को पहनाया जाता है। यह काले रंग के कपड़े का सिला हुआ ढीला ढाला वस्त्र होता है। रक्कस एक देवी है। बच्चों को यह झवला रक्कस देवी की पूजा करने के बाद पहनाया जाता है। यह 'नजरबट्टू' के प्रतीक स्वरूप पहनाया जाता है। बुंदेलखण्ड में यह मान्यता है कि इस झवला को पहनाने से शिशुओं को नज़र नहीं लगती। यह वस्त्र शिशुओं को रोगों से दूर रखता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी काले कपड़े में उष्णता को आत्मसात करने का गुण होता है।

अँगौछा-अगौछी - अंगौछा-अगौछी, बालक-बालिका, दोनों के परिधान हैं। बालकों को 'कच्छ' पहना कर कमर में फेंटा बाँध दिया जाता है। 'फेंटा' के स्थान पर लड़कियों को 'कँधेला' बाँधा जाता है। इन परिधानों में बालक बालिकाएँ खिल उठते हैं।

घँघरी-फरिया - घँघरी-फरिया, बालिकाओं का परिधान है। घंघरी पेटीकोट जैसी ही होती है। फरिया छोटा दुपट्टा ही है। घंघरी-फरिया का रोचक वर्णन लोककवि ईसुरी द्वारा रचित एक बुंदेली रचना में देखने को मिलता है-

'कटि तट सोहे अरुन घघरिया, कंचन हरीरी फरिया।
फरफरात फरिया में बिन्नू लगतीं पवन पुतरिया।
सिर सपेलुआ कैसो सोहे, गूंथी चुटिया करिया।
ईसुर के मन आजा आजा, रजउ पूर रईं पुरिया।'

अब पुरुषों के परिधानों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। पुरुषों के परिधान उनके कार्यों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के होते हैं। श्रम जीवियों और कृषकों के परिधान चुस्त होते हैं। उन्हें रात दिन मेहनत मजदूरी करना पड़ती है। इस कारण वे चुस्त कपड़े पहनना पसन्द करते हैं। मेहनतकस लोगों के वस्त्रों के नाम हैं जांघिया (यह जांघों तक पहनने वाला वस्त्र है), फर्रा-लंगोटा (ये मुख्यरूप से कसरती, पहलवानों के वस्त्र है) पंचा (यह घुटनों तक पहनने वाला वस्त्र है) और परधनी (यह घुटनों के नीचे तक पहनने वाली धोती है।) इसके अलावा पुरुष, अल्फी, अल्फा, बंडी और फतुई पहनते हैं। नौकरी पेशा और पढ़े-लिखे लोग, ढीले-ढाले कपड़े पहनते हैं। औसर काजों पर, रंग बिरंगे रेशमी कपड़े पहनने की परम्परा है। दूल्हा को प्रायः केशरिया बागो-जामा और पनरखा पहनाया जाता है। दुल्हनों को सोगी और सुहाग-सारी से सजाया जाता है।

नौकरी पेशा, बुद्धिजीवी और सम्पन्न लोगों के वस्त्रों के नाम हैं - जामा-खुसनिया, कुर्त्ता (कलीदार और सादा) और मिरजई। मिरजई बुन्देली शब्द नहीं है। दरअसल यह अरबी शब्द है। 'मीर' से बना है। मीर से आशय है - मीर-अमीरों, दरबारियों की पोशाक। बुंदेलखण्ड में प्रारंम्भ से ही साफा बाँधने की परम्परा रही है। साफा भी कई प्रकार से बांधे जाते हैं। जैसे दतिया साफा, टीकमगढ़ी साफा और कोहनिया साही साफा। ये अत्यन्त लोकप्रिय और प्रसिद्ध हैं। इनके पहनने का तरीका भी विशेष है। ये बायीं ओर कानों पर झुके हुए पहने जाते हैं। किसान भाई जो साफा पहनते हैं, वे सीधे सीधे बांधे जाते हैं।

महिलाओं के परिधान - बुंदेली महिलाओं और उनके आकर्षक परिधानों की बात ही निराली है। ये परिधान महिलाओं के रूप रंग को द्विगुणित कर देते हैं। सर्वाधिक लोकप्रिय परिधान हैं - साड़ी, घाघरो, लुंगरो और चुनरिया। इसके अतिरिक्त चोली, अँगिया और फूल जड़ित पिछौरा। इन परिधानों में सजी धजी बुंदेली स्त्रियाँ सभी के आकर्षण का केन्द्र होती हैं। लोककवि ईसुरी ने अपनी एक रचना में कितना सुन्दर वर्णन किया है। देखिए -

'सोहे कंचन तन पै सारी, अरुनई जरी किनारी,
चोली हरी सभारी अँगिया, जैसे पजी उनारी।
तारन टंको पिछौरा नीली, लागत दिपत दिवारी,
ईसुर कहत रजउ बन्नक खों, बरनत है मतहारी।'

लोककवि ईसुरी की दृष्टि नारी सौन्दर्य को परखने और उनकी कलम उसे कागज पर उतारने में अपनी सानी नहीं रखती। ईसुरी की प्रेयसी 'रजउ' में उन्हें जो सौन्दर्य दिखाई पड़ता था, वह सारे संसार में नहीं दिखा। घांघरे और लुंगरे में सजी उनकी रजऊ उन्हें कैसी लगती थी, देखिये एक वर्णन....

'कटि तक कीय खाप कौ घँघरौ, तीपै पियरो लुंगरो,
जैसे धरती पै दयं होवें, चन्द्रकलायें पहरो।
आधे घूँघट में मुख चन्दा, लगत दोज सो बिहरो,
ईसुर रजउ सतरंगी चूनर, इन्द्र धनुष सो सिंगारो।'

बुन्देली परिधानों की विशेषताएँ - यह सर्वमान्य तथ्य है कि भूगोलिक स्थितियों का परिधानों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जहाँ ठण्ड और गर्मी अधिक पड़ती है, वहाँ के परिधान उन मौसमों के अनुकूल सिले जाते हैं। बुंदेलखण्ड ऊँची नीची पहाड़ियों और घाटियों का क्षेत्र है। इस भूभाग का मुख्य व्यवसाय खेती किसानी है। इस कारण यहाँ के अधिकांश लोग प्रायः चुंस्त कपड़े पहनते हैं। यहाँ श्रमिक महिलाएँ भी कछौटा लगाती हैं। कछौटा लगाने को 'लाँघ बाँधना' भी कहा जाता है। कछौटा लगाने वाली स्त्रियाँ चुस्त, दुरुस्त, बहादुर और छबीली लगती हैं। यहाँ के परिधानों का आकर्षण कुछ ऐसा है कि यहाँ के पुरुष और नारियाँ पृथक ही दिखाई पड़ते हैं। सामान्यतः जन जीवन साधारण धोती कुर्ता पर ही आधारित है। ग्रामीण क्षेत्रों के मड़ई (लोग) वण्डी पहन कर ही अपनी जीविका चलाते हैं।

शरीर पर धारण करने वाले परिधानों, वस्त्रों के अलावा कुछ ओढ़ने-बिछाने वाले परिधान भी हैं, जो बुन्देलखण्ड की पृथकता और पहचान दर्शाते हैं। ओढ़ने-बिछाने वाले परिधानों के प्रमुख हैं - दरी, गलीचा, रजाई, जाजिम, खेस, पल्ली, खोर (रब्बार) और गेड़ुवा आदि। इनमें से कुछ वस्त्र तो पूरे देश में इन्हीं नामों से जाने जाते हैं। बुन्देलखण्ड की अपनी पहचान बताने वाला परिधान है 'खेस'। यह एक दुबट सूत या ऊन का कपड़ा होता है। पाला अथवा रुई से भरा साधारण दोहरा कपड़ा होता है, जिसे पल्ली कहते हैं। इसे 'दोहर' भी कहा जाता है। 'रव्वार' ज्यादार रठौय (राठ) क्षेत्र में प्रचलित परिधान है। इसे खोर भी कहा जाता है। यह खोल या खाली रजाई का ही रूप है। जाजिम, एक लम्बा फर्शी परिधान है। इसे जेजिम भी कहा जाता है। गेड़ुवा एक प्रकार का तकिया ही है। इसके बड़े आकार को 'लोड' भी कहा जाता है। मसनद भी कहा जाता है। 'झूमरे' या 'घूमरे' वस्त्रों को बेड़ियों के परिधान कहे जाते हैं। ये तड़क-भड़क से भरपूर होते हैं। साधू संतों की पोषाक को यहां 'अलखार' कहते हैं। 'अलखार' नाम संभवतः अलख जगाने वाले जोगियों के नाम से पड़ा होगा।

बुन्देलखण्ड के शीर्ष ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं चित्रकार स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य का एक अमूल्य कला ग्रंथ है, 'बुन्देलखण्ड चित्रावली'। इसमें दूसरी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक जितने भी राजा महाराजा, महापुरुष, कवि और लेखक पैदा हुए हैं, दिव्य जी ने उन सभी के चित्र बनाये हैं और उनका इतिहास लिखा है। राजा चंद्रश्री से लेकर ईसुरी तक, एक सौ एक चित्र हैं। दिव्य जी ने इन विभूतियों के भी परिधान पहनाये हैं, उनमें बुंदेली परिधान परम्परा का स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है। यह कृति, एक ओर, ऐतिहासिक महत्व का जीवन्त दस्तावेज है तो दूसरी ओर 'उन्ना-लत्ता' परम्परा की भी।

- १४५/ए, साईनाथ सेक्टर-सी, महावली नगर,
कोलार, भोपाल (म.प्र.)

महात्मा

- डॉ. परशुराम विरही

(संगीत की मंदी धुनें)

सूत्रधार - सुनों, सुनों दो वाचक आय।
तुमें सुनावे खाँ कछू ल्याय।
इनसे कछू ऐसों सुन लो -
सुनकें अपनें मन में गुन लो।
पैले वाचक,
पैले आवै।
कछू पते की -
बात सुनावै।

(मधुर संगीत की कौनउ धीरी धीरी धुनें..)

पैलो वाचक -सूत्रकार जू धन्यकार।
मौका दव है बड़ी दार।
जनम भूम खाँ प्यार करैं,
देस-दसा की बात करें।
बड़ी समस्यन में है देस,
कछू कछू हैं बरहमेस।
सुलजावे में सबई लगे,
कोउ सूके हैं कोउ रँगे।
कौन बात की सिरी किते?
ढूँड़त फिरवें इतै-उतै।
बड़ी विबूचन में सब लोग,
औषध दम सें नड़ गय रोग।
जनता सबरी परेसान है,
बैरे सबके भए कान हैं।
सब निरास हैं और पस्त हैं,
दुखी जनन में कछू मस्त हैं।
जो करतार करैं सो होवै,
ओड़ पिछौरा गैरे सोवै।

(निरासा-सोक संगीत... भौंत धीरें धीरें बजवै)

सूत्रधार - वाचक एक की बात सई।
लाग लपेट के बिना कई।
कोउ सुनैया ऐसौ होय
विचार करै अरु आपा खोय।
बड़ौ तर्किया बात घुमावै।
कौनउ नौनी राय बताबै।
जी सै सबकौ होय भलौ।
सब मिल जुल बा गैल चलौ।
गैलारन में होंय न चोर।
नातर सबकौ होबै भोर।
अपनी फिक्र करौ फिर सबकी।
जे बातें हैं नौने दिन की।
सबकी फिकर करौ फिर अपनी।
मानी गई जा उत्तम करनी।
काम करे सें मिटै निरासा।
सई सोच सें पनपै आसा।
घर में घुसे घुसे का होत।
कढ़ी बायरै लै कै जोत।
दूजे बाचक जू तुम आओ।
दोइ जनें नौने बतराओ।

(तबला, ढोलक, बासुरी, झाँझ, इकतारा की ६ तीमों धीमों संगीत...)

दूजौ वाचक -भीतरै बैठे हो तुम
द्वारे पै दँय तारौ।
देखकै लौट तौ जैहै,
हर मिलवे बारौ।
तुमई नई समझ सकत,
बायरे की दुनिया।
दरबाजो खोल देव
बजन दो झुनझुनिया।
आँखें तुम मूँद लो -
तौ का हुइयै द्रस्य कौ।
बीते खाँ जी रय हौ,
डर है तुमै भविस्य कौ।
ऊजरौ छिन वर्तमान कौ-
बना लव कारौ।
भीतरै बैठे हो तुम
द्वारे पै दँय तारौ।
सूरज लिखन चाउत-
माथे पै उजियारौ।
काय खाँ ओढ़ें फिरत
मनगड़ंत अँधियारौ।
काय बना रय जिन्दगी-
घनौ मकरजानौ।
भीतरै बैठे हो तुम,
द्वारे पै दँय तारौ।

पैलो वाचक -कछू फरक नईं परनै
भीतर सें बायरें आवे में।
उरझत जानै बात सबई
समस्यन खाँ टारबे में।
चौराये के हल्ला में सें -
कौनउ बात बनत नइँयाँ।
सब अपनी अपनी कत रत,
कोउ न सुनै काउ की भइया।

दूजौ वाचक -बायरें आकें -
आसमान के तारे देखो।
अँधियारे सें लड़बे वारे उजारे देखो।
कारे चस्मा सें दिखात
सब कारौ-कारौ।
उबर पावत नईं
मनगडंत निरासा बारौ।
सुनो सुनों कितउ दूर
मिल जुल कै गा रय किसान।
हवा में अपनी खुसी के-
फैरा रय सुर-निसान।

(पर्दा के पछाई सें ढोल-मँजीरे के संगीत में गावे वारन के बोल सुनात-दोई बाचक सुनत। दूजौ बाचक अपनी बात, जौ लौ गानौ चलत तौ लौ, रोक देत)

आओ, आओ, आओ रे,
ढोल मजीरे लाओ रे,
गाओ रे, कछू गाओ रे
सुभ दिन आज मनाओ रे।
दिन लगत सोनै सौ-
आज की नई सान है।

जो मजूर हते, ते
अब आजाद किसान हैं।
सोये खेत जगाओ रे।
गाओ रे कछू गाओ रे।
आसा की लहराय,
उनारी खेतन में।
बालें कड़ आईं-
लमछारी खेतन में।
दरिद्दर दूर भगाओ रे।
गाओ रे कछू गाओ रे।

(हवा तेज होकै अपनौ रुख बदल देत और गाना नईं सुनात, दूजो वाचक फिर बोलन लगत)

दूजौ वाचक -मस्ती कौ जौ गाना सुनौ तुमने।
सुनकै कछू मानौ-गुनौ तुमने।
दुनिया में रहवौ सोउ जानौ।
पतझर-बसंत की जोरी मानौ।
जैसौ आज, काल नईं हुइये।
दिन जैसे हैं साल ना हुइये।

(रोसनी मंदी हो जात, फिर तेज होत और पैलो वाचक बोलन लगत..)

पैलो वाचक -तुमने कई जा नौनी बात-
समय की धारा बड़त जात।
कभउँ दिखात है बड़ी सांत,
करत कभउँ भौतइ उत्पात।
धारा एक सँदेसौ देतइ।
महापुरुष तुरतइ गै लेतइ।
समय-सँदेसो पड़बे बारे,
दुनिया भर में सबके प्यारे,
कीरत औ बड़प्पन पावै,
कौनउ उलझन हो सुलझावै।

दूजौ वाचक -देखो है, देखो है,
देखो है, देखो है,
एक महापुरुष खाँ-
हम सबने देखो है।
खूबई बतियात हतौ-
धारा सै समय की।
बैठे बैठे जेल में,
शुरुआत मुहीम की।
मोड़ दई ती जी नें-
समय की तेज धारा।
सल्तनत खाँ गोरन की-
झटका दव करारा।
बारूद के धुआँ सें-
पूरौ जुग परेशान।
तन कौ चुसे रकत सब-
ठठरी बनें इंसान।
बीमारी, भुकमरी-
सबई तरा के कलेस।
क्वाउन लगे नंगे-
गरीबन कौ जौ देस।
धरम, जात, संप्रदाय-
में बाँटबे की,
कोसिस करी गोरन ने
स्वराज टारबे की।
चल नईं पाई चाल,
कौनउ होय गोरन की।
एकता राखै लाज-
गांधी के बोलन की।

(संख, झालर, घंटा आदि की मिली-जुली धीरी-धीरी क्षणिक धुनें होतीं। दूजौ वाचक फिर बोलत)

दूजौ वाचक -पुरुष अपड़ तौ नारी-
कैसे पड़ पावती।
विकास-दौर में नारी-
कैसे बड़ पावती।
नईं चली पुरानी लीक,
नए जमानें में।
शिक्षा फैली सब जागाँ,
गाँव सहरयाने में।
सब धर्मन में समभाव,
का भई जौ अनेक हैं।
पूजा में अजूबा है -
ईसुर तौ एक है।
व्यक्ति-तंबू गाड़ौ जिन-
समाज के आँगन में।
विवादी सुर छेड़ौं जिन-
प्रेम के रागन में
संस्कृति निपट पुरानी,
ई की होवै आदर।
दुनिया भरनै आकै-
हमसें सीके आखर।
आश्रम में गांधी के
किसम क़िसम के लोग।
सीकत ते प्रार्थना -
सेव, निस्काम योग।
सबके व्यवहार में -
कथनी-करनी एक।
धनी मानी लोग हों
ट्रस्टी समाज के नेक।
पत्रकार कैउ आए,
देस के, परदेस के।
मौं बाय रै गय ते -
नई समय-धार देखकें।
तुमने देखौ कभउँ
ऐसे महात्मा खाँ।
समय के नियंता खाँ,
इतिहास बिधाता खाँ।

पैली वाचक -दूर सै मैंनें दर्सन -
करे हैं एक बार।
भीर भौत हती पै
न हती कौनउ कतार।
सबसै हल्की हती मैं,
घुस गव तौ झट्ट सें।
हो गव सबसें आगे
खिरकी खुली चट्ट सें।
तीसरी दरजा में हतौ
गोल काँच कौ चस्मा।
खद्दर की झकाझक,
ओड़ै हते पिछौरिया।
महात्मा जू की जै
चिल्लानै दरसनिया।

(समापन संगीत.....................)

- देवीपुरम कॉलोनी,
शिवपुरी (म.प्र.)

बुन्देली की वाक्य रचना

- डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव

वाक्य भाषा का प्रमुख अवयव है।[1] विचारों को सार्थकता और पूर्णता के साथ व्यक्त करने के लिए सार्थक शब्दों को एक सार्थक, संप्रेषणीय सिलसिला दिया जाता है। सार्थक शब्दों का सही सुव्यवस्थित स्वरूप वाक्य कहलाता है। ''वाक्य के अंतर्गत सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि, पदक्रम समावेशित रहते हैं और वे अभिप्रेत का प्रस्तुतीकरण करते हैं।[2] वाक्य के सरल और संयुक्त दो प्रमुख प्रकार होते हैं।

बुन्देली वाक्य रचना में भी सामान्यतया कर्त्ता, कर्म तथा उसके विधेयात्मक शब्द और अंत में क्रिया आती है फिर भी बहुत से अवसरों पर शब्दों का यह क्रम शिथिल भी देखा जाता है। संज्ञा अथवा सर्वनाम के पीछे आने वाले शब्दों के परसर्ग को छोड़कर अन्य शब्द भेद भावात्मक कथनों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तित होते रहते हैं। एक निश्चित शब्दक्रम और उसकी शिथिल स्थितियों को निम्नानुसार विश्लेषित किया जा सकता है।

१. एक विशेष सामान्यतया संज्ञा अथवा सर्वनाम से पूर्व आता है। इसी प्रकार क्रिया की विशेषता बतलाने वाला शब्द क्रिया से पहले आता है। जैसे - मोड़ा रोउत है, छोटौ मोड़ा रोउत है, छोटौ मोड़ा धीरें-धीरें रोउत है, वाक्यों में कर्ता, कर्म, क्रिया, विशेषण तथा क्रियाविशेषण की स्थिति स्पष्ट हो रही है।

२. एक ही वाक्य में कभी-कभी एक ही क्रिया दो कर्मों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। ऐसे में गौणकर्म मुख्य कर्म के पहले आता है। जैसे - 'मुन्नू खों जौ कलम दै दो।'

३. यौगिक वाक्य की तुलना में साधारण वाक्यों में शब्दों का क्रम बनाए रखना आसान होता है। बोलचाल अथवा संवादात्मक बुन्देली वाक्यों में क्रिया अधिकतर कर्त्ता के पहले रखी जाती है, जैसे 'गाँव जा रऔ तौ मैं', 'भैंसें हांक रए ते वे' आदि। यह स्थिति बुन्देली के आज्ञार्थक तथा प्रश्नार्थक वाक्यों में अधिक पायी जाती है। जैसे - 'पी लो बेटा', 'खा लो प्यारे' 'सो जाऔ भइया' (आज्ञार्थक)। इसी प्रकार 'कब के आए तुम?' 'बताई काए नईं हती तुमनें?' 'इत्तौ गरम दूध कैसें पिएं लेत वे?', 'चले कैसें जाते', 'कते तौ वे?' आदि प्रश्नार्थक वाक्यों में शब्दक्रम भावात्मकता तथा संवादात्मकता के कारण परिवर्तित हुआ है।

४. सम्प्रदान कारकवाची शब्द बुन्देली वाक्य में कर्त्ता तथा मुख्यकर्म के मध्य आता है। जैसे - 'हमनें धोबी खौं उन्ना दये।' कभी-कभी सम्प्रदान वाचक शब्द कर्त्ता तथा कर्म के बाद भी आता है। जैसे - 'शीलू ने उन्ना धोबी खों दये।'

५. बुन्देली वाक्यों में करण कारक, कर्मकारक से ठीक पहले आता है। जैसे- 'दरोगा नें लाठी सें सबखों पिटवाये'। कभी-कभी कर्म कारकवाची शब्द लुप्त रहकर भी वाक्य को सार्थक बनाता है। जैसे - 'दरोगा नें लाठी सें पिटवाये।' दोनों वाक्यों में 'लाठी सें' करण कारण है तथा पहले वाक्य में 'सबखों' कर्मकारक हैं। दूसरे वाक्य में 'लाठी से पिटवाये' में ध्वनित है - 'हमें,उन्हें या 'सबखों'।

प्रायः मानक हिन्दी की भाँति ही बुन्देली वाक्यों में उद्देश्य और विधेय दो भाग होते हैं। आधे भाग में कर्त्ता तथा आधे भाग में कर्म प्रधान रहता है। बुन्देली वाक्य रचना में निम्नलिखित अवयव आते हैं - १. एक संज्ञा या एक सर्वनाम, २. दो संज्ञाएं या दो सर्वनाम, ३. विशेषण या संख्यावाचक, ४. क्रियार्थक संज्ञाएं।

बुन्देली शब्दसमूह या वाक्य कर्त्तावाचक और कर्मवाचक दो तरह से गठित होता है। कर्त्तावाचक वाक्य में कोई अन्य कारक नहीं पाया जाता। जैसे 'बौ परसौं आव है' 'व`रमाने हो गए'।

कभी-कभी उद्देश्य छोड़ दिया जाता है और केवल संदर्भ द्वारा समझा जाता है। जैसे - 'भइया अबै आए ते, 'हमनें पूछी तौ कन लगे...'। 'का बौ आउत है?', 'हाँ आउत है'। 'निजता बोधक वाक्यों में कर्त्ता की ध्वनि क्रिया में मिलती है। जैसे - राजा हों, अर्थात मैं राजा हूँ।

आज्ञार्थक वाक्यों में तें, तुम, आप, कभी-कभी अनिभिव्यक्त ही रह जाते हैं - जैसे - आव खाव, चले जाव, सो जाव, और चइए कछू। लोकोक्तियों तथा विस्मयादिबोधकों में ध्वनि को प्रभावकारी बनाने के लिए कर्त्ता को छोड़कर वाक्य को छोटा कर दिया जाता है। जैसे - 'अरे! हो गऔ, साबास। बड़े जल्दी आ गए'।

बुन्देली वाक्यों में विधेयात्मकता क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण अथवा संज्ञा की भांति व्यवहृत किसी शब्द समूह के रूप में हो सकती है। कुछ वाक्यों की रचना विशिष्ट होती है जिनमें क्रिया एक जगह प्रयुक्त होकर दुहरा भाव बोध कराती है। जैसे - 'पैलां हम बजारै गए फिर घरै' इस वाक्य में (पहले हम बाजार गए फिर घर) 'गए' क्रिया का प्रयोग एक ही बार हुआ है। 'बाजारै गए' के साथ 'फिर घरै' जोड़कर बोलने में 'गए' क्रिया दोनों ओर अर्थ देती है।

एक से अधिक कर्ता वाले वाक्य में क्रिया सामान्यतया निकटतम कर्ता द्वारा नियंत्रित होती है। जैसे 'मौड़ा और मोड़ी खेल रई तीं उतै', अर्थात लड़के और लड़कियां उधर खेल रहीं थीं वाक्य में क्रिया के आसन्नकर्ता मौड़ी (लड़कियाँ) हैं, अतएव क्रिया 'खेल रई' (खेल रहीं) प्रयुक्त हुई। इस प्रकार के वाक्यों में क्रिया पुल्लिंग बहुवचन में भी प्रयुक्त होती हैं। जैसे 'मोड़ा-मोड़ी' खेलत हैं।'

बुन्देली के एक वाक्य में जब एक से अधिक कर्ता भिन्न-भिन्न

पुरुषों में व्यवहृत होता है तो क्रिया सामान्यतः पुल्लिंग बहुवचन में आती है। जैसे - 'मैं तुम और बौ गरीब हैं, अर्थात् 'मैं तुम और वह गरीब हैं।'

यौगिक वाक्य रचना में दो स्वतंत्र वाक्य एक यौगिक द्वारा जुड़े रहते हैं। जैसे - 'बानियां नै तौलौ तौऊ हमाऔ मन नइं भरौ'। ऊ नें बात कही फिर चलौ गऔ'। इन वाक्यों में 'तौऊ' तथा 'फिर' संयोजकों से जुड़े हुए वाक्य यौगिक हैं। बुन्देली योजक और विभाजक बहुत छोटे और सरस होते हैं। चांय' 'अकेलें' आदि विभाजकों के प्रयोग से कटाक्षपूर्ण और निर्णयात्मक यौगिक बनते हैं। जैसे - 'चांय तुम चले आव चांय तुमाये भइया', चांय राजा होवें चांय रानी हमें का लेंने देंने।' हमनें भौत कई अकेलें वे नइं मानें, आदि। इसी प्रकार प्रयोजनमूलक बुन्देली वाक्य 'कि', कारन, जीसें आदि यौगिकों से जुड़े रहते हैं। जैसे - 'हमनें तौ कइती जीसें आपखों हैरान होनें परै।

आश्रित यौगिक वाक्यों में उपवाक्यों को जोड़ने और उनके सम्बन्ध का संकेत करने के लिए दो पुरुषों का प्रयोग का प्रयोग किया जाता है। इनमें से एक सम्बंधवाची सर्वनाम और दूसरा सह सम्बंध ावाची होता है। 'तौ', 'तौऊ', चांय, आदि सम्बंधवाची इनवाक्यों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे - 'पानी थमै तौ ढोर बाहर निकरें', 'तुम चांय बोलौ चांय न बोलौ मैं अब नइं रत।

विशेषण उपवाक्यों की बुन्देली रचना बहुत आकर्षक होती है। जैसे 'जी रथ पै राम हते ओई पै सीता हतीं', जित्ते रुपइया हमाए पास हते उत्ते हमनें दै दये' आदि।

बुन्देली वाक्यों में प्रयुक्त द्विरुक्तियाँ या पुनरावृत्तीय कथन भाषा के स्तर पर वाक्य को सबलता प्रदान करते हैं। यह पुनरावृत्ति निरंतरता और विचार तीव्रता को द्योतित करती है। संस्कृत में 'यदा-कदा', 'पीत्वा-पीत्वा', मानक हिन्दी में 'जब-जब', 'देश-देश' आदि की भांति ही बुन्देली वाक्यों में भी द्विरुक्तियों का सहज प्रयोग पाया जाता है जैसे - 'उतै जा-जा कें थक गऔ मैं, 'खा-खा कें सो गए सब जनें', 'हजार-हजार आदमी आउत तें मेला में', 'लाख-लाख समजाऔ अकलें बौ नइं मानों आदि। इसी प्रकार जीखों-जीखों, जाकों-जाकों, हांतन-हांतन, गोल-गोल, लाल-लाल, आंखिन-आंखिन में, घर-घर, गांव-गांव जैसे प्रयोगों की बहुलता कथन को प्रभावपूर्ण बनाती है। प्रश्नवाचक वाक्यों में भी 'कां-कां, को-को, कैसो-कैसो, कित्ते-कित्ते, कैंसें-कैंसें, की कौ-की कौ, जैसे पुनरावृत्तीय या द्विरुक्ति प्रयोग होते हैं। जैसे 'को-को गओ तौ', 'कां-कां हो आए', 'कितै-कितै नइं गए', 'कीसें-कीसें कएं अब'।

द्विरुक्त कथनों की भांति ही बुन्देली में शब्द युग्म प्रयुक्त होते हैं - ''दतिया जिले की बोली में मौड़ी-मौड़ा, बैन-भइया, गाड़ी-बैला व्यवहृत हैं।'' इसी तरह मताई-बाप, हाती-घोड़ा, ऊंचौ-नीचौ, अच्छौ-बुरौ जैसे शब्द युग्म व्यवहार में हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुन्देली वाक्य रचना बुन्देली व्याकरण के मानक स्वरूप को स्पष्ट करती है।

संदर्भ -

१. भाषा विज्ञान कोष - डॉ. भोलानाथ तिवारी, ज्ञान मंडल वाराणसी, १९६३, पृ. ५६
२. ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोलीरूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. सीताकिशोर, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, १९६६, पृ. १७२

- अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा
जिला दतिया (म.प्र.)

दो बुन्देली गज़लें

- प्रेमप्रकाश चौबे 'प्रेम'

अच्छो समौ हिरानो।
आ गओ नओ जमानो।

जिनें पतौ नइँ पोंद बेर को
कै रए हमरी मानो।

गाँव में दारू बिक रई
घी और दूध बिलानो।

हैं दारू के ठेका, नइयाँ
अस्पताल और थानो।

भले मानसन को जा जुग में
नईयाँ 'प्रेम' ठिकानो।

तन्नक पोंद रुपन नई पा रए।
दौर-दौर कें दिल्ली जा रए।

झूँठ बसौ जिनकी रग-रग में
सत्त नरायन कथा करारए।

हमें दूर बैठारो जिनने
बेई बुलाकें गरें लगा रए।

जौन बात होबे की नइयाँ
उन बातन की कसमें खा रए।

तुम हौ भले 'इलेक्सन भैया'
इनें 'प्रेम' कौ पाठ पढ़ा रए।

- ब्राह्मण मुहल्ला, कुरवाई, जिला विदिशा (म.प्र.)

दतिया की राज महिषी बखत कुँवरि 'प्रिया सखी' का काव्य

- हरिविष्णु अवस्थी

रीतिकालीन साहित्य के मर्मज्ञ लाला भगवान दीन 'दीन' को छतरपुर में सन् १८६४ ई. से १६०४ ई. तक १०-११ वर्ष निरंतर स्थानीय हाई स्कूल में सैकिण्ड मास्टर के रूप में कार्य करने का सुयोग प्राप्त हुआ था।[१] इस अवधि में उन्हें बुन्देलखण्ड की सुषमा एवं अन्य प्रभावी स्थितियों का निकट से अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने इन सब का वर्णन करते हुए निष्कर्ष रूप में लिखा है कि "अंत में फिर एक बार कह देते हैं कि इस पवित्र भूमि खण्ड जिसे अब बुन्देलखण्ड कहते हैं, कविता की जन्मभूमि है और आदि से यहाँ उत्तम कवि होते आये हैं, वर्तमान समय में भी हैं और आगे भी होते रहेंगे।"[२] अपने लेख में लालाजी ने बुन्देलखण्ड के प्रमुख कवियों के नामोल्लेख के साथ, प्रवीणराय, रतनकुँवरि (रानी), पजंन कुँवरि (रानी) बखत कुँवरि (रानी) कुल चार कवयित्रियों का अति संक्षेप (१-२ पंक्तियों में) में विवरण भी दिया है।[३]

कुछ अधिक जानने की इच्छा से हिन्दी साहित्य के विभिन्न संदर्भ ग्रंथों आदि का अध्ययन करने पर दतिया नरेश शत्रुजीत सिंह (१७६३-१८०१) ई. की राजमहिषी बखत कुँवरि जो 'प्रिया सखी' उपनाम से काव्य सृजन करती थीं के सम्बन्ध में जो जानकारी उपलब्ध हो सकी, उसे ही इस आलेख के माध्यम से सुविज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। रानी बखत कुँवरि 'प्रिया सखी' का जन्म अनुमानतः १८०० विक्रमी (१७४३ ई.) माना जाता है एवं रचनाकाल अनुमानतः संवत् १८४८ वि. (१७६१ ई.) माना गया है। आप राधावल्लभीय संप्रदाय में दीक्षित थी तथा आपका अधिकांश समय वृन्दावन में श्रीराधा-कृष्ण की उपासना में व्यतीत होता था।

आपने 'बानी' काव्यकृति की रचना की। 'बानी' का शुभारंभ निम्नलिखित विवरण अनुसार है - 'श्री राधावल्लभोजयति। श्री हरिवंश चन्द्रोजगति।। अथ प्रिया सखी जू कृत दो होरी लिख्यते।। जति राग।। सखी ये दाई होरी खेलैं।। रंग महल मैं राधावल्लभ रूप परस्पर झेलैं।।१।। रूप परस्पर झेलत होरी खेलत खेल नवेलैं।। प्रेम पिचकपिय नैन भरे तिय रूप गुलाल सुमेलैं।।२।। कुंदन तन पर केसरि फीकी स्याम गौर भए भेलैं। सुरत समर के सुर लरत दोई टूटत हार हमेलै।।३।। सनमुख रुखमुसक्यात झपटि झुकि लाडिली लालहि पेलैं।। प्रिया सखी हित यह छवि निरखति सुख की राशि सकेलैं।।४।।

२. श्री राधावल्लभो जयति।। श्री हरिवंश चन्द्रोजयति।। अथ श्री महराज कौमारि श्री महारानी बखत कुँवरि जू देव्य कौ नाम महल कौ प्रिया सखी जू है तिनकी बानी तो बहुत है ता मैं एकु पद लिख्यते।। राग काफी।। प्रीतम हर हिय बसत हमारे।। जाई कहूँ सोई करत रैंन दिन छिन पल होत न जिअ तैं न्यारे।। जिन नित तन मन रौंम रौंम मैं ह्वै रहे मेरे नैंननि तारे।। अति सुन्दर वर अंतरजामी प्रिया सखी हित प्राननि प्यारे।।१।। इति मूल।।

इस पद पर ५ भाव के टीका हैं - १. सिद्धान्त, २. रस कौ अर्थ, ३. सखी को बचन सखी सौं, ४. श्री लाल जू को बचन श्री हितसखी प्रिया सखी जू सौं, ५. वेष पलट।

अंत - छैल छबीली राधा गोरी होरी खेल मचायौ। केसरि ढोरि गुलाल मांडि मुख अंजन दैं हसि पिय गुलयाचौं।। पीतांबर सौं हाथ बाँधिकरि कहि होरी कौं नाच नचायौं।। प्रिया सखी कौं भेष बनायौं महावर रंग रचायौं।।३।।

अथ पाँचऔं अर्थ लिख्यते।।बेस पलट हैं कहा कैं। श्री प्रिया जी के रूप कौ देखत देखत।। प्रीतम रूप कौं रस पीकैं।। छकि कैं।। यह जानत हैं।। कै हम प्रिया हैं।। ये प्रीतम हैं।। सो श्रीलाल जी वा समय मैं।। कहत है।। सखी सौं।। कैं सुनी सखी प्रीतम हर हिय बसत हमारे।। कै हमारे प्रीतम हमारे हिये में बसत हैं यह बात प्रीतम के मुखारबिंद की सखी सुनि कैं। सब परस्पर हँसती हैं।। कैं ये।। प्रीतम हैं।। कैं ये प्रिया हैं।। ऐसे मगन होइ रहे हैं।। या भाँति तनमय होइ रहे हैं।। कैं हम प्रिया हैं।। सब श्री प्रिया जी कैसे गुन दिखात हैं।। लाज नेत्रन में वैसी हैं। रूप की गरीब लता बैसी है। हसनि बतरानि बैसी हैं। सो श्री प्रिया रूप होइ कहत हैं। जोई कहूँ सोई करत रैन दिन छिन पल होत न जिअ तै न्यारो। कैं जोई हम कहैं हैं सोई रैन दिन करत हैं प्रीतम पल छिन जिअतैं न्यारे नाही होत।। जित तितै तन मन रौंम रौंम मैं ह्वै रहे मेरे नैननि तारो। बाही भाँति श्री राधा रूप होइ कैं। प्रीतम फिरि बोले कैं सुनौं सखी। जितैं देखौं तितै तन मैं मन मैं अरे प्रीतम तौं नैननि के तारे होइ रहे हैं। अति सुंदर वर अंतरजामी प्रिया सखी हित प्रननि प्यारो। कह्ा कैं। वाही रूप की खबरि मैं फिर बोलो। कैं सुनौ सखी अति सुन्दर हैं हमारे प्रीतम।। अंतरजामी हैं। कैं जो मैं मन मैं विचारौ सो प्रीतम तुरत ही करत हैं। तब प्रिया सखी नैं यह सुख देखौं। कैं ये प्रान प्यारे प्रीतम निचु श्री प्रिया जू कौ रूप ही होइ रहे हैं। तब नई श्री प्रिया जू सौं हसी सखी।। अरु कही कैं प्रिया जू तुम्हारे प्रीतम तौं तुम्हारे प्राननि तैं प्यारे हैं। तब यह सुख देखि कै श्री हित सखी जू और सखी हसी आनंद पायौ।। प्रीतम कौ सुधि कराई।। कैं आप तौ प्रीतम ही हौ। तब सकुचे अरु कही कैं मेरे मन की बातैं आजु सखिनि नै सब जानी।। इति श्री प्रिया सखी जू कौ एकु पद ताके पाचु अर्थ संपूर्ण संवत् १८४८ मार्ग वदि १३।।"[४]

'मिश्र बन्धु विनोद' खण्ड १-२ कवि क्रमांक ८१ पृष्ठ संख्या २०७ पर 'प्रियासखी' के नाम पर बखत कुँवरि रचित 'प्रिया सखी की बानी' एवं 'प्रिया सखी की गारी' कृति का उल्लेख हुआ है। इसी ग्रंथ के पृष्ठ क्रमांक ३१५ पर उपर्युक्त विवरण की पुनरावृत्ति हुई है।[५]

पं. गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने 'बुन्देल वैभव' द्वितीय भाग के पृष्ठ ५१४ पर निम्न लिखित विवरण दिया है -"१६१ - बखत कुँवरि उपनाम प्रिया सखी जन्म स्थान दतिया, जन्म संवत् १८०० वि. कविता काल सं. १८४० वि. ग्रंथ बानी, विवरण दतिया निवासिनी थीं।"[६]

'प्रियासखी की बानी' के पदों में श्री राधा एवं श्री कृष्ण की युगल लीलाओं का भावपूर्ण चित्रण हैं। जिनके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रानी बखत कुँवरि उनके युगल स्वरूप की उपासक थीं। राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं का बहुत सजीव चित्रण उन्होंने किया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी की सन् १६०६ की खोज रिपोर्ट में ''प्रिया सखी की बानी'' की जिस प्रति का विवरण प्रस्तुत किया गया है (जिसे आलेख में यथावत् दिया जा चुका है) वह संवत् १८४८ वि. (सन् १७६१ ई.) की प्रति रही है। इसके अतिरिक्त दतिया राजकीय पुस्तकालय में रानी बखत कुँवरि के पदों की एक और प्रति संवत् १८५७ वि. (सन् १८०० ई.) की सुरक्षित है, जिसे दुल्हैया रतन कुँवरि ने अपने पढ़ने के लिए तैयार किया था।

इस प्रति से यह ज्ञात होता है कि कदाचित दुल्हैया रतन कुँवरि स्वयं कविता करती रही हों। साथ ही राजकुमारियों का लिखने-पढ़ने की ओर भी ध्यान था। इस प्रति की पुस्पिका इस प्रकार है - 'श्री महाराज कोमार श्री म्हरानी श्रीरानी बखत कुँवरि जू देव की पोथी संपूर्ण समापते। शुभ स्थान दलीप नगर माघ मासे कृष्ण पक्षे रविवासरे संवत् १८५७।। लिखत श्री म्हाराज कोमार श्री दुल्हैया रतन कुँवरि जू देव जो बांचे सुनै ताकौ श्री राधावल्लभ सदा सहाइ रहैं।। श्री श्री श्री श्री श्री।।[७]

रानी बखत कुँवरि 'प्रिया सखी' कृत पदों की वैशिष्टता का स्पष्ट प्रमाण है कि उसी समय में उनके एक-एक पदों की टीका प्रस्तुत की गई। 'प्रीतम हर हिय बसत हमारे' पद पर पाँच भावों की पाँच टीका एक साथ पढ़ने को मिलती हैं। कवयित्री ने स्वयं तो टीका लिखी नहीं होगी। तत्कालीन किसी रासेक पंडित ने ही प्रिया सखी के पदों की टीका की होगी।

बुन्देलखण्ड की अधिकांश राजमहषियों द्वारा भक्तिपरक गेय पदों की रचना की गई। राज्याश्रित संगीतज्ञों द्वारा इन पदों का गायन, उत्सव, पर्व विभिन्न समैया के अवसर पर किया जाता रहा। फलस्वरूप इन गीतों को लोकप्रियता प्राप्त हुई और वे लोककंठ में रच बस गए। सैकड़ों वर्ष बीत जाने के बाद भी इनकी रचयिता कवयत्रियों के नाम गीतों में उनके नाम की छाप लगे होने के कारण लोग जानते तो हैं कि उनके परिचय से सर्वथा अनजान रह जाते हैं। आवश्यकता है शोध कर उन्हें प्रकाश में लाने की ताकी वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में उचित स्थान प्राप्त कर सकें।

संदर्भ -

१. सरस्वती सदन शताब्दी स्मारिका, पृ. २२
२. सम्मेलन पत्रिका अधिवेशन, अंक.२, प्रयाग, पृ. १४६
३. वही, पृ. १४३
४. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का खोज विवरण भाग ३, पृ. १२४-१२५
५. मिश्रबन्धु विनोद, खण्ड १-२, पृ. २०७, एवं ३१५
६. बुन्देल वैभव द्वितीय भाग, पृ. ५१४
७. पं. उदय शंकर दुबे के पत्रानुसार

- अवस्थी चौराहा, किले का मैदान,
टीकमगढ़ (म.प्र.)

सुंदर गाँव हमारे

- हरनारायण हिन्दोलिया

कितने सुन्दर गाँव हमारे तीन लोक से न्यारे।
हरे-भरे जहाँ बाग-बगीचा है, प्रानन से प्यारे।।

बड़े-बड़े बिरछा नीमन के जिनकी नोनी छैंया।
तिनपै मीठे गीत सुना रईं, सुँदर-सुघर चिरैंयाँ।।
मंगरे पै मुर्गा दे रये हैं, बाँग बड़े भुन्सारें।
कितने सुन्दर गाँव हमारे, तीन लोक से न्यारे।।

सोने जैसो सूरज को गोला भोरई उग आबें।
दूर-दूर तक खेतन में मोती सो बगरा जाबें।।
झीलें और सँमुदुर लग रयै इतके नदियाँ नारे।
कितने सुंदर गाँव हमारे, तीन लोक से न्यारे।।

बड़ी भैंस के दूध निपनियाँ से भर लेवे बेला।
करे कलेऊ बड़े अँधेरे ले-ले गुर के ढेला।।
लैकें बखर बड़े भुन्सारें कढ़ गये रामप्यारे।
कितने सुंदर गाँव हमारे, तीन लोक सें न्यारे।।

मोड़ी-मोड़न को ढिलवादई ढोर बछैरू गैयाँ।
लेकें धना कलेऊ कढ़जये जहाँ हाँके हर सैंयाँ।।
बैठे इतै रखा रयै डुकरा अपने-अपने द्वारे।
कितने सुंदर गाँव हमारे, तीन लोक सें न्यारे।।

कऊ-कऊ बेर टेर बिरियँन के कर रयै रोज कलेवा।
गिला-कचैयाँ, बेर मकुइयाँ जोई गाँव की मेवा।।
मोहन भोग बने महुँअँन के, खातन लगें प्यारे।
कितने सुंदर गाँव हमारे, तीन लोक से न्यारे।।

पानी भरवे जा रई गुइयाँ आपस में बतराबें।
धरें गगरियाँ सिर के ऊपर, घुंघटा उठा चितावें।।
नोंने पनहारिंन से लग रयै, भरे-भरे गलियारे।
कितने सुंदर गाँव हमारे, तीन लोक से न्यारे।।

- ग्राम व पोस्ट गाँगेपुरा, आलमपुर
जिला भिण्ड (म.प्र.)

एक विस्मृत लोककवि : स्व. श्री भगवान सिंह भदौरिया 'अरुणोदय'

- डॉ. आनन्दकंद गुप्त

श्री भगवान सिंह भदौरिया 'अरुणोदय' का जन्म सन् १६४७ ई. में आलमपुर (जिला भिण्ड) म.प्र. में हुआ था। इनके पिता का नाम स्व. श्री हुकुम सिंह जमादार तथा माता का नाम श्रीमती सेंगरिन जू था। पिता श्री होलकर छत्री इन्फेन्ट्री में जमादार थे तथा इसी पदनाम से प्रसिद्ध थे। कवि भदौरिया साधारण पढ़े लिखे थे, किन्तु विद्वानों की सत्संगति से उन्होंने पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया था, काव्य तथा संगीत कला में उनकी गहरी पैठ व रुचि थी। उन्होंने तीन चार छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी थीं उनमें दो पुस्तकें गारियों की, एक कीर्तन की तथा एक चुनाव-प्रचार के गीतों की व फिल्मी गीतों की तर्ज पर भजनों की है।

बहुत खोजबीन करने के पश्चात् मुझे उनकी एक पुस्तक - 'बुंदेलखंडी समाज सुधारक गारियाँ' (भाग-१) ही प्राप्त हो सकी। उसी को आधार मानकर यह लेख लिख रहा हूँ। शेष साहित्य अगले लेख में लिखूँगा। श्री भदौरिया लोक कवि ईसुरी तथा कवि दास जी से बहुत प्रभावित थे। मेरे पिता श्री डॉ. कमलेश को अपना काव्य गुरु मानते थे। अतः उनकी कविताई में इनके संशोधन की झलक दिखाई देती है। जैसा कि पुस्तक के मंगलाचरण में उन्होंने अन्य देवी-देवताओं के साथ गुरुजी की भी वंदना की है -

सुमरों माता सरसुती, सुमरों सिद्ध गनेश।
कृपा करो मो दास पै, मेंटी सकल कलेश।।
अपनी भारत मात कों भैया शीश नबाओं।
पूज्य महात्मा गांधी के पूजों मैं पाँव।।
जिनकी कृपा अपार से, हो उर में उन्मेष।
कविता गुरु अरु विज्ञवर नमों सुकवि कमलेश।

श्री भदौरिया ने धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, हास्यव्यंग्य आदि सभी विधाओं में अपनी कलम उठाई है। अधिक पढ़े-लिखे न होने पर भी उनकी कविताओं में भाव गांभीर, ओज आदि साहित्यिक गुण दिखाई देते हैं। यहाँ मैं उनकी रचनाओं में से प्रत्येक विधा की कुछ-कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत करूँगा। मेरा उद्देश्य उनके काव्य से बुन्देली भाषा प्रेमियों को अवगत कराना मात्र है। यह गारियाँ मुख्यतः अभिधा में ही लिखी गई हैं, भाषा सीधी, सरल, सपाट है। अतः उनकी व्याख्या करना उचित नहीं समझ रहा हूँ। जन साधारण भी आसानी से समझ सकता है - कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

गोपियों का संदेश -

टेक - इतनी माधौ सें कहियो समझायकें।ऊधौ सुनों चित लगायकें।
छन्द- बातें सुन-सुन करकें सखीं, अखियाँ सुनत सँदेशो दूखीं,
वे तो हैं दरसन की भूखीं, हमारी विपदा बतइयो जू जायकें।
हरि बिन देह राख का करहै, बिन घनश्याम जहर खा मरहैं,
अगले जनम इनहिं कों वरहैं। दुक्ख दे गये वे नैना लड़ायकें।
तुम्हरीं कथा हमें न भावे कत भगवान रो आवे
जियरा श्याम बिना घबरावे। प्रेम उमड़ो है अँखियँन में आयकें।

उक्त पंक्तियों में प्रेम की पराकाष्ठा दर्शायी गई है। जो हृदयस्पर्शी है।

बारहमासी - एक नायिका का पति विदेश गया है, समय पर न लौटने पर नायिका उसे खोजने निकलती है और पूरे मध्यप्रदेश में जाती है। इसमें मध्यप्रदेश के सभी जिलों के नाम बारह महीनों में लिये गये हैं। कविता लम्बी है अतः कुछ अंश प्रस्तुत हैं -

जे कारे बदरा छाये गुइयाँ, सँइयाँ घरे न आये।
आली छूट गई अब आश
अब तो आन लगौ बैशाख
पिय बिन मेरी लगें न आँख
सेज हमारी सूनी गुइयाँ पिय की याद सताये।। जे...
पहुँच छतरपुर हो गई लस्त
आली अब आ गयो अगस्त
लख खरगोन खा गई गस्त
सतना पन्ना, रीवा देखो सब जंगल मझ आये। जे...

मई माह से लेकर दिसम्बर तक सभी जिलों के नाम इस कविता में है।

आलमपुर की शोभा - इस गारी में आलमपुर नगर की ऐतिहासिक, साहित्यिक, सामाजिक, कवि, कलाकारों, खिलाड़ियों आदि की प्रशंसा की गई है। कविता लम्बी है। अतः कुछ अंश ही यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ -

भैया हो तुमकों आज सुना दैऊ, शोभा आलमपुर की।
देखो छतरी बाग सुनाम।
जामें छतरी बनी ललाम
तामें कारीगरी तमाम
ताके नीचे पतित पावनी सोनभद्र का मुरकी।। भैया...
कवियँन में कविवर कमलेश
विरही, विमल, मिसुर विरजेश
चन्द्र, लाल, राकेश, दिनेश
उनकी कविता सुने जो कोऊ भूल जाये सुध घर की।। भैया...
प्लेयर रज्जू, हरी निरालें
राम प्रकाश बोलियर आले
जाफर ओ रमेश मतवाले
जाँ जाँ खेलन गये वहाँ से जीती शील्ड विनर की। भैया...
होत रामलीला हरसाल
दुर्गा, चौबे लेत सम्हाल
करत लहरिया खूब कमाल
दूर बार जी पढ़त प्रेम सें विमल कथा रघुवर की।। भैया...
गाँव बुद्धि को है भंडार
वर्मा, झा, केशव, परिहार
कइयक और जने हुशियार
सबसें बस भगवान सिंह हैं किरपा चाये नजर की।। भैया...

इस प्रकार लोककवि ने अपने परिवेश में विभिन्न विषयों पर कलम चलाई है। गारी छन्द उनका प्रिय छन्द रहा है अतः अधिकांश कविताएँ गारी छंद में ही लिखी गई हैं, जो लोकप्रिय हुई हैं। वह स्वयं भी वाद्यों के साथ उन्हें गाते थे।

- शास. कन्या उ.मा. विद्यालय, भाण्डेर (दतिया)

यजुर्होति (प्राचीन बुन्देलखण्ड)

- अशोक चतुर्वेदी

यजुर्वेदेन हुतिर्हवनं यत्र स यजुर्हुति देशे विशेषः।

अथ च हूयते यस्मिन्न सौ जुहौति देश विशेषः।।

अर्थात् - जिसमें यजुर्वेद की ऋचाओं से यज्ञ हवन किया जाय, उस देश को 'यजुर्हुतिः' वा 'जुहोति' कहते हैं। यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड के लब्धकीर्ति प्रबुद्ध ब्राह्मणों की बाहुल्यता के कारण इस देश की ''जुहोति (यजुर्होति) नाम से प्रसिद्धि हुई। जुहोति देश के निवासी 'जुहोतिया' कहाये।

व्याकरण शास्त्र के धातुकोष में 'यज्' धातु का तात्पर्य - 'देवपूजा संगति करण यजनदानेषु' अर्थात् - यज्ञ कर आहुति डालना, देना, संगति करना, से है। यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ व्यवस्था का विधि-विधान से, जिस धरा-धाम पर सम्पादन हुआ यजुर्वेद की समग्र समृद्धि जिस धरा-धाम पर फलीभूत हुई वह धरा-धाम यजुर्होति (जुहोति-बुन्देलखण्ड) के नाम से लोक प्रसिद्ध है।

गुण विशिष्ट से व्युत्पन्न 'जुहोति' (यजुर्होति) शब्द तद् गुण विशिष्ट 'जुहोति' (यजुर्होति) देश के नाम से व्यवहृत हुआ तथा इस गुण विशिष्ट देश में निवास करने वालों की तद् देशवासी (जुहोतिया) संज्ञा हुई। जिस प्रकार कश्मीर के निवासी कश्मीरी, गुजरात के निवासी गुजराती, महाराष्ट्र के निवासी महाराष्ट्री, बंगाल के निवासी बंगाली, तेलंगाना के निवासी तैलंग कहलाते हैं, उसी प्रकार जुहौति देश के निवासी 'जुहौतिया' कहलाये।

वैदिक कालीन 'यजुर्होति' देश की भौगोलिक स्थिति के अध्ययन हेतु हमें, सप्तसिन्धु ब्रह्मावर्त-ब्रह्महर्षि देशों सहित वैदिक कालीन 'अन्तर्वेद' देश की भौगोलिक एवम् सांस्कृतिक स्थिति पर ध्यानाकृष्ट करने की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति, विश्व की संस्कृतियों में प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ है। 'आर्यों' का प्रसार सप्तसिन्धु (सात नदियों) १. सिन्धु (हिन्दु-इण्डस), २. वितस्ता (झेलम), ३. असिक्नी (चिनाव), ४. परुश्नी (रावी), ५. विपासा (व्यास), ६. शतुद्री (सतलज), ७. सरस्वती (वर्तमान में यह नदी राजस्थान के मरुस्थल में विलुप्त हो गई है) के भू-भाग से बाहर होने पर 'द्रविड़ों' से उनका संघर्ष हुआ। 'गौ' उपासक, आर्यों और 'वृषभ' (बैल) उपासक, द्रविड़ों के इस संघर्ष के निष्कर्ष में 'आर्य' और 'द्रविड़' संस्कृति का पारस्परिक सम्मिलन, भारतीय संस्कृति का गौरवगान है। अपने दुग्धरत्न से जन-जन को ऊर्जा प्रदान करने वाली, नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण (वैष्णवमत) की 'गौ' (गाय) एवं समृद्ध कृषि कार्य हेतु शक्ति प्रदाता, सदाशिव महादेव (शैवमत) का नन्दी (बैल), अर्थात् - गाय+बैल दोनों ही भारतीय संस्कृति को ऊर्जा प्रदान करने वाले हैं।

ब्रह्मावर्त देश 'सरस्वती' और 'दृषद्वती' (घग्घर) नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र को कहा गया है। ब्रह्मर्षि देश में ''कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पँचालाः शूरसेन काः'' (मनुस्मृति) अर्थात् - कुरुक्षेत्र (हरियाणा प्रदेश का क्षेत्रवर्ती भूभाग), मत्स्य (राजस्थान में अलवर का क्षेत्रवर्ती भू-भाग), पंचाल (उत्तरप्रदेश में बरेली, बदायूँ, फर्रूखाबाद जनपदीय क्षेत्र), शूरसेन (उत्तर प्रदेश में मथुरा जनपदीय क्षेत्र) को बताया गया है। सम्भव है यह सब तत्कालीन ब्रह्मावर्त और ब्रह्मर्षि देशों के अन्तर्गत प्रदेश रहे हों।

'अन्तर्वेद' की स्थिति के सम्बन्ध में, अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि - वैदिक संस्कृति विस्तार के प्रभावकारी परिणामों में, सरस्वती नदी (कुरुक्षेत्र) से तीर्थराज प्रयाग इलाहाबाद (गंगा-यमुना-सरस्वती संगम, त्रिवेणी) तक, अर्थात् - सरस्वती नदी (कुरुक्षेत्र) से सरस्वती नदी (प्रयाग, इलाहाबाद) तक गंगा-यमुना नदियों का मध्यवर्ती भू-भाग वैदिक काल में 'अन्तर्वेद' के नाम से प्रसिद्ध रहा है।

'यजुर्होति' देश की स्थिति के सम्बन्ध में अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि - वैदिक संस्कृति विस्तार के प्रभावकारी परिणामों के क्रम में ही ''सूर्यनन्दिनी यमुना नदी एवम् चम्बल नदी के संगम स्थल (पचनदा - १. यमुना, २. चम्बल, ३. सिन्ध, ४. पहूज (पारा-पुष्पवती), ५. क्वाँरी नदियों का संगम क्षेत्र, उत्तरप्रदेश के जालौन, औरैया एवम् मध्यप्रदेश के भिण्ड, ग्वालियर, दतिया जनपदों के क्षेत्रवर्ती इस भू-भाग में उपरोक्त पाँचों नदियाँ थोड़ा बहुत आगे पीछे क्रम में मिलीं हैं। पाँच नदियाँ मिलीं होने से इस तीर्थ का नाम 'पचनदा' है। पचनदा का माहात्म्य वैदिक कालीन है, इसी माहात्म्य के पुण्य प्रभाव को समझते हुये, गोस्वामी तुलसीदास जी भी यहाँ आये थे। क्वाँर शुक्ल चतुर्दशी को गोस्वामी तुलसीदास जी का यहाँ आगमन हुआ था। इस तिथि की स्मृति में यहाँ प्रतिवर्ष विशाल मेला लगता है। पचनदा में कालेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर है, यहाँ के तपोवन में साधु-महात्माओं की तपोस्थली है। पुण्यतीर्थ पचनदा में समसामयिक मेला व धर्मोत्सवों का आयोजन होता ही रहता है।) पचनदा से नर्मदा नदी तक का मध्यवर्ती भौगोलिक क्षेत्र यजुर्होति देश है। यहाँ वैदिक संस्कृति की यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड व्यवस्था परम समृद्धि को प्राप्त हुई।

यजुर्वेद विज्ञान के परम मर्मज्ञ महर्षि गणों नें अन्तर्वेद की सीमावर्ती नदी यमुना जी के दक्षिणी तट पर पचनदा क्षेत्रवर्ती भाग में 'पहूज और सिन्ध नदी संगम' पुरातत्व विदों ने इसी क्षेत्र में नागवंश

की प्राचीन राजधानी पद्मावतीपुरी (पवाँया-ग्वालियर-दतिया म.प्र.) की स्थिति बताई है। पर आहूत विशेष धर्मसत्र के मंगल मुहूर्त में, यजुर्वेद विज्ञान को परम प्रभावशाली सर्वव्यापी-लोकमंगलकारी बनाये जाने का संकल्प लिया, और तद्नुसार यजुर्होति (बुन्देलखण्ड) की लोक संस्कृति को यजुर्वेद मय बनाया। परम मर्मज्ञ यजुर्वेद विज्ञानी विद्वानों की विद्वता को दिग्दिगन्त में देदीप्यमान करने वाली उन्हें कीर्तिवान् बनाने वाली यज्ञ भूमि यजुर्होतिः (तपोभूमि बुन्देलखण्ड) ही है।

'आज्य हविरनादे दे जुहोतिषु विधीयते' (कात्यायन स्मृति) "विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ ता मनस्यर्थविभ्रमे, मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायाया जुहोत्नु।। (श्रीमद्भागवत् महापुराण सप्तम्, स्कन्ध अध्याय १३, श्लोक ४३)

वैदिक और पौराणिक साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रयुक्त 'जुहोति' से सम्बन्धित शब्दों का, प्रचुर रूप से किया गया प्रयोग, उन यजुर्वेद विज्ञानियों की पहचान का शब्द बन गया।

स्वाभाविक प्रान्तों (प्रदेशों) की पहचान हेतु हमें, भाषा-बोली-भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा प्राचीन ऐतिहासिक परिवेश अध्ययन के क्रम में, वहाँ की तत्कालीन सांस्कृतिक समृद्धि के, वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। इस अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि तत्कालीन लोक परिस्थितियों के प्रभाव से तपोनिष्ठ यजुर्वेद विज्ञानियों का केन्द्र कालिंजर-चित्रकूट बना। श्री चित्रकूट धाम जनपद के मानिकपुर (पाठा) क्षेत्र में "छह हजार वर्ष प्राचीन" प्रागैतिहासिक शैलचित्र, हमारे पुरातत्वविदों के लिये शोध के विषय हैं।

यमुना-चम्बल और नर्मदा नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्र को भारत हृदय कहा गया है। वैदिक संस्कारों से संस्कारित इसकी दिव्य उर्वराशक्ति के कारण ही, अनादि काल से वर्तमान तक, भारतवर्ष के समस्त महत्वपूर्ण व्यक्तिगत इसी धरा-धाम से सम्बन्धित हैं। महर्षि अत्रि, गौतम, अगस्त्य, कश्यप, च्यवन, भृगु, अंगिरा, कर्दम, दक्ष प्रजापति, महर्षि, शरभंग, सुतीक्षण, वामदेव, पाराशर, व्यास, कपिल, पतंजलि, विश्वामित्र, वाल्मीक, भवभूति, कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि ऋषिकुलपतियों की दिव्य तपोभूमि, यज्ञभूमि यही यजुर्होति (बुन्देलखण्ड) है।

वेदों के जनक ब्रह्माजी की तपोभूमि, यज्ञवेदी, श्री चित्रकूट धाम में मन्दाकिनी गंगा जी के तट (रामघाट) पर विद्यमान है। श्रीमद् भागवत् महापुराण के छठवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में वर्णित है कि अपने पिता ब्रह्मा जी की ही भाँति प्रजा की सृष्टि हेतु संकल्पित प्रजापति दक्ष ने जब देखा कि वह सृष्टि बढ़ नहीं रही है, तब उन्होंने विन्ध्याचल के निकटवर्ती पर्वतों पर जाकर बड़ी घोर तपस्या की, वहाँ एक अत्यन्त श्रेष्ठतीर्थ है। उसका नाम है "अघमर्षण" वह सारे पापों को धो बहाता है। प्रजापति दक्ष उस तीर्थ में त्रिकाल स्नान करते और तपस्या के द्वारा भगवान की आराधना करते।

'अघमर्षण' तीर्थ के सम्बन्ध में तीर्थांक (कल्याण-गीताप्रेस गोरखपुर) में वर्णित है - वर्तमान में मध्यप्रदेश के सतना जनपद की रघुराजपुर तहसील में "अमुवा' ग्राम के निकट धार, कुण्डी, बेधक यह तीन स्थान हैं। तीनों मिलाकर 'अभरखन' कहे जाते हैं। धार में - सिद्धेश्वर महादेव का मन्दिर है, कुण्डी-में तीर्थ कुण्ड है, और बेधक-में प्रजापति की यज्ञ वेदी है। यह 'अभरखन' 'अघमर्षण' का अपभ्रंश है।

यजुर्होति धरा-धाम क्षेत्र के चेदि देश की भूमि, आर्य सभ्यता के आदिम युग में ही, द्रविड़ संस्कृति के परम प्राचीनतम अभियानों की लीलाभूमि रही है। इस काल में वनों की बहुतायत थी। अग्नि द्वारा वनों को जलाकर वन भूमि को कृषि योग्य बनाये जाने, ब्रह्मातिथि ऋषि को सौ ऊँट और दस हजार गौदान करने वाले 'चेदि राजा' 'काशु' का वर्णन ऋग्वेद में है।

वनवास के समय चित्रकूट में मन्दाकिनी गंगा तट पर श्री रामचन्द्र जी का पर्णकुटी में निवास के समय, यज्ञवेदी बनाना बाल्मीक-रामायण में वर्णित है। इस कथा प्रसंग से स्पष्ट है कि देशकाल और तत्कालीन स्थानीय परिवेश के अनुरूप श्रीराम जी ने अपने निवास के निकट वेदिका बनाई, जो हमारे यजुर्होति (जुहौति देश-बुन्देलखण्ड) की यज्ञ परम्परा का प्रमाण है।

तापसवेषधारी श्री रामजी ने, महर्षि अत्रि के आश्रम (वर्तमान अनुसूइया आश्रम, श्री चित्रकूट धाम) में वायु के वेग के ऊपर उठते हुये श्यामवर्ण धूम्र के दर्शन करते हुये कहा - "अग्निहोत्रे च ऋषिणा हुते च विधि पूर्वकम्" (श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग-११६, श्लोक ६)

अर्थात् - महर्षि (अत्रि) ने विधिपूर्वक अग्निहोत कर लिया है। श्री चित्रकूट धाम के निकटवर्ती क्षेत्र में "वाँणगंगा" तट पर स्थित महर्षि शरभंग जी के आश्रय में यज्ञवेदी स्थल विद्यमान है।

यजुर्वेद विज्ञानी गूढ़ज्ञान के ज्ञानालय धाम मंजुल माहात्म्य १. चित्रकूट, २. कालिन्जर, ३. अघमर्षण तीन पुनीत धाम जिस धरा पर विद्यमान हैं, वह तपोभूमि-यज्ञभूमि अपनी यजुर्होति है - यही हमारी जुहौति है, यही हमारा बुन्देलखण्ड है।

श्री चित्रकूट धाम में भगवान विष्णु अवतार श्रीराम जी का निवास, कामदगिरि पर्वत वन्दनीय है। भगवान सदाशिव के तपः स्थल कालंजर तीर्थ में नीलकण्ठेश्वर महादेव की महिमा अमित है। तपोभूमि अघमर्षण तीर्थ में ब्रह्मा जी के नन्दन प्रजापति दक्ष की यज्ञ वेदी है। श्री चित्रकूटधाम में मन्दाकिनी गंगा जी के पावन तट पर रामघाट के निकट स्थित "ब्रह्मा जी की यज्ञवेदी" तो प्रमाणित करती ही है, कि उस यज्ञवेदी में यज्ञ करने वाले ब्रह्मा जी "जुहौतिया" ही हैं। यज्ञ प्रधान संस्कृति इस धरा धाम का लोक जीवन रही है।

यजुर्होति देश (यमुना जी के दक्षिणी तट पर स्थित 'कालपी' जनपद जालौन, उरई, बुन्देलखण्ड, उत्तरप्रदेश) में यमुना जी और 'जौंधर' नदी (व्यास गंगा) के संगम द्वीप पर जन्मे महर्षि पाराशर नन्दन, कृष्ण द्वैपायन व्यास जी के वेदोक्त 'चतुर्होत्र' यज्ञ व्यवस्था को भली-भाँति सम्पादित किया। सोलह ऋत्विजों को चार विभागों में व्यवस्थित किया १. होता (ऋग्वेद्) - मैत्रावरुण, अच्छावाक, पोता।, २. अध्वर्यु (यजुर्वेद) - प्रतिस्थाता, नैष्टा, उन्नैता। ३. उद्गाता (सामवेद) - प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, सुब्रह्मण्य।, ४. ब्रह्मा (अथर्ववेद) - चारों वेदों का ज्ञाता और सम्पूर्ण कार्य का निरीक्षक ब्रह्मणाच्छांसी, आग्रीपध्र, ग्रावस्तुत।

इस प्रकार विभागीकरण करके व्यास जी ने अपनी जन्मभूमि में वेद विस्तार की परम्परा को और अधिक सुदृढ़ बनाया। वेदों में यज्ञ विधान का प्रतिपादन वैज्ञानिक विधि से किया गया है -

विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपि च,
विज्ञानं देवाः सर्वे, ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते।
विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद, तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति,
शरीरे पाप्मनोहित्वा, सर्वान्कामान्समश्नुत इति।

(तैत्तिरीयोपनिषद-ब्रह्मानन्द वल्ली-५)

अर्थात - विज्ञान ही यज्ञों का विस्तार करता है, और कर्मों का भी विस्तार करता है। सब इन्द्रिय रूप देवता, सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही सेवा करते हैं। यदि कोई विज्ञान को ब्रह्म के रूप में जानता है, और यदि उससे प्रमाद नहीं करता, निरन्तर उसी प्रकार चिन्तन करता रहता है तो शरीराभिमान जनित पाप समुदाय को शरीर में ही छोड़कर समस्त भोगों का अनुभव करता है।

वैदिक कर्मकाण्ड का मुख्य विषय यज्ञ है, यज्ञ में मंत्रोच्चारण से चित्त शान्ति और मन सबल होता है। अखिल विश्व धर्मचक्र का सम्यक संचालन होने लगता है। यज्ञ अग्नि में दी हुई आहुति, वायुमण्डल के साथ मिलकर अन्तरिक्ष मण्डल में व्याप्त हो जाती है, उससे "पर्जन्य" (मेघ-बादल-विष्णु) उत्पन्न होकर, पर्जन्य से "अन्न" और अन्न से प्रजा की वृद्धि और समृद्धि होती है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं, और यज्ञकर्ता को मनोवाँछित फल प्रदान करते हैं।

यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड के लब्धकीर्ति प्रबुद्ध विद्वानों की विपुलता के कारण इस बुन्देलखण्ड (यजुर्होति) प्रदेश के सार्वभौमिक लोकव्यापी प्राचीन नाम, तपोवन, यजुर्होतिः, यजुर्होति, जुहोति, जुहौति, जुजौति, जिजौति, जेज्जौति, (चाणक्यकालीन, मौर्य कालीन), जुंजाहुति (स्कन्दपुराण कालीन, गुप्तकालीन), जुझौति आदि अलंकरण लोक प्रसिद्ध रहे हैं।

लोकमंगलकारी ऋषिकुलपतियों के गुण-कर्म परक नाम से अलंकृत यह यजुर्होति (जेज्जौति-जुझौति) देश ऋषि प्रधान परम्परा विखण्डन के उपरान्त विभिन्न राजवंशों के वैभव-पराभव क्रम में उनके साम्राज्य का अंग रहा है। राजनैतिक दृष्टि से इस बुन्देलखण्ड प्रदेश के भूभाग को - मध्यदेश, युद्धदेश, चेदि, दर्शार्ण, चन्द्रावती, सुन्दरावर्त, विन्ध्याटवी, विन्ध्यदेश, जेजाकभुक्ति, विन्ध्येलखण्ड, बुन्देलखण्ड, बुन्देलखण्ड एजेन्सी (इसका केन्द्र नौगाँव छावनी में था), विन्ध्यप्रदेश (इसकी राजधानी प्रारम्भ में नौगाँव छावनी छतरपुर में थी कालान्तर में यह राजधानी रीवा हो गई थी) आदि नामों से अलंकृत किया गया है, और अब वर्तमान में उत्तर प्रदेश व मध्यप्रदेश के भू-भागों में विभाजित होकर, सम्प्रभुता सम्पन्न गणराज्य भारतवर्ष के हृदय स्थल पर विद्यमान है। इस विभाजित भू प्रदेश के निवासी अपने एकीकृत भू-प्रदेश प्राप्ति की अभिलाषा रखते हैं।

आठवीं शताब्दी में वर्तमान मध्यप्रदेश के छतरपुर जनपद में पुण्य सलिला केन नदी तट पर स्थित 'मनियाँगढ़' निवासी, महोबा-अजयगढ़ और खजुराहो की कीर्तिवर्धक, चन्देलवंशीय राजा 'नन्नुक' के पुत्र 'वाक्पति' के पराक्रमी पुत्र महाराजा 'जयशक्ति' प्राचीन तपोभूमि-यज्ञभूमि के प्रति लोक आस्था में समादृत जन-जन के मनोभाव का दर्शन कर, पूर्वकाल से लोक प्रचलित "यजुर्होति" के कालान्तरित नाम, जुजाहुति, जुजौति, जुझौति, जिजौति, जैज्जौति, आदि का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन कर, उसका अनुशरण करते हुये, इस पुनीत धराधाम की लोकव्यापी परमप्रतापी यशोवर्धक कीर्ति 'जैज्जक' व 'जेजा' उपाधि से अलंकृत हुये। महाराजा 'जयशक्ति जैज्जक' का यह भू-प्रदेश कालान्तर में काशी (बनारस) के गहरवार क्षत्रिय राजवंश के अंश 'महाराजा हेमकर्ण विन्ध्येला' विन्ध्यवासिनी देवी की कृपा से विन्ध्य क्षेत्र में स्थित इस यजुर्होति (जुहौति-जेजाकभुक्ति) के अधिपति बने और उनके राज्य का नाम बुन्देलखण्ड हुआ। इस राजवंश की प्रमुख राजधानी क्रमशः जगम्मनपुर-माहौनी (यह स्थान वैदिक कालीन अपने इस यजुर्होति देश में 'पचनदा' के निकटवर्ती क्षेत्र में स्थित है) गढ़कुण्डार, ओरछा, लिधौरा, टीकमगढ़ रही हैं।

वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हमारे लोकजीवन में, हमारी ही अज्ञानता के कारण, जो प्रदूषण आ गया है, उसे हम, वेद-वेदांगों का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करके भली-भाँति समझें, चिन्तन करें और अपने अमूल्य लोक जीवन को प्रदूषण मुक्त बनायें। वर्तमान में आज भी विशेष परिस्थितियों को छोड़कर वैदिक परम्परा से समृद्ध, सनातन धर्मानुयायी प्रत्येक यजुर्होति (बुन्देलखण्ड) देश के निवासी परिवार के आँगन में, परम पुनीत 'यज्ञवेदी' और 'तुलसीघरा' है। प्रत्येक शुभ अवसर पर इनकी पूजा होती है, यह सब यजुर्होति देश (जुहौति, बुन्देलखण्ड) के निवासियों की श्रद्धा का जीवन्त प्रमाण है। साक्षात दर्शन है।

- लोक संस्कृति शोध संस्थानम्,
गरौठा जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली की दृष्टांत बतावे वारीं कैवतें

- डॉ. डी.आर. वर्मा 'बेचैन'

बुन्देलखण्ड के एरिया में जौन भाषा बोली जात और देहातन में ऊकी जादा प्रचार मिलत, ऊ भाषा खाँ बुन्देली कात। ईकी विस्तार भौत है। हरेक भाषा की तरां बुन्देली भाषा में लाखन कैनावतें समाज में रोजऊं बोली जातीं। इन कैवतन खां समाज में बटोरवे की जरूरत है। प्रसिद्ध साहित्यकार स्व. श्री कृष्णानंद गुप्त गरौठा (झांसी) वारन नें आज सें ७० वर्ष पैलां जे कैनावतें भौत बटोरीं तीं। कैऊ भइयन नें काम करो उर आज भी कर रये।

इन कैवतन में भौत सी ऐसी है, जिनके पछाउं कछू न कछू कथा कहानी छिपी है। ऐसअई कछू कहावतें बानकी के रूप में अपुन पढ़ें उर उनकौ मजा लें।

खजरी के बामुन ना बनों - एक बामन हते। वे खजरीं पकी पकाई टोरवे खां एक खजरी के पेड़े पै हिम्मत बांद कें चड़तन ती चड़ गये। खजरी ऊँची ती होतई है। नैचें जैसई देखी सो उनके अंडा सटक गये। अब वे कंपन लगे। उननें सोसी कै हांत छूटत ती नेंचे गिरे उर मरे। हिम्मत बांद कें नेंचे उतरवे खां देवता सुमरन लगे। अपने देवता खां उन्नें कै दई बोलना वदना कै महराज हम पांच नारियल चड़ांय नेचें सावित जां के ताँ उतर जाय। तनक सरके। तनक नेंचें आये फिर देखी नैचें बोले म्हाराज हम तौ चार नारियल चड़ांय। तनक और सरके सो फिर बोले हम तौ तीन नारियल चड़ांय। एसई ऐसें वे खजरी पै सें जैसई धरती पै आये, पांव जमाये, खजरी छोड़ी उर बोले हम तौ एकउ नारियल ना चड़ांय। हम तौ अपने हुनर सें सरक सरक कैं आये। मतलब जौ भओ कै जब कौनउ काम अटक जात तौ आदमी मुलक त्याग करवे तैयार हो जात, उर फूँद निपकी सो उकौ मन बदल जात कै जौ तौ हमई ने अपने बूते पै जौ काम कर लओ। उर पैल की सब भूल जात - सौ कैवत चल गई - जे तौ खजरी के बामन हो गये।

रेवन ककवाये की कुतिया - बुन्देलखण्ड के झांसी जिला की मऊरानीपुर तैसील में एक गांव गुरसरांय रोड पै रेवन है औ ओई के पच्छिम में ३ कि.मी. करीब पै ककवारा है। एक दिना रेवन उर ककवाये में दोई जगां कौनउं पंगत हती। कुतिया नें सोसी कै पैलो रेवन की पंगत खाबूं सो रेवन तांय चली फिर ककवाये की पंगत की बास आई सो ऊकौ मन बदलौ कै पैलां ककवाये की पंगत खालें। उर ककवाय तांय खां लौट परी। चलत चलत फिर मन पलटो कै पैलां रेवन की पंगत खा लई जाय सो फिर रेवन गांव तरफ लौटी। को जानें एसई पुरिया सी पूरत बा ना रेवन की पंगत खा पाई उर ना ककवारा (ककवाये) की उर बीचई में टें बोल गई। ऊकी चोंतरिया कोउ नें सोउ उतै बनवा दई ती। मतलब जौ परौ हँतै कै लालच बुरई बात है। ऐसी ना करो चइये कै दोउ दीन से गये पांड़े हलुवा मिलो न मांड़े।' जा कैवत बुन्देलखण्ड के भौत गांवन में है।

झांसी गरे की फाँसी-दतिया गरे को हार। ललितपुर ना छोड़ियो-जौ लौ मिलै उदार।। - जा कहावत इन ठौरन की प्रभाव उर हालत बताउत कै झांसी भौत दुखदाई है, उर दतिया भौत सुख दैवे बाव नगर है, उर ललितपुर में उदारई उदार की खावे मिलत। जांदा उदार जब ना मिलै सौ छोड़ दें। पुरानी कहावत है। देशकाल के अनुसार सब चीजें बदल गईं अकेलें कैवतें तौ चलतई जा रईं।।

औरत बे यार नई- मर्द बफादार नई - जा कैवत बुन्देलखण्ड के नर नारिन पै है। कै इतैं की जांदा औरतें अपने पति खां बातन में भरमांय रतीं उर चोरी छिपे अपना दोस्त भी बनाये रतीं। ऐसी बात आदमिन के लानें भी कई गई कै इतै के आदमी जांदा तर वफादार नई होत, नमक हराम होत। अकेलें जा कैवत अब कौनउँ महत्त की नइयाँ। हर जांगा उर हर समाज में अच्छे बुरये सब नर नारी होत।

भेलसा की तोप - जब कोऊ काऊ खां भै बतावे धौंसें देत तौ वे कऊं कऊं मौकई पै कै देत कै "वे कुन भेलसा की तोप आँय?" मतलब कैबे की जौ भओ कै भेलसा में किले की तोप हती बा इतनी गर्जना करत्ती उर नर संहार करत्ती कै सौंड़रा हो जात्तो। तब सें जा कैवत चल गई भै कै कारन भेलसा की तोप नोंई वे।

धवाकर कौ आला - मऊरानीपुर सें गरौठा रोड पै एक ठकरासी गाँव धवाकर है। इतै बरसा के मौसम में कोउ आला बांच रये ते। जा परम्परा बुन्देलखण्ड में अबै भी है कै बरसा सें आला अथाइयन पै होत। कछू आला बँच गओ सो एक दूसरे दाउजू आ गये-वे बोले हमनें नई सुनो छोड़ सें बांचो। बँचइया ने दाऊजू कये से, फिर छोड़ से बाँववौ चालू कर दओ। इतेक मैं एक औ दाऊ आ गये। वे बोले फिर छोड़ सें बांचौ हमनें तौ सुनो कई नइयां। कौ गौर करै वौ आला दाऊअन के मांम बच नई पाओ। सौ कैवत चल गई कै धवाकर कौ आला बनांय फिरत।

अपनी अपनी परी आन-कौ जावै चमरौरा कान - कौनऊ गाँव में एक बड़े आदमी कौ परवार रत्तो। ऊपरवार की बँउयें बिटियाँ सब-चाल-चलन कीं खराब हती। उनके घेरे लरका कौ काज भओ। फर्द बनी। नेवतआ भओ। सबने खबर करी कै कोउ रै तौ नई गओ। मौड़ी बड़ी एक दूसरी बिरादरी के सें प्यार करत्ती। ऊने फट से कई कै हमाय जान तौ बै रै गये। हलकी बिटिया ने कई अपने यार की खबर कै फलाने रै गये। ओई परवार की एक जनी पटैल

के प्रेम में फँसी ती वा बोली कै पटैल दाऊ जू खां नेवतो कै नई? एइतरा सें अपने अपने नाव बताओ। इतैक में घर की मालकिन आई उर बोली कै - "अपनी अपनी परो आन-को जावै चमरौरे कान। वा घर की मालकिन चमार कक्का सें दिल जान सें प्यार करत्ती। ऊने कई चमार कक्का की कोऊ खबर नई कर रओ। उतै को जा रओ नेवतौ करावे।

सोसी कयें मौसी कौ काजर - एक लरका अपनी मौंसी कें रात्तो। मौसी विधवा हती। लरका खां समज आ गई ती। मौसी अपने यार सें प्यार करत्ती। मौसी अपनी मांग काड़ें बार ऊंछै। तेल लगाय जौ सब करवे के संगै बा काजर सोऊ लगाउत्ती। एक दिना ऊ लरका खां राई न आई औ ऊनें मौसी सें हिम्मर कर कें धर पूंछी। वौ बोलौ कै 'मौसी! मौसिया तौ हैईं नइयां, तुम जौ काजर की पै लगाउतीं' फिर कातन तौ देर भई, लरका पै मार घलतन देर नई भई। मौसी नें डील कहे एक करकें लरका कौ मों सुजै दऔ। तब सें जा कैवत चल गई कै 'सांसी कयें मौसी कौ काजर।'

बरा खानै तै (अच्छा) - एक आदमी नें कऊं पैलऊं पैल बरा खाये। ऊखो बरा भौत साजे लगे। ऊकी जनी मायके में हती। मायके सें लुवा कें पैदल आ रओ तो। बरा की याद मन में हती। एक जांगा गली में छौटी सी नरवा मिलो सो ऊनें बी नरवा (छोटी नदी नाला) नाकी उर मों सें निकरी - ऊच्छा! फिर का हती ऊकौ बरा तौ गओ भूल। घरै आकें बोलो कै ऊच्छा बना। घरवाई बोली ऊच्छा कैसो होत? ऊने एक नाला सुनी। तमाम गारी गल्ला करकें अपनी जनी खां भौत मारो-पीटो। बोलौ कै हमें तौ ऊच्छा खानें- ऊच्छा बना। दै डंडा लात पनैयां। को गौर को, गांव पुरा की लुगाई जुर आई। एक बोली -'राम राम! काय लला तुमें शरमई नईं आई। देखौ तौ तुमनें तौ बरा सी सुजै दई मार-मार कें।' फिर का कानें! वौ मूरख फटाक सें बोलो - 'हां, हां, जेई तौ बरा, जेई बरा तौ आय खानें ते। जेई बरन के बनावे की तौ हम ईसें कै रये ते। जा सुनकें सबनें ऊ मूरख की भौत हँसी उड़ाई और उयै खूब तांसो'।

घी देतन नर्रयात - एक जजमान के घरै कथा बँचने ती। जजमान नें अपनी जनी सें कई कै आज बतर अच्छौ है। हम खेत बखरन जा रये। पंडित कथा बांचन आंय सो कथा के बाद उनें शुद्ध घी कौ भोजन बना दियो। खूब घी खुवाइयो। पंडित जी खां ऊकी जनीं नें कथा के बाद बड़े प्रेम से शुद्ध घी के बने भोजन कराये। पंडित जी नें सोसी कै पलका डरो अई है - कछू लोट लगा लें। 'काय कैं खाकें पर रइये उर मार कै भग जइये।' सो पंडित जी लोट गये। को कये लोटिबे की देर भई उर पंडित जी उसरेंट कै खा गये ते। सो सो गये उर मों बांके घुरकन लगे। जजमान की जनी नें ना जगाओ। जब हार सें ऊकी आदमी आओ सो ऊनें देखो कै पुरेत महराज तौ सो रये उर मों सोउ बांय। ऊनें कई होय न होय जनी ने घी कम खुवाओ। वो बोलो। काय री! पंडित जी खां शुद्ध घी खुवाओ? ऊने कई - हओ! फिर जे मों काय बाँय? बोलो कै ल्या और घी उर करछुली ल्या? बा लेत आई। ऊके आदमी नें करछुली में धरकें घी उर आग पै गरम करकें-कड़का कें पंडित जी के मों में धार बांद कें डार दओ। घी डारतनई पंडित जी कौ मों भुंज गओ। भगत फिरें पंडित जी उर नर्रयात फिरें कछू कैना पाय। सबने पूंछी - का भइया का बात है? बौ बोलो कै कछू बात नइयां - जे घी देतन नर्रयात्।

'माँ तेलिन उर बाप कसाई-जी के घरै धोबिन व्याई। खुद विलोरा ना करै पांड़े जी- होन दो जेंबा खाई।' - एक परिवार में सबई औरतें लै जोरा की हतीं। चरित खराब हतो। पइसा खूब हतो। ऊ परवार में लरका को व्याव आओ। सबई नेवतें में बुलाये। कछु वामन खुसुर खुसुर करन लगे। एक चतुर पुराने पंडित खाँ उनकौ सब पतौ हतो। उतें कई कै 'माँ तेलिन उर बाप कसाई-जी के घरै धोबिन व्याई। खूद विलोरा ना करो पांड़े जी- होन दो जेंबा खाई।' तुम काँ तक निनवारी करत? जौ परवार तौ सब ऐसौ है।

भैंस ना मठा ऊसई लठौ लठा - कौनऊं गाँव में दो भइया हते। एक खेती पाती करत्तो। दूसरौ उपरफट्टी घर कौ काम काज करत्तो। दोउ अनपढ़ हते। एक दिना हलके भइया नें कई कै अपुन एक भैंस लै लो तौ ठीक रै। तुम बखर हांकौ, हम भैंस चरांय। दूद घीव की कमी ना रै। बड्डौ भइया बोलो, ठीक है। जा तौ बताव दोय को? हल्के ने कई चाय जो दो लै। भौजी दो लै। भौजी ना दोय तौ जा (ऊ की जनी) दो ले। बड़ौ भइया बोलो उर जमाय कौ? हल्के ने कई। जा भी कछू बात है। जेई जमा दै। फिर बड्डौ बोलो भांय कौ? ऊके कदोई देवरानी जिठानी भालें। ई में का परेशानी है। फिर बड्डो भइया बोलो। काय रे उर नेंनू को उठाय? फिर छोटो बोलो कै छोटी उठाय नेंनू कौ लोंदा। फिर का भई विथा। बड़े की ककरा चटकौ। वौ बोलो काय रे! उर तोई भौजी ना उठाय। ऊने कई छोटी उठाय। फिर बड़ो बोलो तोय भौत दिमाक खराब है। बड़ी अई उठाय। छोटे ने फिर कई छोटी उठाय। इतनी सुनतनई बड़े ने हलके खां उतार पनैयां दै दै उर कान लगो कै बोल बड़ी उठाय नैनू कौ लोंदा। बड़ी उठाय। बोल बड़ी उठाय नैनू कौ लोंदा कै नईं। उर वे दोउ गुथ गये। को गौर करै। पुरा के जनी मांस जुर आये। सबने बीच बचाव करो। पूछी का बात है? दोउ भइया आज काय लर परे। बड़ौ बोले - जौ कात कै छोटी उठाय नेंनू कौ लोंदा। सबनें पूंछी काय कौ नैनू? बोलों भैंस कौ। सबनें कई कौन भैंस? कां है? बोलो कै अबै लुबी है का? लैनें आय है। तौ सब जनन नें उनकी हंसी उड़ाकें कई कै 'भैंस नामठा, ऊसई लठौ लठा'। ई में शिक्षा के महत्त की शिक्षा सबखां मिलत है।

- ग्रा. पो. स्यावरी, जिला झांसी (उ.प्र.)

सिब्बू गये राम जी जानें

- डॉ. गौरीशंकर उपाध्याय 'सरल'

जेठ कौ मइनाँ अपनी गरमी कौ पूरी जोर दिखा कें अबई दो चार दिनाँ पैलाँ विदा लें गव तौ औ असाड़ लग गव तौ। सो हर सालन की तराँ ई साल सोउ देइ देवतन खों जल बरसावें खों मनावे कथन, बिल्लन औ जात्तरन कौ लग्गा लग गव। काय कै "जलई तौ जीवन" कुआत जी सें सब जीवन खों अन्न पानी मिलत औ हार खेत लहलहा उठत। आज के दिनां हमाय गाँव के लोग लुगाईंअन नें खैरबारे (नारे) के हनुमानजी बब्बा की जात्तरा (यात्रा जात्रा) तें करी ती। सो पुरा परौस की जनीं माँसे भोरई सें अपने अपने घर के टड क्र, उसार निपटा के डला डलियँन में खाबे-पीबे कथा पूजा कौ सामान और भाँड़े बासन लै कै खैरवारें पौंचन लगे। हमाये घर केऊ एक एक कर जान लगे। जनी माँसें रोटी पानी के कामन खाँ निपटाबे पैलाँ पीच गई। घर सूधौ कई रय सो घर रखावे हम घरई बने रय। छोटी भइया सिब्बू अपने गुइयां रामजी के संगै सोऊ घरै बनी रऔ। नेंक देर दोऊ घर के कलुआ कुत्ता संगै खेलत रय। फिर बोले कै हम दोऊ झिन्नत (झिन्ना) सपर कें अबई आए जात, हमें जान देओ। सुनकें हमनें हटक दऔ कै नईं घरई सपर लेओ, हम नईं जान देत, काय कै अबें तुमन खों नदी तला झिन्नन में पैरबौ ठीक तराँ नई आउत। जाकै कें हम एक पोथी पढ़न लगे। फिर पतौ नई की बेराँ दोउ पिछवाड़े की दोर होर घर सें गोल हो गए। जब मेव ध्यान गव तौ धक्की खाकें रै गव। अब हमनें घर की तारी लगाव और जासोस कें सपरबे चल दऔ कै उतईं सें ढूँढू कें सिब्बू खों संगै लिबा ल्याँव।

बैटके भइया साहब के बाग में हो के मैऊँ छोटे झिन्न जा पौंचौ। उतईं हमाँई परौसिन दो भुजाँई सपर खोर रई ती, अपने उन्न की धोबा धाई कर्रइतीं हमनें अपने पैरत के उन्ना चापचा के एक कुदाऊँ धरे और बगल की जामुन पै लदे बदे जामूँ ललचया कें उनखाँ खावे चल दये। हाँ जाती बेरां जौ गौर जरूर करी कै जो परौसिन भौंजी मोसें रोज हँसी ठिठउअल करततीं आज पतौ नईं काय गुमसुम रै गईं। तनकइ देर बाद मैं जामूँ की एक बड़ी गुच्छा लै कैं लौटो तौ का देखौ कै ऊपर के बड़े झिन्नाँ (झरना) सें पुरा परौस के कछू मोड़ा गिदवद् देत घर ताँई दौरे जा रय औ परोसिन भौजाई हड़बड़याँनीं अपने अपने दौल्लन में उन्नाँ कपड़ा धर कें घर ताँई तेजी से चल दईं, न मोंसें कछू बोली, न कछू बात करी। मेव माथौ ठनकौ कै का बात है मन में शंका उठी की उठी रै गई, हल नईं मिलौ। हमऊँ नें जल्दी जल्दी सपरौ औ बड़े झिन्ना, तला पै सिल्लू खों ढूड़ी तलासी। जब कऊँ पतौ नईं परौ तब उदासी घरै लौटयाव।

नेंम टैम भऔ कै हमाई मताई हमें और सिब्बू खों रोटी खावे को बुलावे बब्बा की मड़िया सें घरै आ गई। तब हमने उनै बताव कै सिब्बू बिना बताँय सपरवे चले गये ते। हम तला झिन्नन सब जाँगा ढूँड़ आए कऊँ नईं मिले। घबड़ा के मताई झिन्नाँ तला गाँव भरे में रोउत विलखत ढूड़त रई कऊ कछू पतौ नई परौ। रामजी सें पूँछन चाई सो ऊखो उके घरवारन ने छिपा लव, जा कैकें टरका दऔ कै वौ कऊँ कढ़ गव, घरै नइयाँ। रोउत बिलखत मताई जैसई उनके घर सें बायरै कढ़ी कै हमाय बड़े दद्दा (ताऊ) लल्तपुर (ललितपुर) से पेशी कर बस सें सड़क पै आन उतरे। उनै पतौ परौ कै सिब्बू रामजी के संगै हते सो उनने ऊके बब्बा (खरू बबेले) सें कई कै रामजी खो बुलाऔ। उनने कइ कै पतौ नईं रामजी काँ कढ़ गव। ई के संगै जा सुँदा कइ कै सिब्बू के संगै नईं हतौ राम जी।

उनकी घबड़ाहट औ कैबे को हाव भाव देख बड़े दद्दा के मन की शंका पक्की हो गई कै जे कछू छिपा रय औ झूठ बोल रए। राव बातें सुन गुन के बोले "हो न हो शिब्बू झिन्नन मेंई डूब गओ। सो वे दो चारजनन खों संगै लैकें बड़े झिन्ना जा पौंचे। जो इतेक गैरौ कै हाँती डूब जाय। झिन्नन पीच के बनगाँव बारे गोविन्दास कक्का औ रम्पोसी धोबी नें बड़े झिन्ना में डूबा साद कें तरी में खोजबीन करी। पैले डूबा में दोउअँन खों कछू पतौ नईं परौ। दूसरे डूबा में बनगाँय वारे ऊपरे आकैं बोले "कछू अटानों तौ है पतौ नई का है।" तीसरे डूबा में शिब्बू खों पकरें ऊपर उतरा आए। सिब्बू खों देखतनई रोबा गाई मच गई। गांव भरे में पलक झपकतन खबर फैल गई। हमाये घर के सामनें आदमियँन कौ जमरखा लग गव। घर में पुरा परौस में कुहराम मच गव। पुरा परौसी हाय हाय करन लगे। हमाई मताई, बउआ, कक्को, बुआ, बैनें दहाड़ मार जाँ तौ गिरे पुरे गैर होश हो गए - पानी कें किंचा दै दै एक खों उठायै, तौ गस्त में दूसरौ गिर परै।

बड़े दद्दा कक्का शिब्बू खों लैकें सरकारी अस्पताल पौचे कै दवादारू सै स्यात् ठीक हो जाय। डाँगधर नें जाँच कर, टका सौ जुआब दै दव कै अब कछू नईं हो सकत सरीर मट्टी हो गव। ऐई बीचाँ बड़े दद्दा नों घर बारन की हाय तोबा, गस्त, रोबा-गाई की खबरें पौंची सोवे घरै भगत आए। उतै पुरा-परौस के माँसन ने पंचनामों बनाव और मट्टी ठिकानें लगावे जल्दी जल्दी धुबकटी लै गए औ चिता पै धर कें बार दऔ। इतै बड़े दद्दा नें हँसारी मंन्ना (पिता) नौ खबर पौंचाई। वे आई नईं पाए कै खेल खतम। दूसरे दिनाँ बड़े दद्दा नें नन्ना सें कई कै हमें तौ कछू दार में कारौ लगत। काय कै झिन्नन पै अपएं पुरा परौस केई मौड़ा हते। हो न हो उतै कछू झगड़ा टंटौ भव हुइये औ हो सकत काऊ ने शिब्बू खों जबरन डुबा दव होय सो रपोट कर गुप्त जाँच कराए चइएँ। नन्नाँ नें जुआप दऔ अब

कछू नई हो सकत, लाश जरी पै का सबूत बची। जा बात बड़े दद्दा के गरें नई उतरी। वे जाँच करावे कों, रपोट करबे पै जोर देत रये। उनकी मंशा दुष्टन खों दंड दुआवे की अधूरी रई। दुखी हो उनने गाँव छोड़बे कौ मन बना लव और गंज-बासौदा जाकें उतई रैबे की ठाँन लई।

सिब्बू की मौत कौ पहाड़ टूटै दो तीन दिनाँ हमाए घरै चूलौ नई जरौ, रुआँयटौ मचौ रऔ। बड़े दद्दा तालबेट छोड़ गँज बासौदा चले गये और फिर वे मरतन मर गए तालबेट नईं रए। हाँ जब कभूँ बाबा कैसी फेरी जरूरी लगा जातते। वे ऊँचे पंडित हते सो मालवा में खूब पुजे फले फूले औ उतईं रैनाँरू बना कें रये, मर गये।

शिब्बू की अकाल मौत सें दो तीन दिन घर वारन के मों सें अन्न की सीत नईं लगी सबनें रोउत किलपत विलपत अफसोस करत अँसुआ दारत काल काटी। उतै सिब्बू की अकाल मौत के रंज दुख में शिब्बू कौ गुइयाँ रामजी असाध बीमार पर गव। कारन, वाय सिब्बू की मौत कौ कछू न कछू भेद राज पतौ हतौ तीऊ घर वारन नें डाट डपट के चुप राखौ। वौ भीतरई भीतर सदमा सें घुटत रऔ सो भयंकर तेज बुखार चढ़ बैठौ औ बेहोशी में अंड बंड बकन लगौ। ऊकी हालत दिन दूनी बिगरी देख गाँव के और बाहर (बबीना) के डाँगधर बुलाये गये। जाँच कर उनने कई कै ई के दिमाग पै गैरौं झटका लगो। सदमा से उबरबौ कठिन हो रऔ, कै तौ जौ आँदरौ कै बैरौ कै गूँगा, कछू भी हो सकत। हाँ सावधानी बरतें जाकी जान बच सकत।

जी दिना वे डॉगधर रामजी की जाँच कर रए ते ओई दिनां हमाई मताई जिनें हम जिज्जी कतते रामजी के घर के सामूँ वारे घर की गुरसी सें आग लैबे कंडा लैके पौंची तबई गैरहोशी में बड़बड़ात रामजी कै रऔ तौ - ''भइया सिब्बू हमें माफ करियो, हम तुमें बचा नईं पाए' जा बात सुनतनई हमाई मताई धक्की खा कैं रै गई। वे जा बात घरै कत आँई। घर भर तौ पैलऊँ सै जान्त रऔ कै सिब्बू की अकाल मौत को भेद राम जी छिपाएँ, पै रामजी काहे खों बतान लगे, लेकिन ईसुर नें इतनौ तौ उगलवाई दऔ कै रामजी सब जान्त। अब रई ईसुरी डंड की बात सो रामजी आधे गूँगे पूरे बहरे, कम दिमाग के जैसे तैसें जिंदगी ढो रये। रई हमाए उनसे पूछ्वे की बात तौ उनकी आध ी अधूरी जिन्दगाँनी देख कै हमें उनईं पै दया आ जात। हाँ वे अपने खों कसूरवार मान्त जा उनकी आँखें और हाथ जोरवे की समय की मुखमुद्रा बताउत सो हम कछू नईं बोलत। काय कै हमाय सिब्बू उततेई दिनाँ कौ संग दैवे आएते और विधना की लिखी कों को मैट सकत।

अब तौ जब कभूँ हमें अपने छोटे भइया सिब्बू की खबर आउत ऊकी भोली सूरत आँखन के आँगूँ झूलन लगत और हाय साँस के संगै जो भाव आउत कै ''सिब्बू गये राम जी जाने'' - काय कै राम जी इतनौ तौ गैरहोशी में बकई गये ते कै ''सिब्बू हमें माफ करियो हम तुमें बचा नईं पाए।''

- सरल साहित्य संगम, ६७/१७-ए,
सिविल लाईन, झांसी (उ.प्र.)

साउन की संजा

- मनमोहन पाण्डेय

साउन की संजा है कितनी सुहानी।
अँदयारी घिर आई बरसत है पानी।।

गज्ज रए बदरा उर चमक रई बिजुरिया।
गइयाँ घर लौट आई लग गई लौलइया।
दूद पिअन काजें घरै रमा रए लबइया।
घर घर में खुसी छाइ गब रई कजइया।
संजा की बेरा भइ आरती सुनानी।। अँदयारी....।।
भइया लुबा लाये बैनन खों मायकें।
सखियन सें हालचाल कै रई मुसकाय कें।
भाषी सें नोक झोंक हो रइ बुलयाकें।
चार दिना गम्म खाव काये खाँ रिसानी।। अँदयारी....।।
गाँउन में गोबर की कीच मची भारी।
माछी उर मछरन की फौज बड़ी भारी।
मटकी की घर्र-घर्र घर घर है जारी।
दई मठा नैंनू महेरे की त्यारी।
झूल रई झूलन पै बिटियाँ मनमानी।। अँदयारी....।।
ढोरन खाँ घास-पास पटा ल्याईं काँदी।
बारी-बगैचन सें टोर ल्याईं माँदी।
देउर उर भौजी की कट रई है चाँदी।
भइया ए परदेसै भौजी सिर्रयानी।। अँदयारी....।।
तालन पुखरियन में मेंढक टर्रावें।
जगाँ जगाँ झींगुर मिल-मिलकें झिल्लावें।
बिना प्रान-प्रीतम के विरहिन दुख पावें।
पपीहा उर मोरन की बोली सुनानी।। अँदयारी....।।
दिन-दिन भर काम करें रातन भर गावें।
सैरन की भजनन की तानें सुनावें।
ढुलकन मंजीरन उर झांझें झनकावें।
कछया-ढिमरया-राग खँजरी खनकावें।
धुवया, चमरया सारंगी सुनानी।। अँदयारी....।।
सुक्ख-दुक्ख झेल दोष विधना खाँ देकर।
खैबे खाँ लटौ मोंटौ बीमारी घर घर।
जिमीं की लड़ाई मुकदमें की ठोकर।
टपक रई अटारी हो पाई ना छौनर।
चिंता हो रई भई बिटिया सियानी।। अँदयारी....।।
जगाँ-जगाँ जुआ होत धरत फिरत गाने।
गाँव-गाँव ठर्रा की खुल गई दुकानें।
पीपी कें लरका भोंरन से मस्ताने।।
सबई लो दादा भए को की-की मानें।
जँजर पँजर हो गए तन आ गई गिरानी।। अँदयारी....।।

- मऊ चुँगी नाका, टीकमगढ़ (म.प्र.)

मेलन कौ मेला

- अजीत श्रीवास्तव

भौतइ हल्ला सुनत रये, सुनतई-सुनतई वनवास कौ टैमई तौ निकर गऔ, तब भई किरपा कि ''बसारी कौ मेला'' देखबे-तकबे कौ औसर आ गओ। विद्वानन नै कई की बड़ी परसिद्ध मेला है, साल कौ साल मेला भरत, हजारन दरशकन कौ मेला जुरत, मुलकन, जनन कौ मेला होत, कोऊ कत तीसक हजार, कोउ कत बीसक हजार जुरत, कौनउ नै बताव कि ऐसौ लोगन कौ मेला भरत कि गिनई नइ सकत। जा भी सुनी, कि सबई कौ मेला, सबरे बिरादरी कौ मेला आ लगत। कुजानै कब सें जौइ आय सुनत रए। सो मन में हुलास उठत रई कि ऐसो कैसो महत्ता कौ मेला है, घूमबे कौ मेला है, मनभावनौ मेला है, कैसौ हाट बाजार कौ मेला है, कोई कत तो असली मेला है, एक दार हो आऔ सो यादगार कौ मेला आ बसारी में भरत। सुनत-सुनत मन के विचारन के मेला नैं जोर पकर लऔ, सो टेहरी से आठ नौ जने मां जाबे कड़ई तौ गये।

गैल में काऊ नै कइ, बुन्देली सम्मेलन कौ मेला तकबे लायक भरो जात, उतै बिलात जनन में होड़ कौ मेला सो लगो रात, यादगार मेला दर्शन होने ही चइये। एक जने पैलें तक आये ते, वे बतान लगे, नऔ ढंग कौ मेला औ नैनाभिराम मेला बसारी गाँव कौ मेला होत, होत-करत हमाई गाड़ी मेला ढिंगा बातैं करत-करत में पोंच गई, ऊ जगा दूरई सें चमचमात दिखानी, धन्य है ऊ भूमि कौ मेला, सजौ सो दिखा परो, दूरई सैं कलरव कौ मेला कानन में परन लगो, सो मस्ती कौ मेला जग गऔ तन-मन में, जिंदगी के मेला में जीवंत मेला देखबे मिलनै हतो, भीर दिखानी, लगी धक्कन कौ मेला सोइ आए इच्छन कौ मेला जोर पकर गऔ।

जैसइ हमाई पी-पी पनी ठाड़ी होबे वारी जगा पै रुकी, सो पैलें तो मानव मेला देख कैं, आंखें फटी सीं रै गई। ऐसी प्रेमभाव कौ मेला दिखानौ, सो हिरदे की भावनाऔं कौ मेला खिल उठो, सुन्दर मेला हतो। सांसी कयें कल्पना के बाहर कौ मेला हतो। कानन में बादयन कौ मेला पिड़रओ तो रागन कौ मेला सुना परो। सजावटई निरख कैं लगो जौ तौ भइया; इतै कौ मेला नइयां, परलौकिक मेला आय, हमाई पुरातन संस्कृति कौ मेला आय, नचबे कौ मेला आय झूमत-डोलत मेला आय, अद्‌भुत मेलादिखा परो, हमई नईं, हमाए संगीयन कौ मेला बौ मिलन कौ मेला देखकें हिराने गदा सौ खड़ौ रै गऔ काबे कौ मतलब भौचक रै गऔ। बुंदेली बसंत को मेला भरवाबे वारन सें मिलन मेला भओ, सो रामा-श्यामा भई, रिश्तन कौ मेला बन उठो सो तन कौ मेला मुसका परो।

कोऊ नै कई अच्छे विचारन कौ मेला आ, आप औरन नै भराओ, उद्देश्य कौ मेला है ईसें जी जुड़ावे को मेला लग रओ, अकेलो खरीदबे-बेचवे वारन कौ मेला नौई, ना चीज-समान कौ मेला आय जौ तौ आत्मा कौ मेला, दिखात, रस भोगवे कौ मेला लगत। हम औरन की इंतजार कौ मेला ऊ मेला में उतरतई लगो। पूरौ हो गऔ। दुनिया के मेला आ तक, पै उतै तौ बैठाबे - पानी की पूंछबे वारन के करतव्यन कौ मेला दिखानो, ऊपरी नई मन कौ मेला से बैठवे खों कई सो पावन मेला लगो, ऊ टैम तौ प्रेम-अभिसार कौ मेला हतो, सबई आ-आकैं मिले, राजी खुशी लई, आशाओं कौ मेला सैं बढ़कें ऊ गाँव कौ मेला लगो। जौ तौ लगोई नई कि धनियन कौ मेला आये कि गरीबन कौ मेला आय, कि कौनऊ जात कौ मेला आय। अरे भइया, वौ तौ सूदे-सादे लोगन कौ मेला, जनमुन्सेलू कौ मेला हतो, मन भावे कौ मेला, वाह कैसो अमर मेला है विस्मय कौ मेला आ भरो तो। उतै के लोगन ने सम्मान कौ मेला सौ लगा दऔ सो लगो जौ तौ घरई कौ मेला आय। जौ रुपइया तानबे कौ मेला नौंई, उन्नत व्यवस्था कौ मेला आय, सुरग कौ मेला आय, जन-जन कौ मेला आय, बुन्देलखण्ड की जनता कौ मेला आय। जहाँ के मेला सें छूटकें प्रकृति के मेला में आ गये, सुख कौ मेला, जीने कौ मेला, उनके साहस कौ मेला देखकैं धन्न हो गये।

फिर मेला देखबे पिड़ गये सबरे, देख तक कैं लगो अकेलौ मनोरंजन कौ मेला नौंई। जौ शुभ मेला, साँझ कौ मेला, हरष कौ मेला, लोगन के सपनन कौ मेला, उजयारो मेला, सजो-धजो मेला, एक खास मेला आय। बाहरै खाबे कौ मेला लगो तो, कपरा-लत्तन कौ मेला लगो तो, पीबे जल पै लोग लुगाई कौ मेला हतो, सबरे साधनन कौ मेला हतो। येई सैं लोगन में उछाह कौ मेला खुशी उत्साह कौ मेला समारैं नईं समर रओ तौ। नरनारियन कौ मेला, मौंड़ी मौड़न कौ मेला, मेला भक्तन कौ मेला दलन पै दल कौ मेला, इकदमई नऔ मेला बना रओ तो। ऐसौ सतसंग कौ मेला सैं लगो जौ होत असली मेला, गाबे-गुनगुनाबे कौं मेला।

मंच ताई जाकै लगो तीरथन के मेला आ लगो, अनशासन कौ मेला, एकता कौ मेला दिखानौ सब पनी पनी जगा बैठे हते। सुंदर सौ मंच सुंदरताई कौ मेला झलका रऔ तो। ऊपै कलाकारन कौ मेला घूमत दिखानौ, फिर नचबे वारन कौ मेला आ गऔ फिर अभिनेतन का नाट्य मेला, फिर बजाबे वारन कौ मेला देख-देखकें मन जुरा गऔ, कैसो मोहक मेला हतो हो, इकाऊ जीवन्त मेला लगो, कला की सेवा कौ मेला आय लगाबे भराबे बारन की वीरता कौ मेला खौं धन्यवाद कैबे मन होत। उतै साहबन कौ मेला मजा लै रओ तो अफसरन कौ मेला हतो, बरे बरे विद्वानन कौ मेला हतो मईं गरीबन कौ मेला, दुखियन कौ मेला, निरधनन कौ मेला, प्रेमीजनन कौ मेला सोई संगै बैठो

दिखानीं। दो चार नगर के पच्चीस पचास गांव के लोग जुरे ते।

जो उतै हतो आनंद के मेला में डूब कै बुन्देली रस की भक्ति की मेला में आजादी सैं मजा लै रऔ तो। मई सेठन कौ मेला हतो, बूढ़े ज्वानन कौ मेला हतो जो हतो नैनन भातौ मेला हतो। नऔ-नऔ सौ हरियातौ मेला हतो, दूसरी दुनिया कौ रंगीन मेला हतो। नैन भर मेला घूमौ, दुख बिसरबै कौ मेला हतो। का का कयें हम। शब्दन के मेला कम पर रए। ऊ गौरवशाली मेला देखकें, होश उड़ाबै बारो मेला आ भरो तो। जो हरष ध्वनियन कौ मेला, उठ रओ तो सो लगो बुन्देलन के अधिकारन कौ मेला जोई है। चैल-पैल कौ मेला, मन झुलाबे कौ मेला, पनी पैचान कौ मेला पुरा सभ्यता की रक्षा कौ मेला आय, सीखबे-सिखाबे पाठ-पढ़ाबै कौ मेला आ भरत उतै। आत्मा सै मेनत कौ मेला, सब झौंक-झांक कै मेला नै अब ख्याति कौ मेला कौ रूप लै लओ।

ठेठ देहाती मेला नौंई उतै विज्ञान कौ मेला सोई दिखानी, साज-समानन कौ मेला अनोखो मेला मौलिक सौ मेला बन गऔ है। कौनऊँ कमी नईया ईखों भरबाबे वारन की का कयें वे तौ बुन्देलखण्ड की विरासत कौ मेला भरा कैं पूजा कौ मेला आ बना रये, उनके प्रदर्शन कौ मेला नौई, पुरातन कला परदरसन कौ मेला आय, उनके अनुभव कौ मेला नै ई बसारी मेला खौं आत्मसंतोष कौ मेला बना दऔ। कितेक मुसकलें, सैंकें, अलोचनायें झेलकें जौ अजूबौ मेला खड़ौ कर दओ, जौ चूकबे कौ मेला नइयां, हमें तौ आगलौ मेला की अबई सें हुलास लगन लगी। ऐसौ ज्ञान औ ज्ञानियन कौ मेला इतैई मिल सकत। उतै जो नई गओ समझो चूको है एक दार देख तौ आऔ फिर तौ कूका दै है तुमाये मन में।

- राजीव सदन, नायक मोहल्ला, टीकमगढ़ (म.प्र.)

घटोइया बाबा

- स्व. बाबूलाल गुप्त 'गुप्तेश'

(यह रचना लेखक ने स्वर्गवास के पूर्व बुन्देली बसन्त हेतु भेजी थी जो इस वर्ष छापी जा रही है - सम्पादक)

बुधवारा गाँव के गौंड़ बब्बा कौ नाँव असफेर भरे में बजो रव है। हरमइना की पूनों खों घटोई की डाँग में गाँव की चरोखर में पीपरा के नेंचें बाबा की बैठकी लगो करत है।

और मइनन की पूनो सें शरद् की पूनों कौ महत्तम औरइ रात है, सो आज बाबा के भगत अथाई में समा नईं रएते। जैसइ धनू माते (घोलना) की अबाइ चौंतरा पै भइ कै बिन्ती बान्ती करबे बारे तनक आँगें खौं सरक आये। तनकइ झेल में होम धूप जगन लगो जैसइ के गटरू नें टाठी बजाइ, अछाँई पढ़ी गईं, के धनू माते (घोलना) कौ मूँड़ हलन लगो। बाबा के भगत फुसफुसाये - 'लेव बाबा आ गये हैं।' झनझन कौ सुर ऊँचौ होन लगो। लेब चौंतरा पै बाबइ बाबा दिखान लगे। 'बाबा भौत कोप करें हैं।' बाबा के भगतन ने आजू-बाजू बैठे लोगन कौ कौतुक बड़ाब - 'अरारा बाबा कौ रौंम रौंम गुस्सां में है।' 'ओच्छा, ओच्छा।' अरे! बाबा तौ नौंअन सें चौंतरा की माटी करकूड़न लगे।' भगत हरष से जैकारा लगा उठे 'बोलो गौंड़ बब्बा की जै।'

बाबा के एक भगत ने जैसइ धूनी चेताइ, टठिया और जोर सें बजन लगी, अब तौ बाबा औरइ और खेलन लगे - 'ओच्छा ओच्छा, मैं हों गौंड़ घटोइया' काये रे तुमन ने मोरी जौ सत्कार करो है कै मोरी चौंतरइ खुदबा डारो। और आठें खों धुजा सिरीफल चढ़त तो कै नईं, ओइ भूल गए। ओइ पै गाँव की उर अपनी सुक सांती चाउत हौ।'

गाँव कौ मल्थुआ बाबा के आँगें निंहू परकें बोलो - 'माराज! कोठो शान्त करौ, मैं ऐइ साल अपुन कौ चौंतरा पक्कौ करबाँब, नव झंडा चढ़ांव, उर माराज! कन्या भोज करवाँव। मोरे लाने हुकम तौ हो जाय। मैं तीन बैठकन सें अपुन की ड्योढ़ी पै लिलार घिट्ट रव हों मोरी बिनै लग जाय माराज।'

बाबा नें हुँकारी भरी, बोले 'सुना सुना, तें का कात है, अरे मैं का जानत नइयाँ।' बानपुर बारी बहू की गोदी अबै लौ भरी नइयाँ, जेइ आ कव चाउत ते।' मल्थू खों भारी अचरज भव, कै बाबा तौ घट-घट की जानत हैं, ऐंन मोरे अन्तस खौं छू लव बाबा नें बोलो - अब अपुन सें का छिपो है माराज। अपुन तौ मोरे भीतर वारे लौ की जानत हौ। मल्थू खौं इकदम सें सुरत आइ कै पैली बैठकइ में तौ बाबा सें मैंने जेइ बिनती करी ती। 'बोलो मोइ बिनती लग जाय तौ अपुन खौं मौं माँगी पूजा पाइ देंहों।'

बाबा मल्थू सें कछू कावे कै जाने काय बाबा उचट कें चौंतरा के खालें परे उर अपने भगत गबरुआ खौं ललकारो। अरे गोरू कप्पा खात है रे।' काउ की समज में नईं आव कै बाबा का कै रय हैं। बाबा फिर चिल्लाय - 'अरे गोरू सें कप्पा खुबाँय लेत है रे, दुर! दुर!! दोरौ रे कौनऊँ। पै बाबा की बात बाबा की जोर जोर की जैकारन में उर टठिया की झनकारन में डूब गइ। लोग समझे बाबा कछू पूजा पाइ के लानें कै रय हैं।

तनकइ देर में धनू माते के मूड़ पै से बाबा जानें कितौंय बिला गये और बाबा दौरे झुरमुटन तरप जाँ बाबा की धूनी सिलग रई ती। मनइ ने समजो बाबा भभूत उठाबे जा रये हैं पै बाबा लपके धूनी के पास लगे छेबला के पेड़ की तरप जी पै उनकौ आजइ कौ बिसाब नव गमछा लटको हतो और जी कौ आदें से जादाँ एक गऊ माता पिरेम से चबा चुकीं तीं।

अब धनू माते गऊ माता के सामूँ बिन्तवार बने ठाँड़े ते उर गौंड़ बब्बा के भगत गौंड़ बाबा की कौतुक भरी लीला देख रय ते।

- बड़ामलहरा, जिला छतरपुर (म.प्र.)

धरम-जात कौ झूठौ झगड़ा

- डॉ. दुर्गेश दीक्षित

गाँव के लंमरदार पलका पै परे-परे सुक की नींद सो रये ते। इतेकई में उनें अजान कौ सुर सुना परो। सुनतनई उनकी नींद उचट गई। तनकई देर में उनें संकर जू कौ घंटा सुना परो। शंख झालर उर आरती के सुर सुना परे। सोसन लगे कैं अपनें गाँव में तौ हिन्दू-मुस्लिम कौ कौनँऊ भेद नइयाँ। उतै मस्जिद है उर उतै मंदिर। हिन्दू मस्जिद में चले जात उर मुसलमान मंदिर में जाकैं अपनौ माथौ झुकाउत हैं। ईद के दिना गाँव की सबई जातन के हिन्दू मुसलमान भईयन के घरै जाकैं गरें मिलकैं सलाम करत। उर मुसलमान भइया दसरये के दिना गाँव की अथाई पै जाकैं सबसें रामा-स्यामा करत उर सबके संगै बैठकैं प्रेम कौ पान चबाउत। और तौ औ निवते हकारन तक में सब एक दूसरे के संगै बैठकें खात पियत हैं। एक दूसरे के व्याव-काजन उर भले-बुरये कामन में आऊत जात। फिर आपस में भेद भाव कैसो?

अरे! अपने गाँव में तो मनसुख पंडितजी उर शकूर चचा की दाँत काटी रोटी है। घूमबौ, फिरबौ खाबौ-पीबौ उर नारे रिस्तेदारियन में आबौ जाबौ सब संगई संगै होत रत। शकूर चचा के लरका की बरात में मुसलमान कम उर हिन्दुअँन की संख्या सबसें जादा दिखात ती। ऐसई मनसुख पंडितजी की बिटिया के व्याव में शकूर चच्चा सर्वे सर्वा हते। ऐसी कानात कई जात कैं लै पपइया सो दै पपइया। रामदीन राय के खेतन नों कबरिस्तान हतो। जितै गाँव के बड़े बूढ़े मुसलमानन की कब्रें बनींती। साँसी कई जाय तो आज के आदमी खों धरम उर ईमान नईं दिखात। तनकई स्वारथ में आदमी डिग जात। रामदीन नें सोसी कैं इतै को आ देख रओ। इतै तौ अपनऊ राज है। उन्ने आव देखी ना ताव उर हरइया भर कब्रिस्तान जुतवाकैं फसल बुबवा दई। ऐसी कानात कई जात कैं सौ दिन चोर की उर एक दिन साव की। कभँऊ ना कभँऊ चूल की खाँई मजोटे हुन कड़तई हैं। मईनाक में गाँव के बड़े बूढ़े बसीर चच्चा गुजर गये। गाँव भर के मुसलमान औ हिन्दू उनें दफनाबे खौं कब्रिस्तान पौचे सबरन नें कब्रिस्तान में फसल ठाँड़ी देखी। ऊ बेरा नौ कोउ कछू नई बोलो, अकेलें भीतर-भीतर उनन में खुटर-पुटर सी होन लगी। तुर्कन के पुरा के शेख रमजान मियाँ भौतई गम्मखोर उर सुलझे भये आदमी हते। उन्ने सोसी कै जादाँ हल्ला-गुल्ला करे सैं बात बिगर जेय उर मेर में फेर पर जेय। ऐसी कानात कई जात कै "ना ऊमर फोरी ना पखा उड़ाव।" कांसे कौ सुर कांसई में बनो रये तौ ईसें नोनौ औ का हो सकत। उन्नें सोसी कैं गाँव के चार भले आदमियन खौं जोर कैं पंचयात निपटा लई जाय उर उन्नें जैऊ करो। पंचयात में गाँव के लंमरदार, मनसुख पंडितजी उर सातई जात के सियानें उर बड़े बूढ़े लोग बुलाए गए। सबई जनें जुरकैं रामदीन राय के खेत पै पौंचे। सब जनन ने ध्यान सैं कब्रिस्तान में ठाँड़ी फसल देखी। जा बात सोरा आना सांसी है कैं पंचन में परमेंसुर होत। ईमें जात-पांत कौ भेदभाव नईं मानौ जात। मौका खौं देख कैं कोऊ लत्ता-लपेड़ी उर मौं देखी पंचयात नईं करन चाउत तो। सबरन ने मिल जुरकैं बिचार करकैं फैसला दओ कै देखो भइया ई में सोरा-आना गल्ती रामदीन राय की है। वे फसल काट कैं कब्रिस्तान देबैं ऐई में उनकी भलाई है। फैसला सुनकैं सनाकौ छा गओ। सबरे मुसलमान भइया ता करकैं रै गये।

रमजान मियाँ बोले - धन्न है रे फैसला। दूद कौ दूद उर पानी कौ पानी कर दओ। जातौ हम सोसतई नई हते। उदनई सैं रमजान मियां के मन कौ मैल धुल गओ। चाय देस भर में क्याँऊ धरम-जात कौ झगड़ा होत रये। अकेलैं ई गाँव पै कौनँऊ असर नई परत तौ उतै तो पूरौ राम राज हतो। देस भर के हर गाँव कौ ऐसऊ हाल हैं उनमें क्याँऊ खुटर पुटर नईं होत। चाय कोनँऊ धरम उर जात कौ काय नई होय। सब एक दूसरे की हीर पीर में सामिल होकैं सहानुभूति दिखाऊत हैं। धरम जात की बात अलग है, उर मनुसता कौ व्योहार अलग है। ऐसी कानात कई जात कैं "जाके पाँव न फटी बिमाई वौ का जानें पीर पराई।" अरे जो आदमी आदमी खौं नईं चीनै वौ कायकौ आदमी? ईसें तौ पसुअई साजे हैं। जो संगै संगै चरकैं एकई संगै नदिया नरवा में पानी पियत हैं। बड़े बूढ़े जब कभँऊ एक जगाँ बैठत तो ऐसी चर्चा करन लगत। सांसी कई जाय तौ आज आदमी खौं आदमी कौ डर लगत हैं आज हर घर में विभीषन विराजमान है जो लंका काण्ड करा रये हैं। ऐसी कानात कई जात कै "घरई के कुरवा सैं आँख फूटत" उर कछू जनें जा सोऊ कन लगत कैं "घर कौ भेदी लंका ढाबै।" कविवर "वियोगी हरि जू" अपने ग्रंथ "वीर सतसई" में ऐसऊ एक दोहा लिख गये हैं - "भरों विभीषन पुंजते, यह भारत ब्रह्माण्ड। क्यों न होय गृह भेदते, घर घर लंका काण्ड।"

जी बेराँ पूरे उत्तर भारत में मंदिर-मस्जिद की भड़ भड़ मचीती ऊ बेराँ गाँव के लंबरदार उर रमजान मियां आपस में बतया रयेते। लंबरदार ने रमजान मियां से पूछी कै काय भइया जौ मंदिर-मस्जिद कौ कैसो हल्ला आय मचो है। रमजान बोले कै भइया कितै मंदिर-मस्जिद है। हम उत्ती दूर जाकैं का करें? हम इतै भये पजे हैं उर अपुन के सँगैं खेले खाये हैं उर अपुन सबरन के सामैं मरकैं ऐई भूम पै दफना दये जानें। अब बताव हमाओ-तुमाओ का विरोध? अपुन खौं तौ भइया इतै मिल जुरकैं रनें। मंदिर-मस्जिद तौ जैसों जौन हुइयै बनत मिटत रैय। हम औरन खौं जा होरी तौ इतै के नेता कुदाऊत। भेद-भाव पैदा करकैं ठाँढ़ें खेल देखत। ईसैं तौ अपुन खौं मिल-जुर कैं रनें है। धरम जात के झगड़ा में नई परनें। ऐई में अपुन सबकी भलाई है।

- कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

लोकगीतों में वृक्ष-वनस्पति संरक्षण

- डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी, सहा. प्राध्यापक, हिन्दी

अरण्योद्भवा कही जाने वाली भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक उपादानों नदी, झरनें, जलाशय, कुएँ, पर्वत वृक्ष वनस्पतियों सभी का विशिष्ट महत्व है। वृक्ष और वनस्पतियाँ तो धरती माँ के श्रृंगार हैं। आज बढ़ती हुई पर्यावरण की समस्या ने इनके महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। प्राचीनकाल में जब प्रदूषण की कोई समस्या नहीं थी। पर्यावरण पूर्णतः सुरक्षित था। तब भी हमारे क्रान्तिदर्शी ऋषियों ने मानव जीवन के लिए वृक्षों और वनस्पतियों की आवश्यकता का गम्भीरता से अनुभव किया और अनेक प्रकार के चिन्तन मनन के पश्चात् महनीय ग्रन्थों का प्रणयन कर वृक्षों एवं वनस्पतियों में महत्व को रेखांकित करते हुए उन्हें धर्म से जोड़ दिया जिससे भविष्य में मनुष्य इन उपकारक वृक्षों के साथ किसी प्रकार की कृतघ्नता का दुःसाहस न कर सके। वृक्षों और वनस्पतियों में देवत्व की स्थापना कर उनकी पूजा का विधान किया गया उनके संरक्षण को पुण्य तथा विनाश को पाप माना गया है। 'मत्स्यपुराण' में पुत्रों से भी अधिक वृक्षों के महत्व को बताया गया है -

'दसकूप समावापी दस वापी समोह्रदः।
दसह्रदसमः पुत्रो, दसपुत्र समोद्रुमः।।'[1]

अर्थात् दसकूप के समान पुण्य एक पोखरा बनाने में, दस पोखरों का पुण्य एक तालाब बनाने में, दस तालाब का पुण्य एक पुत्र से तथा दस पुत्र के समान पुण्य एक वृक्ष लगाने से होता है।

आज का विकासोन्मुखी मानव वृक्षों और वनस्पतियों से आच्छादित वनों का निर्ममता से विनाश कर रहा है। जबकि वैदिक साहित्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ऐसा कोई भी वृक्ष नहीं है जिसका हमारे जीवन में उपयोग न हो सके। वेदों में अनेक प्रकार के वृक्षों एवं वनस्पतियों की स्तुति की गई है उन्हें देवतुल्य मानते हुये उनसे अपने कल्याण की कामना करते हुए उनके प्रति धार्मिक आस्था प्रकट की गई है। ''नवो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः। वनानांपत्ये नमः। ओषधीनां पतये नमः। वृक्षाणां पतये नमः। अरण्यानां पतये नमः।''[2]

'यथा वेदे तथा लोके' अर्थात् जो वेद में है वही लोक में हैं लोकसाहित्य और लोकसंस्कृति में प्रकृति आधारभूत है। वृक्षों एवं वनस्पतियों के साथ जीवन का अटूट और अनन्य सम्बन्ध लोकरचनाकारों ने भी उद्घोषित किया है तथा हरे भरे वृक्ष लगाने का आग्रह कर लोक कल्याण की शुभ कामना की है -

'वन बिरछा लगाव महाराज हमाव मन देखवे खों।
वन बगिया में आम नीम पीपर छैंया खों बरगद लगाव।
जंगल में मंगल छेवले फूले टेसू की रंगत बिछाव महाराज।
महुआ इमली बेरी तेन्दू खिन्नी बकौली खुवाब महाराज।
झर झर बरसे मेघा रसीले पग पग में बिरछा उगाव महाराज।'[3]

यजुर्वेद में मन्त्रों में इन वृक्षों वनस्थ्त्रूशैं को रुद्र रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है -

''या ते रुद्र शिवा तनः शिवा विश्वहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृऽजीवसे।''[4]

वेदों में वृक्ष-वनस्पतियों की सेवा रुद्र की सेवा मानी गई है, क्योंकि अपने कल्याणकारी रूप में ये वृक्ष वनस्पतियों शिवरूप हैं, जो कार्बनडाई ऑक्साइड रूप विष का पान कर सांसारिक प्राणियों को ऑक्सीजन रूप अमृत प्रदान करते हैं तथा अपने विनाशकारी रूप में रुद्र अर्थात् संसार को रुलाने का भी कार्य करते हैं पर्यावरण असंतुलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न विनाशक परिस्थितियाँ इसका ही स्वरूप हैं। लोक रचनाकार भी वृक्षों वनस्पतियों के अत्यन्त परोपकारी एवं विनाशकारी दोनों रूपों से बखूबी परिचित हैं इसीलिए उच्चस्वरों में उद्घोषित करता है -

बिरछा लगाव पेड़ पौदा लगाव अपनो जो जंगल न काटियो।
इनखों न सताव हरियाली बढ़ाव अपनों जो जंगल न काटियो।
ई जंगल में मिलत है जीवे को वरदान।
प्राणवायु औषद मिलै वन है देव समान।
देव के समान वन देव के समान अपनो जो जंगल न काटियो।[5]

'वाराह पुराण' में वृक्षारोपण के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि जो व्यक्ति फल-फूल और छाया देने वाले वृक्षों को लगाता है वह सद्गति प्राप्त करता है -

'यः पुमानरोपयेत वृक्षान् छायापुष्प फलोपगान।
सर्व सव्वोप भोगाय स याति परमागतिम्।'

भारतीय परम्परा में वैदिक वागङ्मय से लेकर लोक साहित्य तक सर्वत्र विशाल पीपल से लेकर लघुकाय दूर्वा भी पूजनीय एवं संरक्षणीय है। इनमें भी जीवन है ऐसा मानते हुए विविध तीज त्यौहारों एवं पर्वों पर इनकी पूजा का विधान है। भारतीय संस्कृति में पीपल वृक्ष को विशेष महत्व दिया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में 'अश्वत्थः सर्ववृक्षणाम्' अर्थात् सब वृक्षों में पीपल वृक्ष मेरा स्वरूप है कहकर इस वृक्ष की अतिशय महत्ता को प्रतिपादित किया है। वेदों में पीपल के अंग प्रत्यंग में देवताओं का निवास माना गया है। इसीलिए उनका प्रत्येक अंग पवित्र, पूज्य और तीर्थस्वरूप है तथा जीवमात्र के लिए कल्याणकारी है। यह वेदोक्ति इसका प्रमाण है -

'मूलेब्रह्मा त्वचा विष्णुः शाखायाश्च महेश्वरः।
पत्रे पत्रे च देवानाम् वृक्षराज नमोस्तुते।'

अर्थात् पीपल की जड़ में ब्रह्मा, त्वचा में विष्णु और शाखाओं में शिव का वास है। उसके प्रत्येक पत्र में देवताओं

का निवास है। ऐसा ही भाव लोकगीत की इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुआ है -

गोरी हारै न जाव पीपर के पत्तन में देवता।

पीपल को जगत का पालक माना गया है। लोकजीवन में इसे साक्षात् जनार्दन का रूप माना गया है। ऐसा माना जाता है कि रविवार के दिन इस वृक्ष पर लक्ष्मी जी का निवास होता है। शनिवार के दिन शनि पीड़ा से मुक्ति हेतु इस वृक्ष के नीचे दीपक रखने एवं परिक्रमा करने का महत्व है। लोकमान्यता है कि पीपल, श्रीफल, नीम, आंवला एवं पांकड़ ये पाँच वृक्ष जहाँ एक स्थान पर होते हैं वहाँ का वातावरण अत्यन्त पवित्र और स्वास्थ्यवर्धक होता है। अनवरत् आक्सीजन उत्सर्जित करने वाले पीपल को देवसदन मानकर सोमवती अमावस्या, पिपरदसा एवं दसारानी के गड़ा लेने पर पूजन का विधान है -

मोरी पीपरी के हरे हरे पात धुजा फहराइ रहे।
सोने के थारा में जेंवना परोसेउ।
जेवइ छइयां में सब देउतानि।
सोने के गडुआ गंगा जल पानि।
पीवहिं छइयां में सब देउतानि।

कुछ वृक्ष इतने पवित्र माने गए हैं कि उनका स्पर्श और प्रणाम करना मनुष्य के लिए अत्यन्त शुभ और मंगलप्रदायक है। 'गोपथ' ब्राह्मण में शमी वृक्ष को समस्त अमंगलों का विनाशक माना गया है -

'अमंगलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च।
दुःखस्वप्ननाशिनीं धन्यामर्पयेऽहं शमी शुभाम्।'

इसी प्रकार बिल्ब, नीम, आँवला वट एवं पाकड़ आदि को पुनीत मानते हुए अत्यधिक महत्व दिया गया है। शिव जी को बिल्ब पत्र एवं शमी की पत्तियां चढ़ाना विशेष फलदायी होता है। बिल्ब के तीन पत्तों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिदेवों का वास माना गया है। स्कन्द पुराण में बिल्ब वृक्ष में पार्वती तथा तुलसी में लक्ष्मी के निवास का उल्लेख मिलता है -

पार्वतीविल्वयवृक्षस्थां लक्ष्मीं च तुलसीगताम्।
आदौ सर्व वृक्षभयं पूर्व विश्वमजायत।।[६]

बिल्ब पत्र में उष्णता को शान्त करने की शक्ति होती है। पेट के रोगों में बेल के फल एवं मुरब्बा लाभदायक होते हैं। नीम, आँवला और वटवृक्ष की गणना, विशाल वृक्षों में होती है। चैत्रशुक्ल प्रतिपदा के दिन नीम की पूजा अर्चना करके कालीमिर्च सहित इसकी पत्तियों का सेवन करने से रोगादि विनष्ट होते हैं। सर्वरोग हरो निम्बः की मान्यता वाले इस वृक्ष के काटने का निषेध लोकरचनाकार ने इन शब्दों में किया है -

निमिया कौ पेड़ौ जिन काटियौ बाबुल।
निमियां की शीतल छाँह मोरे लाल।
सीतल छइयाँ बिलमा लेऊ बाबुल।
निमियाँ की बड़ी बड़ी बाँह मोरे लाल।

कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को आँवरी नमें या अक्षय नवमी कहते हैं। इस दिन आँवला की पूजा विशेष फलदायी एवं महापातकी पापों से मुक्ति प्रदान करती है। लोकमान्यता है कि आँवला वृक्ष की उत्पत्ति तपोलीन समय में ब्रह्मा के मुख से गिरे एक बिन्दु से हुई थी। यह औषधीय वृक्ष है जो शरीर में व्याप्त पित्त वमन प्रमेह आदि का हरण कर शरीर को स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनाता है। लोककवि ने इसके शक्तिवर्धक गुणकारी अमृतमय स्वरूप का वर्णन इन शब्दों में किया है -

नीनो अपनो देस गुड़ानों वन में भरो खजानों।
हर्र बहेरो और आँवरो मूर सजीवन जानों।
पीपर नीम प्राणवायु के प्रथम देवता मानों।
दूध बरा की संग बताशा धात रोग में छानों।

चौड़ी पत्तियों वाले वटवृक्ष का हिन्दुसंस्कृति में विशेष महत्व है। लोकमान्यता है कि प्रलय के समय जब सारा संसार जलमग्न हो जाता है तब भगवान बाल रूप में इसी वृक्ष की पत्ती पर बिराजते हैं।

हस्तार विन्देन मुखार विन्दे पादार विन्दं विनियेशयन्तम।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बाल मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।[७]

वैशाखमास की शुक्ल तृतीया और ज्येष्ठ मास की अमावस्या के दिन अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति हेतु सौभाग्यवती नारियाँ वटवृक्ष की पूजा करती हैं एवं गीत गाती हैं -

आई बरगदाही बरगद पुजावौ।
काँचे ही सूत का हरदी रंगावौ।
बट बाबा के फेरे लगावों।
एक फेरा में मांगो मैं मांग का सैंदुर
दूजै में चुरिया भर बाँह।

यह वृक्ष त्रिकाल में भी नष्ट नहीं होता इसीलिए इसे अक्षयवट कहते हैं। ऑक्सीजन का यह सबसे अच्छा स्रोत है। इसके आसपास का वातावरण अत्यन्त स्वच्छ और रोग विनाशक होता है। पीपर, बरगद और गूलर वृक्ष के पारस्परिक संघर्ष से एक प्रकार की स्वर्णिम ज्वाला निकलती है।

इन वृक्षों के अतिरिक्त, आम, जामुन, महुआ, पलाश, नारियल, चन्दन एवं केला आदि वृक्षों को भी पवित्र एवं उपयोगी माना गया है। वृहस्पति के दिन केला, हलषष्ठी के दिन महुआ, काँच पलाश और जरिया की पूजा होती है। आम, जामुन एवं पलाश के पत्ते एवं लकड़ियाँ मांगलिक अवसरों पर उपयोग में लाई जाती हैं। यज्ञीय कार्य में हवन के लिए पलाश की ही लकड़ी का उपयोग होता है। चन्दन का वृक्ष शीतलता प्रदान करने वाला होता है, इसीलिए हिन्दू संस्कृति में आज्ञा चक्र के बीचों बीच चन्दन लगाने का महत्व है। लोकगीत में चन्दन वृक्ष का उल्लेख नारी अन्तःकरण के उल्लास को

ध्वनित करता है -

मोरे आंगन चंदन बिरवा सो लहर लहर करे महर महर करे हो।
ओहि तरि चढ़ि बोले एक कागा कि बोल सुहावन हो।
कि कागा नैहर से आये कि हरि जू पठाये हो।
कागा कौन संदेश तुम लाये कि बोल सुहावन वचन सुहावन हो।
न हम नैहर से आये न हरि जू पठाये हो।
गौरिया आज के नौवे महिनवा ललन तोरे हुइहै हो।
सोनवन चौंच मढ़ैयो सो दूधभात दैहों कि दूध भात दैहो हो।
कागा जो मोरे हुईहैं होरिलवा बधैया बजवै वे शहनइया बजवैवे हो।

वनस्पति जगत में तुलसी का पौधा परम पवित्र तथा औषधीय गुणों से युक्त सर्वाधिक लाभदायक माना जाता है। वैसे तो वर्ष भर तुलसी की पूजा होती है। किन्तु कार्तिक मास में तुलसी पूजा का विशिष्ट महात्म्य है। कार्तिक पूर्णिमा को तुलसी का विष्णु जी के साथ विवाह होता है। तुलसी विष्णुप्रिया हैं। अतः जहाँ तुलसी का पौधा होता है वह स्थान देवतीर्थ बन जाता है। तुलसी के चारों ओर का वातावरण पवित्र हो जाता है। उसकी वायु से कोसों दूर तक की आवोहवा शुद्ध हो जाती है। प्राणवायु का अक्षय स्रोत यह पौधा अनेक असाध्य रोगों का विनाशक है। 'चरक-संहिता' में इसके औषधीय गुणों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है -

'हिक्काकासविष्श्वासपार्श्वशूल विनाशनः।
पित्त कृफ्फवातध्नः सुरसः पतिगन्धनुत।।[८]'

लोकगीतकार ने भी तुलसी के महत्व को इन शब्दों में रेखांकित किया है -

करिया तुलसी साँवर वान तुलसी लाँई सदा फल पाँई।
पाँच पदारथ सोना पाँई तुलसी पदारथ यहि जग माँही।
जनम जनम के पाप कटत करीं तुलसी महारानी नमो नमः।

वृक्षों एवं वनस्पतियों के प्रति इस पुण्य भाव ने जनमानस को इनके प्रति धार्मिक संवेदना से ओत-प्रोत कर दिया है। वैदिक ऋषियों ने इन प्राकृतिक तत्वों में केवल देवत्व की भावना ही नहीं प्रतिस्थापित की वरन् इनके साथ मानवीय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का स्नेहिल मार्ग प्रशस्त किया उनके प्रति वात्सल्य भाव भी व्यक्त किया। वृक्षों को धर्मपुत्र माना गया है। 'महाभारत' में वृक्षों को धर्मपुत्र मानकर उनके संरोपण एवं संरक्षण का परामर्श दिया गया है -

वृक्षदं पुत्रवद वृक्षास्तारयन्ति परत्र तु।
पुत्रवत् परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।

वृक्षों को तरु भी कहा जाता है क्योंकि ये पुत्र के समान तारने वाले एवं पुण्य प्रदान करने वाले होते हैं तरु का व्युपत्तिपरक अर्थ ही है - तारयति जनान् दुःख सागरात इति तरुः।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कुपुत्र या धर्महीन पुत्र से अपयश की आशंका रहती है किन्तु धर्मपुत्र वृक्ष तो सदा ही कल्याणकारी होते हैं एवं परोपकारी होते हैं, जिनकी छाया में बैठकर पथिकजन विश्राम करते हैं -

'बहुभिर्वत किं जातैः पुत्रैधर्मार्थवजितैः।
वरमेकः पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनः।।'

इस प्रकार से वृक्ष वनस्पतियाँ प्राणीमात्र का कल्याण करने वाले होते हैं, लेकिन आज इनके कल्याण का दायित्व मनुष्य पर निर्भर है। हमारे क्रान्तिदर्शी वैदिक ऋषियों एवं लोकमनीषियों ने इनकी हिंसा को पाप और इनके संरक्षण को पुण्य माना है। इन्हीं प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के कारण आज भी आस्थावान व्यक्ति हरे भरे वृक्षों को काटने का साहस नहीं करता। अपितु इनके संरक्षण और संवर्धन का भरसक प्रयास करता है। आवश्यकता इस बात की है कि भौतिकता की अन्धी दौड़ में शामिल बौद्धिक वर्ग इस पुण्यकार्य में अपना योग दे और प्रकृति के साथ साहचर्य भाव से जुड़े तथा अपनी पारम्परिक संस्कृति एवं लोकमान्यताओं को पवित्र अन्तःकरण से स्वीकार करें। तभी धरती पर सुख शान्ति एवं समृद्धि का साम्राज्य स्थापित होगा।

संदर्भ -

१. मत्स्य पुराण १५४/५१२
२. यजुर्वेद - १६-१७-२०
३. चौमासा, वर्ष १४, अंक ४४, जुलाई-अक्टूबर १९९७, पृ. १५१
४. यजुर्वेद - १६-४९
५. अक्षर अलख जगायें जगदीश रावत, पृ. ६१
६. स्कन्द पुराण - १५-२१
७. श्रीमद्भागवद् गीता- वेदव्यास
८. आयुर्वेद पंचशती- डॉ. सुरेन्द्र कुमार पाण्डे, पृ. ३८

- शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

व्यंग्य गीत

- गोविन्द यदुवंशी

कउंआ कोसें कोउ मरो नइयाँ।
इन बातन में कछु धरो नइयां।
उन्ने कइ ऊँट बिल्इया लै गई।
काये जूँ लै गइ व कैसें लै गई।
हाँ जू लै गइ उठा कै लै गई।
कोउ ने कछू करो नइयाँ।
इन बातन में कछू धरो नइयाँ।
ऊँट की चोरी निहुर के न होवे।
चाय कोउ कितनो चतुर चोर होवे।
बखरी खालइ किवारे खालये।
सोने को ठाठ रओ नइयाँ
चोरन के घर खेती हो रइ
चोरी से कोउ बचो नइयाँ

- अध्यक्ष, म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पन्ना (म.प्र.)

पं. घनश्याम दास पाण्डेय ''साहित्यभूषण'' द्वारा रचित महाकाव्य -

भीम पुराण के तृतीयखण्ड का षोड्स अध्याय

- प्रस्तुति मनमोहन पाण्डेय

दोहा : अब षोडस अध्याय में कहों बुन्देला वंस।
वीर चरित्र विचित्र शुभ, हंस वंस अवतंस।।
सुमर शारदा मातु को, गणपति पद सिरनाय।
वीर अंजनीनंद पुन वंदत हों सुखदाय।।
वीर बुन्देला वंस के चरित ललित अभिराम।
सुयश धवल तिनके कछुक बरनै कवि घनश्याम।।
भानुवंस अवतंस कुल प्रगट भये श्री राम।
अवधपुरी सरजू निकट रजधानी सुखधाम।।

चौपाई -बालमीक मुनि चरित बखाने-रामायण में सब जग जाने।
माने गये ब्रह्म अवतारा-सकुल निशाचर रावण मारा।
तिनके तनय भये जुग भाई-लवकुश नाम धरे रिषिराई।
कुश ने कीन्ह अवध रजधानी-लव लाहौर देशनृप मानी।
कुश अंतर हरि ब्रह्म नरेशा-पीढ़ी सप्त रहे अवधेशा।
भये विहंगराज उन पाछे-कीर्तिराज उनके सुत आछे।
कीर्तिराज की कीरत करनी-काशी की पाई शुभधरनी।
रहे अनार्य वंश के पापी-मार भगाये प्रबल प्रतापी।
राज सिंहासन आप विराजे-शान्ति मई जग बाजे बाजे।
गहिरदेव काशीश्वर भूपा-तिनके सुनिये चरित अनूपा।
गहिरदेव सें सातई पीढ़ी-जैसंदेव बनाई सीढ़ी।
विन्ध्य राज की पदवी पाई-दीन्ही विन्ध्यवासनी माई।
मंदिर जीर्णोद्धार करायो-मन वांक्षित फल सेवक पायो।
विन्ध्यराज के पुत्र प्रतापी-सौनकदेव देवि जिन व्यापी।
शौनकदेव विंधेला जाये-उभय बुन्देला नाम धराये।
अर्जुन वर्मा तनय बखाने-वीरभद्र अति वीर दिखाने।
जिनकी जुगल व्याहता रानी-सुंदर रूपवंत सुखदानी।

दोहा - प्रथम नार के चार सुत राजासिंह सुखरास।
नारि दूसरी के तनय सेवक जगदेव दास।।

चौपाई- जगदेव हेमकरन सो कहिये-तिनके चरित सुनै मुद लहिये।
सवति पुत्र तिनको दुख दीन्हो-राज विभव जिस भाग न दीन्हो।
चितैउ दास अतही दुख पाये-विन्ध्यवासनी के ढिंग आये।
शरणागत दुर्गा की जाकें-सन्मुख खड़े रहे मुँह बाकें।
कर पूजन अस्तुती सुनाई-रच-रच भक्तें भक्ती गाई।
प्रचलित राग देश में वाकौ-जगदेव पंडा की शुभ शाकौ।
भागीरथी तीर पै मंदिर-विन्ध्याचल सुंदर गिरि कंदिर।
ताल तमाल रसाल रसीले-तरुवर वट तट विकट छहीले।
अश्वकर्ण गोकर्ण सुहावन-मृदुल वरन गज करन लुभावन।
निम्ब कदंब जंबु तरु नीके-पाटल पटल खजूर सभी के।
चल दल बकुल वृक्ष त्रैलोचन-कटदुम्बर पुन सोच विमोचन।
सघन सपल्लव शीतल छाया-जगदेव ब्राज गये तज माया।
अमित कालजप तप तिन्ह कीन्हे-पै दुर्गा वरदान न दीन्हें।

दोहा - निज सिर अर्पन करन हित, गही पान किरपान।
विन्ध्येश्वरी प्रसन्न हूवै दरसन दीन्हें आन।

चौपाई -महि में बूँद गिरन नहि पाई-प्रगटी विन्ध्यवासिनी माई।
सेवक के सिर कटन न पाये-विन्ध्यवासनी भुजा बढ़ाये।
चंदहास गह अति सुख माना-अभयदान पुन प्राण प्रदाना।
रुधिर बूँद मन हेतु चढ़ाई-बालक होय भूमजन भाई।
विजयी होत जीत महिषहै - वीर बुँदेला सब जग केहैं।
प्रगटहिं संतति वंस उजागर-सो बुँदेल के वंसी नागर।
करहें मध्यदेश रजधानी-नाम बुंदेलखंड सुखदानी।
द्वादस शतक विक्रमी जानो-ललित चरित घनस्याम बखानो।
यमन आक्रमण भये प्रारंभा-मूल बादशाहत के खंभा।
वीरभद्र सुत प्रथम संघारे-चारों भ्राता गये रणमारे।
वाराणसी सिंघासन आसन-वीर बुंदेले की छिति शासन।
जगदेव दास पुत्र बलवाना-वीर बुँदेले सब जग जाना।

दोहा - कालींजर अरु कालपी, कानपूर कन्नौज।
कंचनपुर काशी तलक, वीर बुँदेला फौज।।

चौपाई- सत्तरखान वीर सनहारे-अरु उमराव बहत्तर मारे।
वीर बुँदेला के सुत बाँके-कर्णदेव के सुनिये शाके।
नाम करन के प्रचलित नीके-कर्ण क्षेत्र घण्टा काशी के।
काशीदेव कहाये सोई-अर्जुनपाल पुत्र पुन सोई।
इनके समय यमन की फौजें-भारत पै कर धाई औजें।
जिन कासी अधिकार जमाये-वीर बुँदेला मार भगाये।
अर्जुन पाल सर्वजन आये-ग्राम महोबा नगर बसाये।
सहनपाल सुत अर्जुन केरे-जैजाभुक्त महोना डेरे।
वीरपाल लघु बंधु बुँदेला-गढ़कुंडार में रहे चंदेला।
कहत जुझौत नाम सें कोई-गढ़कुँडार गढ़ सुंदर सोई।

दोहा - बसै बेतवा तट निकट-सुन्दर गढ़ कुंडार।
सो जुझौत के नाम सें कहत खँगार पुकार।।
प्रथम गौड़ राजा रहे, फिर पाटली पुत्र।
तीर्थराज के मौर्य पुन किये पराजय सत्र।।
मौर्य वंश विध्वंश कर शासक भे पड़हार।
मऊसहनियाँ में करी रजधानी गुलजार।।
उदै चँदेलों कौ भयो अष्ट शताब्दी माँह।
मनियाँगढ़ खजराहे में परमल भे नरनाह।।

चौपाई- एकादस व्यासी सन लेखौ पृथ्वीराज राय सो देखौ।
थे चंदेल परमाल नरेशा-पृथ्वीराज आदि भुवनेशा।
नदी महूज तीर सिरसागढ़-युद्ध हेतु दोउ वीर रहे अड़।
नृप परमोलं वीर रण हारे-गौरव मान मर्द कर डारे।
युग नव येक येक सन नाही-गजनी गौरी की परछाहीं।
राय पिथौरा जे तहँ मारे-गढ़ कुंडार स्ववस भये न्यारे।

खेत सिंह सामंत महीपा-सो खँगार कुल कौ कुलदीपा।
नभ वसुवर्ष राज्य तेहि कीन्हो-यमन कटक पग थमन न दीन्हो।

दोहा- यमन आक्रमण बहु कियै पै स्वतंत्र कुंडार।
राज खँग रन हौंत में क्षत्री नृप सरदार।।
अंतिम नृप कुंढार के हुरमत सिंह खँगार।
कछुक बुँदेला मातहत शूरवीर सरदार।।

चौपाई- सोहनपाल महोनीवारे-मंत्री सहित भ्रात से न्यारे।
ते सहायता हित इत आये-धीर प्रधान मंत्र फैलाये।
दुजवर विस्नुदत्त शुभनामा-गढ़कुंडार बसै सुखधामा।
साहूकार अमित धन जाकें सुंदर सुता एक सुत वाकें।
अग्निदत्त चाणिक अवतारी-तारा बहन तासु सुकमारी।
विष्णुदत्त सन रही मिताई धीर वीर नृप लिये बसाई।
धीर प्रधान पुत्र गुण मंदर-ताके नाम दिवाकर सुंदर।
सोहनपाल सुता सुकुमारी-तासु नाम शुभ रूप कुमारी।

दोहा - सोहनपाल नृपाल के सुत सहजेन्द्र कुमार।
मंत्री सह निज कुटुम सह बसे आय कुंढार।।
आश्रित हुरमत सिंह के, सोहनपाल बुंदेल।
सूरवीर क्षत्री रहे, दलपत सिंह चंदेल।।

दोहा - हुरमत सिंह नरेश के नाग देव सुत जान।
रूप कुमारी के लिये धरे हथे रन प्रान।।

चौपाई- धर्म विरुद्ध विचार अनीती-ज्ञात ज्ञात संबंध सुनीती।
कहाँ खँगार पुमार बुन्देला-कहाँ मुकट कहे पद रज चेला।
व्याह काज संबंध घनेरे-होत समान जात कुलहेरे।
नाग चलत रहो रूप कुमारी-होहि बुन्देलन नार हमारी।
बैरभाव की आग अवासी-धंध की कुल बुन्देल कुल आसी।
सकुल खंगार नास कर डारे-हुरमत सिंह नाग रणमारे।
आप भये दुर्गेश बुन्देला - सोहनपाल आद सिर सेला।
प्रथम बुंदेलखंड के राजा-सोहनपाल धरे सिरताजा।
निधि निधि जुग विधुसन पहचानो-सोहन पाल अंत दिन जानो।

दोहा - सोहन पाल महीप के सुत सहजेन्द्र कुमार।
सन तेरह छव्वीस लग लियो राज कौ भार।।
सन पंद्रा सौ सात लग कियो बुंदेलन राज।
इस प्रकार कुंढार की रजधानी रणवाज।।
मगर बसायो ओड़छा राजा रुद्र प्रताप।
गादी आय बुंदेल की परी यहीं से छाप।।

चौपाई- भूप प्रताप रुद्र इन केरे-जग जाहर भये सुजस घनेरे।
तिनके द्वादस पुत्र सुजाना-देस बुंदेलखंड संताना।
उदयाजीत त्रतिय सुत भाई-उन जागीर महेबा पाई।
प्रेमचंद तिनके सुतराजा-वीर बुंदेलन के सिरताजा।
निज भुजबल से राज बढ़ाये-तीन पुत्र तिन सुंदर जाये।
कुँवर कुमार सिंह पुन दूजे-मान साह ने खल दल भूँजे।
भगत राव परतापी तीजे-भूप ओड़छे के लख लीजे।
सिमरा सिहरापुर जागीरें-जुगल बंधु भोगी दोउ धीरें।
भगत राव के पुत्र सुजाना-चारु चार सुंदर बलवाना।
खंग राव अरु राव सुजाना-तिसरे चन्द्रसेन बलवाना।
चौथे चंपतराव दिमाने-बंदी जन जिन चरित बखाने।

दोहा - नगर महेवा में रहे चंपत राव दिमान।
नगर ओड़छा भूपवर सिंह जुझार सुजान।।

चौपाई- रहे जुझार सिंह त्रय भाई-नाम वीर हरदौल सवाई।
प्रबल पहाड़ सिंह लख लीजे-चंपतरा के सगे भतीजे।
संबत सोरा सौ जुग बीसा प्रबल बुंदेलखंड दलपीसा।
पृथ्वीराज कुमार बँधाये-दुर्ग ग्वालियर कैद कराये।
आये काम हजार बुंदेला-रण में चंपत राव अकेला।
चंपत चंपत भे चंगुल से-रामवाण लैसन अंगुल से।
बाँके खाँ सेनापत आयो-जहाँगीर ने ताहि पठायो।
कर नहि सको बार इक बाँका-कछू दिनन को खिंचो सनाका।
गजपुर में पुन कीन्ह चढ़ाई-सारवान सें ठनी लड़ाई।

दोहा - चंपत रा महराज के, सुनिये चरित विशाल।
पाँच पांडव से भये पंच बंधु रिपु काल।।

चौपाई- प्रथम सार वाहन सुत जानों-दूजे अंगद राव बखानों।
तीजे रतनशाह अलबेला-चौथे राय गुपाल बुँदेला।
पंचम छत्रसाल रणधीरा-पिता समान हरी परपीरा।
सुनिये सारवान करतूती जैसी करी वीर रजपूती।
देख प्रबल बैरी दल उमड़ो-सावन भादों जस घन घुमड़ो।
सकल बेधरमी भये नरेशा-चंपतराव तजे निज देशा।
बगसीं यमन तजी जागीरें-भोगन लगे आप कर छीरें।
करन लगे अपने पुन काजा-लूटमार बन बैठे राजा।

दोहा - वर्ष चतुर्दस के रहे-कुँवर वीर रणधीर।
खेल हार में एक दिन, खेलें सरिता तीर।।

चौपाई- कुँवर राव खेलें रण रंगा-रहे सारवाहन तिन संगा।
यमन शाह सेनापत आयो-कर आक्रमण कुँवर पै धायो।
जीयत कुँवर को पकरन चाहो-सूरवीर मन रहो उमाहो।
जानी कुँवर बात जब जीकी-धनुष तीर लख तीर नदी की।
तुरत तीर कमठा गह हाँतन-मारन लगे यमन के साथन।
यमन सूर सब पाछे लागे-जल तज कुँवर शैल चढ़ भागे।
पीछे लगी यमन की सेना-हुक्म यही के कुँवर बचैना।
चक्रव्यूह अर्जुन सुत जैसें-घेर लिया शाही जल तैसें।
महारथी अभिमन सम जोधा-छांड़न लगे तीर कर क्रोधा।
देख पराक्रम भुजबल ताके-बैरी बीर प्रसंसत बांके।
सैनक सैन हजारन मारे-अल्ला चिल्ला रहे विचारे।
एक अकेल वीर उत बाँके-पिये दूध किन नहि निज माँके।
अधरम युद्ध कुँवर रन घेरे- तरकस और तीर तक हेरे।
चारहुँ ओरन दै रहे हल्ला-अल्ला अल्ला करहिं मुसल्ला।
मारे गये कुँवर रण माहीं-छत्री धर्मपीठ दई नाहीं।
संवद सोरह सौ चोंतीसा-शाह जहाँ दहली अवनीशा।
नगर ओड़छे की रजधानी-भई जीत सो भइ सुल्तानी।
तनय जुझार सिंह बलवाना-पृथ्वीराज तिलक परधाना।
चंपतरा की फिरी दुहाई-वीर बुँदेल ते उठाई।

शाहजहाँ सोइ सुध सुनपाई-सैनापत संग फौज पठाई।
भूम बुँदेलखंड सुखदाई-पानीपत में ठनी लराई।
जेठे सुत चंपत के सानी-मारे गये राख निज पानी।

दोहा - चंपत नृप रानी सुनी-वीरपूत करतूत।
सुध बुध बिसरी देह की - व्याकुल भई अकूत।।
करनी सुन धरनी गिरी-करनी समगम गात।
शोकाकुल मूर्छित भई-सिथल अंग भई मात।।

चौपाई- मूर्छित समय स्वप्न अस देखो-वीर सातवाहन सुत पेखो।
वीर भेषछात्री अलबेला-कमर कसेंकर लसें दुहेला।
तरकस कँधा कँधा बिच ढाला-तीर कमान हाँत में भाला।
कुँवर मातु को रहे बुझाई-मेरौ शोक करौ जिन माई।
तेरे गर्भ आय इक बारा-धरहों धरनी बिच अवतारा।
यमन शाह सो बदलौ लैहों-गोद मोद भर पुन सुख दैहो।
अस कह सो सुरधाम सिधारे-खुल गये जननी के दृगतारे।
पंचम छत्रसाल सोइ बालक-दीन हीन जननी कुल पालक।
संवद सत्रासत षट जानहु-जेठ शुक्ल तृतीया दिन मानहु।

दोहा - जन्मभूमि सहरा लखो, राज्य महेबा कीन्ह।
परनामी परना करी प्राण नाथ वर दीन्ह।।
वीर अंगना संग लै वीर बुँदेला ज्वान।
क्रुद्ध युद्ध रिस बस भयो, धरे हथेरन प्रान।।

चौपाई- चंपतरा डारहिं पुन छाये- जहाँगीर सेनापत छाये।
चंबल नदी तीर चहुँ ओरन-प्रागराज सुरसरि के छोरन।
देश बुँदेलखंड के खंडन-चंपतरा विजई कुल मुंडन।
शाहजहाँ की अनी हिरानी-वीर बुंदेला की भय मानी।
भूख न बासर नींद न राती-शाहजहाँ लख प्रबल अराती।
बादशाह पुन कटक पठायो-गज चढ़ स्वयं ओड़छै आयो।
राजनीति कछु हिरदे विचारी-राजा राज बिना नर नारी।
भूप जुझार सिंघ लघु भाई-रहे पहाड़ सिंह सुखदाई।
तिनको राज तिलक सोई दीन्हो-चंपत की दुख संपत छीनों।
भये पहाड़ सिंह महराजा-चंपतरा बुलवाये सुराजा।
मंत्र सलाह भूप संग कीन्हे-वीरा शाहजहाँ मिल दीन्हें।
दहानी सहंसाह दरबारा-चंपत को बकसी तरवारा।
कोंचे कालपी की जागीरें-राज बढ़ायो धीरें धीरें।
अनियत सहंसाह हिय ठानी-प्रगट पहाड़ सिंह सोइ जानी।
चंपतरा को तुरत जताई-चंपत चंपत तकी तराई।
करन लगे ज्यों की त्यों बातें-शाहजहाँ की देखी घातें।
मारी लात तजी जागीरी-लूटमार कर करी अमीरी।

दोहा - धार मालवा प्रांतभर, निज अधिकार जमाय।
पुरी अवंती भेलसा, लई सिरोंज छुड़ाय।।

- मऊ चुँगी नाका, टीकमगढ़ (म.प्र.)

आ गओ बसंत

- नीरज कुमार खरे

आ गओ बसंत, छा गओ बसंत
मौसम सुहानों, लाओ बसंत

कोयल की टेर, सुन कंत हेर
सरसों सिंगार, बाँकी बहार
प्रीतम कौ प्यार, लाओ बसंत
आ गओ बसंत, छा गओ बसंत

गेंहूकी बाल, कर रइ धमाल
आमन पै मौर, मौरन पै भौंर
दिन बड़े होत, सर्दी कौ अंत
आ गओ बसंत, छा गओ बसंत।

रवि रओ तलास, कां गओ पलास
मीठी सी गंध, चहके परिंद
हरसाओ मन, भाओ बसंत
आ गओ बसंत, छा गओ बसंत

मौसम सुहानों, लाओ बसंत
आ गओ बसंत, छा गओ बसंत

- शास. उत्कृष्ट उ.मा. वि. बल्देवगढ़

बुन्देलखण्डी गीत

- कु. प्रीति कुशवाह

हमरौ बुन्देलखण्ड नोंनों, हिनाँ उपजत खेतन में सोनों।
आमँन की डारन पे बैठी कोयलिया
हिनाँ भरी फूलँन सें मालिन की डलिया
फूलो से भरौ बाग सबै लगे नोनों, हिना उपजत....।।
मठा-महेरी, मगोड़ा और खीर
जे खाकें भइया भूल जै हौ पनीर
प्यारौ लगे हिनाँ को चबैनों, हिना उपजत....।।
घी चिपरी फुलकिया और कढ़ी
रहार की दार और बरा-बरी
आम को अचार लगे नोंनों, हिना उपजत....।।
देखौ किसाँनन की मैंनत रँग लाई
पीली सरसों फूली हरियाली छाई
सरसों के फूल लगे सोनों, हिना उपजत....।।
धरती माँ ने पहरी हरी चुनरिया
गाबै मल्हार सखीं देखकें बदरिया
धरती कौ हरो भरो कोनों, हिना उपजत....।।
पीपल की छैंया और कुअला कौ पानी
दिनाँ-रात हिनाँ हो रई है किसानी
बुन्देलखण्ड भारत को गैनों, हिना उपजत....।।

- आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

निरनय के आखिरी पल

- साकेत सुमन चतुर्वेदी

'दद्दा.... ओ.... दद्दा - तुम सुनत काअे नइयाँ'

'का है', हरिया ने अपनी मोंड़ी ताईं देखकें कई।

'मोय कसकें भूक लगी है'

'मटेल्नी में भीतरे धरीं हैं रोटीं, जाकें खालो।'

'तरकारी तौ है नइयाँ'

'रोटी में घी चुपरकें, शक्कर लगाकें और कट्टू बनाकें खालो।'

'नईं... आज कट्टू नईं खानें, आज तौ तरकारी खाबी।'

'ठीक है.. भीतरें चलौ, मैं नेंक में आ रओ।'

'जल्दी आइओ' - 'हओ'

बाप कों आश्वासन पाकें छबीली दौरकें घरकें भीतरें चली गईं। ईं मैंगाई सें परेशान हरिया नें झटपट बैलन के लानें सानीं बनाई, सानीं बैलन के सामें थान पै धर दई। हाथन खों पानी सें धोकें कदां पें धरी स्वापी सें हाथन खों पोंछत जैसई घर में घुसौ कै ठिठक कें रै गओ। ऊनें देखो कै कांसे की थारी में छबीली रोटी फैलाअें अपनी ऊंगइया सें इशारौ करत... कै रई... एक रोटी जा बाई की... एक रोटी जा दद्दा की... एक रोटी जा घन्सू भैया की... और जा एक रोटी हमाई.... बार बार वा गिन्ती दोहराकें रोटी गिन रई ती। दौरे पै ठाड़े हरिया खों कढ़े दिनां याद आन लगे... दस बरसई तौ भएं ऊके ब्याव खों जब अस्फेर के गांव की जुगनू ऊकी ब्यावता बनकें ऊके घरै आईती। छरछरी बदनवारी नोंनी नाकनक्सा वारी सांवरी जुगनू की आँखें कलींदे की फाँकन जैसी ऊकों मन मोह लेततीं। अपने अच्छे व्यवहार और बानी में जैसें बतेसा घोरकें बोलवेवारी, सबई के हिया में समाई रतती। दस क्लास तक पढ़ो हरिया संत कबीर खों अपनों आदर्श मानततो। उनई के रस्ता पै चलवे की कोशिश करकें निष्पक्ष बात करततो। खेतीबारी मिलजुरकें करकें दोऊ नौंने दिनां मौजमस्ती में काढ़ रअेते। दो साल ब्याव खों भअे कै जुगनू के पाँव भारी हो गये। कछू मईना बाद घर में खुसियन की जैसें बहार घन्सू के पैदा होवे से आ गई। घन्सू कौ पूरौ नाव हतौ घनश्याम।

घर कें द्वारें सोहर गँवन लगे। अपने व्यवहारियन की हरिया नें एक नौंनी छोटी सी पाँत दई। लेकिन हरिया खों जुगनू की कमजोरी की चिन्ता खाँय जातती। वौ ऊसें कामकाज नईं कराउततो औ शरीर के बारे में जब कभउँ सीख देत तो जुगनू - 'हमें कछू नइयाँ, हम नौंने हैं' कैकें टार जातती। घन्सू के भअें दो साल बाद छबीली कौं जनम भओ। एक तौ जुगनू कौ शरीर वैसई मरतुल्ला हतो औ छबीली के जनम के टैम लअू (खून) जादा बैबे सें तमाम कोशिसन के बादउँ जुगनू बच नईं पाई। मोड़ा-मोड़ी के संगै सालें भले कट रईं ती पर हरिया के हिय में जैसें खुशियन की फसलें सूक गई तीं।

''दद्दा तुम.... ब्लात देर सें दोरे पैं ठाड़े का कर रअे''

घन्सू के झंझकोरवे पैं जैसें ऊकों मन जईं कों तईं वापिस लौट आओ।

'कूछूं नईं बेटा, छबीली कौ कौतुक देख रओ तो।'

और उतै छबीली दोऊअन सें बेखबर अपने खेलवे में मस्त. .. एक रोटी बाई की.... दद्दा की,.... भैया की... हमाई। हरिया घंसू कौ हाथ नेहसें पकरै छबीली के ढिंगा आकें बैठ गओ। छबीली अब ऊखो तकन लगी? तरकारी ना होवे की बाट सोचकें हरिया कौ हिय भारी हो गओ आँखें भर आईं मगर अंसुआ लुढ़कन नई दअे। अचानक हरिया खों मैथी की भाजी कौ ख्याल आओ जौन टुकनिया में काल सन्जाकें ऊनें धरी ती।

'बेटा घन्सू टुकनिया में मैथी की भाजी धरी है, उठा लै आव।'

'दद्दा ई में तौ नईंआ' घन्सू नें टुकनिया देखकें कई।'

'काअे मोड़ी, तोय है पतौ' ऊनें छबीली सें पूछीं।

'दद्दा.... दद्दा... हमनें,..' छबीली सकुचाकें बोली।

'हाँ बताव बेटा... बताय तुमने का करो'

'हमनें हल्की छिरिया खों ख्वा दई'

'छिरिया खों...' हरिया अचरज में पर गओ।

'हओ... हल्की छिरिया अब पत्ती खान जौन लगी।'

'अच्छौ करो... अब तुम भाजी की जागां हमें खालो।' हरिया हँसकें बोलो।

'हओ... तुमें कितें से खावो शुरू करें... दद्दा।'

हम तिंदुआ... हैं.... कच्चौ... तुमें... चबा जैबी सैगों... खा जैबी... बचौ... दद्दा...

वह एक्टिंग करती हरिआ पै झपटी। तीनऊ ई कौतिक सें हँसन लगे। फिर वह घन्सू की ताईं बढ़ी औ बोली -

... भैया... तोय खा जैहों...। घन्सू नें दद्दा जैसें डरकें मारें दोऊ हाथ जोर दअे और जैसें डराकें बोलो... बिन्नू मोय... बड़ौ डर... लग रओ।

हरिया नें टुकनिया में धरी धनिया की हरी पत्ती, लासुन, आदे और मिरचा की चटनी बाँटी औ तीनऊ मिल-जुरकें जुनई की रोटी संग खान लगे।

'दद्दा' छबीली बोली। - 'हूँ'

'काल भैया नें हमाई रोटी छुड़ा लईती।'

'मैंने नईं लई ती... झूंटी काअें बोल रई' घन्सू नें सफाई दई।

'खाव राम कौ कौल'

'राम धई' घन्सू की जागां दद्दा बोले

सबई फिर हँसन लगे।

'घर की चीज सबकी होत घन्सू, छबीली आपस में बाँटकें चीज दैबू करे' हरिया बोलो।

'हओ दद्दा', दोंनऊ नें हामी भरी।

'झूठौ नईं बोलवो करे, ना लरबू करे।'

'कभऊँ नईं दद्दा...' दोनऊ नें सैमति दई।

'अच्छा बिन्नू एक बात बताव जब बाई जिन्दा नईया तौ ऊके नाव की रोटी काऐ गिन रईंती।'

'बाई खों भोग लगावे के लानें' छबीली नें भोरेपन सें कई।' हरिया के संगें घन्सू की आँखें भर आई।

'ठीक है बेटा अब सो जाव'

हरिया नें जूठे बासन-भांड़े उठाए और उनें माँजकें धोकें जुगनू के ख्यालन में परो परो खौन लगो। कछू देर में ऊखों ऊँग आ गई। भुन्सारें हल्ला-गुल्ला सुनकें बायरें आऔ तौ देखो कें बरसात के मौसम में बन्दा के दरवाजे खोल दैवे सें नदी में बाढ़ आ गईती। जनी मान्स, मोंड़ी-मोड़ा इतै उतै बचवे भग रऐते। भगदड़ और बचौ... बचौ दिख रओ तो सुनारओ तो।

हरिया झट्टई भीतर खों भगो... घन्सू औ छबीली खों सोउत सें जगाकें उठाव। तबलौ पानी हरिया कें घर में घुसकें भरन लगो। गाँववारे बचवे के लानें उपाय करन लगे। बाढ़ कौ पानी सबरै बढ़त लेत जा रओ तो। गाँव वारे ऊँचे एक माटी के टीले पै पौचन लगे। मुलक जनावर, कुत्ता, बिल्ली, छिरियाँ, जनींमान्स, मौड़ा-मौड़ी, सामान, सबई पानीं सें घिरन लगो। छबीली खों दाहिने कंदा पै बिठाकें, घन्सू कौ हाथ पकरै हरिया माटी के ऊँचै टीला पै झट्ट पौंच गओ। पानी की बढ़त और तेज धार सें ऊके करया (कमर) लौ पानी चढ़ आओतो। जीसें हरिया के पाँव अकड़न लगे। घन्सू डराकें हरिया सें चिपक गओ। छबीली कदां से पीठ पैं आकें हरिया के गरे में अपनी हाथन की बाँहें डारकें, डराकें चिपक गई। लोग औ जनावर चीजें पानी में बैन लगीं। हरिया के पाँव अब उखर गओ। अपने एक हाथ सें घन्सू कौ हाथ मजबूती सें पकरैं, छबीली खों पीठ पै लादें, हरिया नदी की धार के संगें संगै बैत-बैत लोरन लगो। लोरत लोरत अब हरिया थकन लगो ऊकी आँखन के सामें थोरों-थोरों अंदियारौ सौ घिरन लगो। ऊके सोच... ख्याल की चीलगाड़ी तेजी पकरन लगी। ऊके हिय में कसकें विचारन कौ द्वन्द्व मच गओ। ऊखों एक जिगर के दो हिस्से.. घन्सू औ छबीली अब मौत के मौं में जात दिखन लगें दो में सें अब एकई खों मुश्किल सें वौ मौत सें बचावे खों खुदखों मजबूर समझन लगो। पर कीखों मौत के मों में ढकेलकें, वौ अब कीखों बचावें ई ख्याल की भौंर ऊके सामें भुमन लगी। अपनी जान देंके अगर दोऊ लाड़ले बचत होते तौ हँसके जान दें देतो। मगर अब कौनऊं एक संतान खों बचावे की विकट आफत ऊके सामें आ गई ती। एक खों बचाये दूसरे खों मौत के मौं में ढकेलवो कौन सौ न्याय है। दुनिया तौ बाद में कछू कैहैं पर अबै तो ऊकौ दिल-दिमाग जौ निरनय (निर्णय) लैवे के आखरी पलन में झूलन लगो। शरीर औ मन में मजबूर हरिया नें लोरत-लोरत परमेसुर सें विन्ती करी - हे भगवान! मोरी जगां अगर ई आफत (परिस्थिति) में तुम होते तौ का करते?

- ३६/१५, प्रेमगंज, सीपरी, झांसी, (उ.प्र.)

जा अपनी बुँदेली

- स्वतंत्र प्रभाकर रावत

रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।
सुघर-सलौनी, बाँकी-नौंनी, जा अपनी बुन्देली।।

बोलीं सबइ अनौखीं नौनीं, जैसें बैंनें-बैंनें,
सौ नौंने सें नौंनी ई बुन्देली का कैंनें,
सबके संगै हिल-मिल खेली, सबकी सखी-सहेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

कवि 'जगनिक' ने आल्हा-ऊदल विरद एईमें गाओ,
अपने कवियन को ईनें, सब कउं है मान बढ़ाओ,
'छत्रसाल' जू रोप गये बुन्देली कविता बेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

पूरे भारत में नामी जौ, है बुन्देली पानी,
अपनी ई मीठी बानी की, नइयाँ कौनउँ सानी,
कवि गंगाधर व्यास, ईसुरी, पद्माकर उर मेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

रंग-बिरंगे फूल खिला दये, रचनन रंग उलींचो,
बुन्देली-बगिया हाँ सबनें, नेह-नीर सें सींचो,
कउं कर रइ जा आँख-मिचौली, कउं कर रइ अठखेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

ईहाँ लिखतन जी हुलसाबै, पढ़तन में सुख सरसै,
सुनतन में मिसरी सी घुरबै, कातन में रस-बरसै,
कीरतन में गागर में सागर, गारिन में गुर-ढेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

ई कौ है बुन्देलखण्ड सें, नातौ भौत पुरानों,
सबइ जगाँ झंडा फहरा रय, मानों चाय न मानों,
जितनइ होत स्यानी जा रइ, उतनइ लगत नवेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

जा अपने पुरखन की थाती, ई हाँ हमें बढ़ानें,
सबइ तराँ सें आँगूं बढ़बै, ऐसी जुगत लगानें,
ई की रूप-जौत सें जगमग-जगमग सुजस-हवेली।।
रंग-रंगीली, छैल-छबीली, है सबसें अलबेली।।

- कड़ा की बरिया, छतरपुर (म.प्र.)

विनती -

बुन्देली बसंत के सभी लेखकों से विनती है कि कि साल भर शोधपरक आलेखों को तैयार करते रहें और बुड़की के पहले तक सम्पादक के पास बिना सूचना पाये स्वतः भेजने का कष्ट करें।

बुन्देलखण्ड में प्रेमचन्द से पहले का उपन्यास -

'वामा शिक्षक' के रचयिता मुँशी ईश्वरी प्रसाद

- वीरेन्द्र बहादुर खरे

महोबा निवासी मुंशी ईश्वरी प्रसाद श्रीवास्तव ऐसे साहित्यिक वट वृक्ष थे, जिनकी जड़ें तो १९वीं सदी के मध्ययुगीन सामंती भारतीय समाज में आधारित थीं, पर शाखा पत्तियाँ पाश्चात्य सभ्यता के वातावरण में नई हवाओं नई अवधारणाओं और सकारात्मक विचारों को स्वीकार कर रहीं थीं। मुंशीजी ने १९वीं सदी में सन् १८७२ में उस समय नई विधा उपन्यास में जमीन तोड़ी और मुंशी कल्याणराय के साथ मिलकर नारी शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करने वाला उपन्यास ''वामा शिक्षक'' की रचना की जब हिन्दी में मात्र पण्डित गौरीदत्त का जेठ जिठानी कहानी का प्रकाशन सन् १८७० एवं उर्दू में श्री नजीर अहमद का मिरातुल उरूस उपन्यास प्रकाशन १८६९ ही लिखा गया था। पंडित गौरीदत्त का उपन्यास देवरानी जेठानी की कहानी स्कूलों में पाठ्यक्रम के लिए लिखा गया था। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने लेखक को पुरस्कार भी दिया था। डॉ. रामनिरंजन परिमलेन्दु इसे हिन्दी का प्रथम उपन्यास कहते हैं। उर्दू के लेखक श्री नजीर अहमद के उपन्यास पर भी सरकार ने एक हजार रुपये का पुरस्कार दिया था।

'वामा शिक्षक' उपन्यास लिखा तो १८७२ में गया पर उसका प्रकाशन ग्यारह वर्ष बाद १८८३ में विद्या दर्पण प्रेस मेंरठ से हुआ जो श्री कल्याण राय का खुद का प्रेस था। इसकी ५०० प्रतियाँ मुद्रित थी, फिर उपन्यास गुमनामी के गर्त में गुम हो गया। पर उपन्यास साहित्य पर शोधकर्ताओं - डॉ. रामनिरंजन परिमलेन्दु (भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य), डॉ. गोपाल राय (हिन्दी उपन्यास का इतिहास) एवं डॉ. ज्ञानचंद ने (प्रेमचन्द पूर्व उपन्यास) में इस उपन्यास की चर्चा ही नहीं प्रशंसा भी की है। पर मुंशी ईश्वरी प्रसाद और उनका उपन्यास शोध ग्रंथों तक सीमित रहे।

सन् २००४ में मुझे 'आजकल' हिन्दी मासिक पत्रिका दिल्ली में डॉ. परिमलेन्दु का आलेख पढ़ने का अवसर मिला। इसमें उन्होंने ईश्वरी प्रसाद एवं उनके वामा शिक्षक की चर्चा की। लेख पढ़कर मैं अपने को न रोक सका। उन्होंने मेरी जिज्ञासा का समाधान किया। उनका मत था कि पूरी पुस्तक मुंशी ईश्वरी प्रसाद की लिखी हो सकती है। श्री कल्याण राय का खुद का प्रकाशन होने, व्यय भार उठाने एवं उनके हैड मास्टर होने के कारण मुंशी जी ने लेखक के रूप में उनका भी नाम दे दिया। दो लेखकों द्वारा लिखे जाने पर श्री ज्ञानचंद ने भी अपने प्रेमचंद पूर्व के हिन्दी उपन्यास में कहा है ''इस पुस्तक की रचना में खाक पाय कल्याणराय का कितना हाथ था? क्या मुंशी ईश्वरी प्रसाद जिस मदरसे में मुदर्रिस थे उसी में उनके मुदर्रिसे अव्वल होने और छापाखाने में पुस्तक छापने के कारण उनका भी नाम पुस्तक के लेखक के रूप में दे दिया गया। इन प्रश्नों का उत्तर देना अब कठिन है। मुंशी ईश्वरी प्रसाद अथवा मुंशी कल्याण राय के नाम से किसी और पुस्तक की कोई सूचना नहीं मिलती (प्रेम चंद पूर्व हिन्दी उपन्यास, पेज ३७)

डॉ. गरिमा श्रीवास्तव भी ज्ञानचंद के कथन का समर्थन करती हुई कहती हैं ''एक ही परिवार की कहानी को सिलसिलेवार ढंग से अथ कथा प्रारम्भ से अलामिति तक पहुंचाने के लिए लेखकीय एकाग्रता अपेक्षित होती है, वह दो लेखन के संयुक्त लेखन में एक सीमा के बाद संभव नहीं है। (वामा शिक्षक, संपादिका गरिमा श्रीवास्तव पेज २६) मैं डॉ. परिमलेन्दु जी से इस ग्रंथ की प्रति मांगने का साहस नहीं जुटा पाया। पुस्तक के प्रकाशन के १२७ वर्ष बाद २०१० में डॉ. गरिमा ने इस दुर्लभ ग्रंथ को संपादित कर नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित कर हिन्दी पाठकों को सहज सुलभ करवा दिया।

मुंशी ईश्वरी प्रसाद साहित्य को समाज और देश के प्रति जवाबदेह मानते थे। उन्हें भारतीय सभ्यता संस्कृति और सभ्यता से प्रेम था। वे प्राचीन जीवन मूल्यों पर आस्था रखते थे। पर समाज में फैली कुरीतियों कुसंस्कारों, बाल विवाह, दहेज प्रथा, विवाह में फिजूलखर्ची, दिखावा आवश्यकता और आमदनी से अधिक खर्च करने के विरोधी थे। वे आडम्बर फिर मजारों जादू टोना के विरोधी थे, वैसी शिक्षा के समर्थक अंग्रेजी शिक्षा की जरूरत को समझने वाले थे, वे अंग्रेजी चिकित्सा के पक्ष में थे। वे अशिक्षा को अधिकांश बुराइयों की जड़ मानते थे। तत्कालीन भारतीय समाज में नारी शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी ही नहीं सबसे निचली पायदान पर थी। अंग्रेज सरकार नारी शिक्षा का प्रसार कर रही थी पर रूढ़िवादी व्यक्तियों के मन में शिक्षा को लेकर शंकाएँ थी। ईश्वरी प्रसाद जी ने इसी ज्वलन्त समस्या को अपने उपन्यास की कथा वस्तु बना 'वामा शिक्षक' उपन्यास की रचना की।

वे उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं 'इन दिनों मुसलमानों की लड़कियों के पढ़ने के लिए तो एक दो पुस्तकें जैसे मिरातुल उरूस आदि बन गई हैं पर हिन्दुओं की लड़कियों के लिए कोई पुस्तक देखने में नहीं आई जिससे उनको जैसा लाभ चाहिए तैसा लाभ पहुंचे, सो हम ईश्वरी प्रसाद मुदर्रिस रयाजी और कल्याणराय मुदर्रासे अव्वल मदरसह दस्तूरे तालीम मेरठ बड़े सोच विचार और ज्ञान ध्यान पीछे २ वर्ष में इस पुस्तक को इसी ध्यान से बनाया है। निश्चय है कि इस पुस्तक से हिन्दुओं की लड़कियों को हिन्दुओं की रीति भांति के अनुसार लाभ पहुंचे और सुशील हों और जितनी बुरी चालें और पाखण्ड जिनका आजकल मूर्खता के कारण प्रचार हो रहा है, उनके

जी से दूर हो जाएँगे और बुरी प्रवृत्तियों को छोड़कर अच्छी प्रवृत्तियाँ सीखेंगी और लिखने-पढ़ने और सद्गुण सीखने की रुचि होगी (पुस्तक की भूमिका, पेज २६) उन्होंने पुस्तक की भाषा के बारे में कहा "उसको ऐसी सीधी बोली में लिखा है जिसको हिन्दुओं की लड़कियाँ और स्त्रियाँ बेरोक समझ सकती हैं और उनकी प्रतिदिन की बोल-चाल ऐसी होती है जैसी पुस्तक में है। (भूमिका, पृ. ३०)

भारत में १६वीं में छापाखाने तो आ गये पर संयुक्त प्रान्त का पाठक आर्थिक दृष्टि से इतना सक्षम नहीं था कि खरीद कर पुस्तक पढ़ सके और न ही लेखक अपने व्यय से पुस्तकें प्रकाशित करवाने की स्थिति में थे। संयुक्त प्रान्त की सरकार स्कूलों के लिये पढ़ने योग्य हिन्दी या उर्दू की मौलिक या अनुवादित पुस्तक को या लेखक को पुरस्कार देती थी। मिरातुल उरुस और देवरानी जेठानी के पुस्तक लेखकों को सरकार से पुरस्कृत देख वामा शिक्षक के दोनों लेखकों ने उत्साहित हो पुस्तक को बड़े ध्यान से रचा उन्हीं के शब्दों में "इसी ध्यान से यह पुस्तक पश्चिमोत्तर देशी श्रीयुत डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन को भेंट करते हैं कि क्या आश्चर्य है कि अंगीकार हो, और हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाई जाय। (वही पृ. ३०) डॉ. रामनिरंजन एवं डॉ. गरिमा श्रीवास्तव के अनुसार यह निश्चय नहीं कहा जा सकता कि पुरस्कार मिला या नहीं या सरकार ने कोई नोटिस लिया या नहीं। इसका उत्तर मेरे परिवार में है। मेरे पिताजी ईश्वरी प्रसाद के चौथे पुत्र थे। मैंने अपने पिता जी एवं बड़ी चाची से सुना था कि मुंशी जी ने प्रारम्भिक दौर में बाहर नौकरी करते समय स्त्रियों और लड़कियों के लिए पुस्तक लिखी थी पर अंग्रेज सरकार की नौकरी के नियमों से अवगत न होने के कारण बिना सरकारी अनुमति के पुस्तक लिख भी दी और भेंट कर दी। सरकार ने उनसे स्पष्टीकरण मांग लिया। मुंशी जी ने सरकार को कैसे संतुष्ट किया यह तो पता नहीं पर मुझे लगता है कि मुंशी जी सीधे सादे आदमी थे और सरकार को भी पुस्तक में कुछ भी अवांछनीय नहीं मिला अपितु पुस्तक में सरकार की प्रशंसा ही थी इसलिए सरकार ने आगे कोई कार्यवाही नहीं की बस उस पर पुरस्कार नहीं दिया। मुंशी जी ने भी नौकरी दाँव में न लगाकर फणीश्वर नाथ रेणु के तीसरी कसम के नायक हीरामन की तरह कसम खाली कि वे इस पुस्तक से अपना सम्बन्ध तोड़ देंगे और जब तक शासकीय सेवा में हैं कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं करवायेंगे न ही कोई कविता प्रकाशित करवायेंगे।

सन् १८८३ के बाद वे मेरठ से महोबा आ गये और कुल पहाड़ कस्बे में मिडिल स्कूल के अध्यापक हो गये जहाँ वे प्रधानाध्यापक हो १८८७ में रिटायर हो गये। विद्यादर्पण प्रेस के मालिक और सहयोगी लेखक कल्याण राय ने ५०० प्रतियों का क्या किया इसके बारे में न इन्होंने पूछा न उन्होंने जवाब दिया। इनाम न मिलने के कारण श्रीराय के ऊपर पूरा प्रकाशन व्यय आ गया इसलिए उन्होंने पुस्तकों का लाभ भी नहीं दिया।

मुंशी जी १८८७ में रिटायरमेंट के बाद सन् १६२७ तक मृत्युपूर्व तक ४० वर्ष महोबा में रहे। डॉ. ज्ञानचंद कहते हैं कि मुंशी ईश्वरी प्रसाद की कोई अन्य रचना प्राप्त नहीं होती है, वह सत्य नहीं है। मिश्र बंधुओं द्वारा रचित सन् १६१० में मिश्रबन्धु विनोद ने उनकी कई रचनाओं का उल्लेख है उनमें नल दमयंती, उषा-अनुरुद्ध अप्रकाशित नाटक एवं श्रीराम विजय तरंग नाटक १६०३ में प्रकाशित और आल्हा समर सारावली (महोबा और बुन्देलखण्ड का) हिन्दी में पहला इतिहास १६०६ में प्रकाशित अभी भी मेरे पास है। महाकवि जगन्नाथ रत्नाकर ने इसकी बिहारी सतसई की टीका का भी उल्लेख किया है। उन्होंने दोनों पुस्तकों का प्रकाशन सेवा से मुक्त होने के बाद किया। इनका जन्म मिश्र बंधु विनोद के अनुसार १८२६ में हुआ और पारिवारिक जानकारी के अनुसार उनकी मृत्यु १६२७ में हुई। मेरे पिता जी के अनुसार वे लगभग ६७ वर्ष की आयु तक जीवित रहे। इस हिसाब से उनकी जन्मतिथि १८२६ सत्यसिद्ध होती है। ईश्वरी प्रसाद जी के पिता का नाम केदारनाथ था। वे अवध के नवाब के सेवक थे, और कन्नौज के निवासी थे। १६वीं सदी के तीसरे दशक में जब अंग्रेजों ने अवध के राज्य पर अपना शिकंजा कसा तो अवध के नवाब के साथ सेवकों पर भी गाज गिरी। इनके पिता केदारनाथ की उसी समय मृत्यु हो गई। ईश्वरी प्रसाद जी की मां इस उथल पुथल में नाबालिक पुत्र को लेकर महोबा आ गईं। उन्होंने आर्थिक कठिनाइयों के बीच पुत्र का पालन-पोषण किया। बालक ईश्वरी प्रसाद ने परिश्रम से पढ़ाई की और १८६५ में वे मुदर्रिस हो गये। उन्होंने बहुत समय तक मेरठ में काम किया।

'वामा शिक्षक' उपन्यास १६वीं सदी के संयुक्त प्रान्त के कायस्थ परिवार की कथा है इसमें तत्कालीन कायस्थों के जीवनशैली रीति रिवाज, मानसिकता, बोलचाल एवं पारिवारिक जीवन का यथार्थ चित्रण है। लाला भगवानदास मेरठ में ढाई गांव के मालिक थे। इसी की आय से उन्होंने मितव्ययिता से दान पुण्य भी करते परिवार चलाया। उनके दो लड़के थे, बड़े का नाम जमुनादास और छोटे का मथुरादास था बड़ा लड़का ढीठ एवं हटीला था। उसको अंग्रेजी शिक्षा से अरुचि थी। अतः फारसी उर्दू की शिक्षा के बाद उसकी पढाई छुड़ा दी गई। मथुरादास सीधा सादा पढ़ाई में चतुर था, पिता ने उसे अंग्रेजी पढ़ाने का विचार किया। उन्होंने बड़े लड़के को शादी के बाद अहलमद बनवा दिया। दोनों के दो-दो बेटियाँ हुईं।

पिता की मृत्यु के पश्चात् दोनों बिना किसी विवाद के अलग हो गये। बड़े भाई की पत्नी फूहड़ थी, आलसी थी, घर चलाने में कुशल नहीं थी। उसकी दोनों लड़कियाँ राधा और पार्वती बाप के लाड़-प्यार में बिगड़ गईं। उन्हें न काम काज का सलीका था न बोलने चालने का। मथुरा दास ने अपनी दोनों बेटियों गंगा और किशोरी को शिक्षा देने के लिए ज्ञानो नामक विधवा ब्राह्मणी की सेवा ली। उन्होंने

बड़े भाई को भी लड़कियों को शिक्षा देने की आवश्यकता बतलाई पर जमुना प्रसाद नहीं माना। जमुनादास ने बड़ी लड़की राधा के विवाह में जरूरत से अधिक खर्च कर अपने ऊपर कर्ज चढ़ा लिया उसकी आर्थिक स्थिति खराब होने लगी। मथुरादास ने गंगा का विवाह बिना फिजूलखर्ची के सादे ढंग से किया। गंगा ने अपने व्यवहार एवं कार्यकुशलता से परिवार का दिल जीत लिया। ससुराल की आर्थिक स्थिति ठीक होने लगी। पति अपनी वर्तमान नौकरी से प्रसन्न नहीं था, गंगा ने उसे खुद का व्यवसाय करने की प्रेरणा दी। वह खुद के व्यवसाय में सफल हो गया। उसका पारिवारिक जीवन सुखी और सफल था।

किशोरी भी ससुराल में घुल मिल गई। पर वह विधवा हो गई पर उसने अपनी सास और घर को संभाला। सिलाई करके मुहल्ले के बच्चों को पढ़ाकर परिवार को संभाला अपने बच्चे को पढ़ाया उसे बड़ा होने पर धंधे से लगा आत्मनिर्भर बना दिया। वह सफल व्यापारी बन गया।

इधर अपढ़ राधा अपने आलस्य के कारण, लड़ाकू स्वभाव से सास से लड़ती। उसे न लाज शर्म थी न बड़ों का लिहाज था। परिवार में कलह होती थी। उसको गंगा ने समझाया भी पर वह न मानी। उसने अपने स्वभाव से अपनी और परिवार की शांति भंग कर दी।

जमुना दास की दूसरी लड़की पार्वती भी सुखी न रह सकी। वह गौने की विदा के पहले ही विधवा हो गई। ससुराल वालों के आग्रह पर भी पिता ने उसको विदा नहीं किया। जब वह १८ वर्ष की हुई तो ससुराल में उसकी विदा कर दी गई। पर वह अपने स्वभाव के कारण संयुक्त परिवार में नहीं रह सकी। जेठ और देवर ने बेमन से उसे अलग कर दिया उसे जो धन हिस्से में मिला उसका भी सदउपयोग नहीं किया। उसने ब्याज की लालच में यह राशि एक मुगलानी नाम की स्त्री को दे दी वह धन लेकर फरार हो गई। पार्वती बेसहारा हो गई हारकर उसे जेठ और देवर की दया पर पलना पड़ा। अब दोनों लड़कियां पछतातीं थी अगर वे भी पढ़ लिख जातीं तो दूसरों की दया पर निर्भर न रहना पड़ता। लेखक कहता है कि शिक्षा आदमी को मनुष्य बनाती है। अशिक्षित दुख पाता है।

उपन्यास की विशेषता और महत्व के बारे में डॉ. गरिमा श्रीवास्तव कहती हैं - ''उपन्यास में भारतीय साहित्यकाश के समाज शास्त्रीय अध्ययन के बीज हमें इस उपन्यास में मिलते हैं। भारतीय समाज में स्त्रियों की अशिक्षा को स्त्री की दुर्दशा के कारणों के मूल में पहचाना जाना 'वामा शिक्षक' की उपलब्धि है। हालांकि इसमें स्त्री पुरुष समानता की बात नहीं कही गई है लेकिन स्त्रियों का शिक्षित होना अज्ञान से ज्ञान तक पितृ सत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में पुरुषवादी वर्चस्व को कमजोर करने के लिए उठाये गये कदम के रूप में देखा जाना चाहिए। (वामा शिक्षक की प्रस्ताविका पृ. ८) वे आगे लिखती हैं कि तत्कालीन समाज की अनेक कुप्रथाओं जैसे बाल विवाह, आडंबर, अशिक्षा आदि के यथार्थ चित्रण इसे पठनीय बनाते हैं। इसमें एक प्रकार की आन्तरिक सूत्रबद्धता स्वाभाविकता और विश्वसनीयता होने के साथ-साथ कथा का आयाम भी विस्तृत है। प्राक् प्रेमचन्द युगीन उपन्यासों में इसका स्थान एवं महत्व अक्षुण्य है।

वामा शिक्षक के लेखक कुशल कथासर्जक एवं कथावाचक हैं। कथा रचने, उसे बुनने व क्रमबद्ध रोचक ढंग से प्रस्तुत करने आदि से अंत तक उसमें रोचकता बनाए रखने एक कथा को दूसरी कथा से अन्तः सम्बन्ध बनाने में कुशल हैं। इसमें लाला भगवानदास उनके दो पुत्रों एवं दो पुत्रों की चार लड़कियों की कथा है इसमें तीन कथाएं साथ साथ चलती हैं। कथा त्रिस्तरीय है। इसमें आपसी बातचीत एवं स्त्री पुरुष के मनोविज्ञान का यथार्थ चित्रण है। कथा बहुस्तरीय है। डॉ. गरिमा श्रीवास्तव जहाँ इसमें नूतन कथा शिल्पपद्धति का प्रारंभ देखती हैं, वहीं डॉ. ज्ञानचन्द इसके किस्सा गोई की तारीफ करते हुए कहते हैं ''वामा शिक्षक के लेखक द्वव ने अपने जमाने की किस्सा गोई के फन में अपनी महारत का अच्छा परिचय दिया है। मिरातुल उरूस की भांति उन्होंने भी अपनी पुस्तक में किस्से को नया लिवास, नया रूप रंग प्रदान किया। उनको जिन्दगी के बिल्कुल करीब ला दिया। उसमें आन्तरिक सूत्रबद्धता बनी रहती है और पहले पृष्ठ से पाठकों का मन बांध लेती है।

मुंशी जी के अन्य गद्यग्रंथों की भाषा लाक्षणिक है पर इस पुस्तक की भाषा सीधी-साधी बोलचाल की भाषा है। इसमें संयुक्त प्रांत और बुन्देलखण्ड की जनभाषा के दर्शन होते हैं इसमें बनड़ा, खनरा, बफारा पिसनहारी जैसे स्थानीय शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कहावतों मुहावरों का प्रयोग समय पर पत्थर पड़ना, रोटियां मारी मारी फिरना, पौ बारह होना, कायस्थ का लड़का पढ़ा अच्छा या मरा अच्छा, अब पछताये होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत, खूब हुआ है। भनैती (सहेली), टहलुवा (नौकर) टका तंबोलिन (पान वाली) कलावन आदि लुप्त शब्द दिखाई पड़ जाते हैं।

इसमें खड़ी बोली का विकसित एवं परिपक्व रूप देखने को मिलता है। इसमें हिन्दी के तद्भव शब्दों के साथ फारसी और उर्दू के भी तद्भव शब्दों की अधिकता है। इसमें विराम चिन्हों का अभाव है, इसका कारण लेखकों का अंग्रेजी से अनजान होना है। डॉ. गरिमा कहती हैं भाषा की दृष्टि से वामा शिक्षक १९वीं सदी की हिन्दी भाषा के जनस्वरूप का बोध कराने वाला उपन्यास है।

निःसन्देह वामा शिक्षक जिन्दादिल भाषा में जिन्दादिल उपन्यास है, जो सामाजिक उपन्यास के निर्माण में बुन्देलखण्ड की हिस्सेदारी सुनिश्चित करता है और नई पीढ़ी को बिसरे अतीत की झाँकी प्रस्तुत करता है।

- कटरा बाजार, नगर पालिका चौराहा,
टीकमगढ़ (म.प्र.)

बाबा कौ पिरताप

- सुधा रावत 'क्षमा'

पात्र परिचै -

बाबा हरि ऊँ - एक ढौंगी बाबा
लखन - गाँव कौ युवक
अम्मा - लखन की महतारी
उर्मिला - लखन की घरवारी
मास्टर साब - गाँव के इस्कूल मास्टर
मोहन - लखन कौ छोटो भइया
लच्छू - मोहन कौ दोस्त

(लच्छू की अम्मा, हीरा, संतोष, पंचू आदि कछू दीगर पात्र)

(पर्दा उठता है)

गेरुआ वस्त्र पहने हुए, माथे पर चंदन का टीका और जटाजूट बाँधे, एक हाथ में सर्प के आकार की लकड़ी लिये हुये, एक चपल साधु वेशधारी ढौंगी महत्मा प्रकट होता है और लकड़ी को मंच पर ठोक कर जोर से चिल्लाता है हरि ओम-हरि ओम-हरि ओंम चारों तरफ चोर निगाह से देखकर बड़बड़ाता है सुन्दर, अति सुन्दर, वह क्या गाँव है। इधर-इधर देख कर धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ता है।

(नेपथ्य में दो औरतों की आवाजें सुनाई देती हैं, बाबा चुपके से कान लगाकर सुनने की कोशिश करता है, मगर कुछ समझ नहीं पाता, इधर-उधर देखता है तब उसे एक बच्चा आता हुआ दिखाई देता है)

बाबा - हरि ओम-हरि ओम! बच्चा जरा सुनना।

बच्चा - (रुक कर) काय महाराज?

बाबा - क्या नाम है तुम्हारा?

बच्चा - हमाओ? लच्छू नाव महाराज।

बाबा - एक बात बताव बेटा, इस घर में से ये आवाजें कैसीं आ रही हैं?

लच्छू - *(हँस कर)* जे? जे तौ मोहन की अम्मा औ भौजी आ लर रईं। धम्मा-धाई मची है?

बाबा - *(आश्चर्य से)* धम्मा-धाई कैसी धम्मा धाई? अरे भाई ये क्यों लड़ रही हैं? हरि ओम, हरि ओम।

लच्छू - अब तुमें का पतौ। हम बताउत हैं, वौ का है कै मोहन की भौजी के कौनऊँ मौड़ी-मोड़ा नइयाँ, येईं सें मोहन की अम्मा न्याओ मचाउती हैं अब तुमें का बतायें - इनोंरन कौ तौ जो रोजऊ कौ धन्दा-धातम आये। सब खों पतो है सो कोउ कानें नईं धरत। तुम सोई अपनी गैल...

(तभी लच्छू की माँ आवाज देती है)

लच्छू की अम्मा - लच्छू ओ बेटा लच्छू? क्यांय गओ?

लच्छू - ओय? आ रओ अम्मा। अच्छा महराज हम चलत हैं? हमाई अम्मा बुलाउती, राम-राम। *(और चला जाता है)*

बाबा - राम-राम बच्चा, राम-राम। (चपलता से आँखें घुमाता है) चल बेटा हरि ओम तेरा काम तो बन गया अब खिसक ले यहाँ से। कल दिखाता हूँ कमाल।

(बाबा के मुड़ते ही पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है)

(लखन की अम्मा घर में बैठी हुई हैं, सूप में कुछ फटक रही हैं। लखन शर्ट के बटन लगाते हुये प्रवेश करता है।)

लखन - अम्मा, ओ अम्मा का आ कर रईं? जल्दी सें रोटी परसौ, आज दफ्तर जल्दीं जानें।

(अम्मा कोई उत्तर नहीं देतीं लखन उनकी ओर देख कर कहता है)

लखन - काय अम्मा का बात है? कछू बोलतीं काय नइयाँ? काऊ नें कछू कै दई है का?

अम्मा - *(जरा चिढ़कर)* काऊ नें कछू नईं कई। हम होत कोहें ई घर के। अपनी मैमसाब खों बुआओ औ उनईं से परसुआ लो भोजन।

लखन - अच्छा, *(हँसकर)*, तौ जा बात है, सास-बहू में फिर कहासुनी भई। हमें रोटी परसौ फिर जो चाये करती रओ। और हाँ, ई रोज-रोज की चिकल्लस से हमें दूरई रक्खो करे, तुमोरे आपस में खुदई निपटौ-सुरझौ समझीं।

अम्मा - हम तौ पैलेईं जानत ते कै - तुम ऊसें तौ कछू कै नईं सकत, हमईं खों सुनैहौ चार।

(तब तक उर्मिला खाना की थाली लेकर आती है और लखन के सामने रखकर कहती है खाना खालो, लखन थाली में से कौर तोड़कर मुँह में डालते हुए कहता है)

लखन - का बात है उर्मि तुमौरे पानी में नईं पटाउतीं, अम्मा अगर कछू कहत भी हैं, तौ तुम चुप नईं रै सकतीं? तनक गम्म खाओ करे, यैं।

उर्मिला - हम का करें? जेई तौ बेकार की बातें करतीं हैं, हम काँ लौ गम्म खायें?

अम्मा - देख लई बेटा, ई कौ मौ तौ कतन्नी सौ चलत है, हमाईं बातें, तौ खों, बेकार कीं लगतीं।

उर्मिला - अब तुमई बताओ हम काँलौ ना बोलें, जे जब देखौ तब हमें ताने मारतीं रैतीं।

अम्मा - का ताने मारे हमने? नौने रओ नौने।

उर्मिला - जब देखो जब जौ नईं सुनाउतीं? कै ललितपुर बारी कैं दो मोड़ी-मौड़ा हो गये, ऊ की ब्याओ तुमईं के संगै भओ तो।

ऊ टीकमगढ़ बारी कौ मौड़ा सोई भगन लगो, ऊ कौ गौनों तुमाये पाछें भओ तो। जे ताने नोईं तौ का हैं।

अम्मा - काय बेटा तौ हम कछू झूठौ बतकाव करत का? सबकी जेऊ मन्सा होत है कै ऊ कौ वंश बढ़ै, आँगन में बाल-गोपाल खेलें। अकेले हम तौ बड़े अभागे हैं, हमाये लाने तौ जौ सब सोचवे की भी मनाही है।

(अम्मा रुआँसी सी होकर साड़ी के छोर सें आँखें पोंछती हैं)

लखन - अरे-अरे अम्मा अब तुम रोबौ-गाबौ चालू ना कर दइयो, हमें ऊसई दफ्तर खों देर हो गई *(घड़ी देखते हुये कहता है)* अच्छा अब लड़ाई-झगड़ा बंद करौ। औ उर्मि तुम अम्मा सें माफी मांगो औ हाँ हमाये पाँछे लड़ियो-झगड़ियो नईं हमाई अम्मा सें। *(उर्मिला अम्मा के पैर पड़कर माफी मांगती है)*

उर्मिला - हमें माफ कर दो अम्मा।

अम्मा - हँसकर, बस-बस बहू रान दो, हो गओ, चलौ लखन खों चाकरी पै जान दो।

लखन - अच्छा तौ लड़ाई-झगड़ा शान्त, सब जनें खुश तौ हम चलें। *(लखन जाता है और पर्दा गिरता है)*

(पर्दा उठता है)

(मकान की ओट में खड़ा बाबा बाहर आ कर बड़बड़ाता है)

बाबा - आ-हा-हा-हा-हाँ। अब ठीक है, ये तो गया, अब शाम से पहले नहीं लौटने वाला। तब तक अपना काम तो निपटा ही लूँगा। हरि ओम, हरि ओम कहता हुआ दरबाजे तक पहुँच गया और लाठी ठोंक कर बोला- हरि ओम, अलख निरंजन। माई मिले एक मुट्ठी आटा, भगवान के नाम पर दिलाना हरि ओम-हरि ओम।

अम्मा - आउत हैं मराज, तनक ठाँड़े रइयो, अबैं आये।

बाबा - खुश रओ माई, खुश रओ। भगवान तुमारा भला करे। कमाइयों में बरक्कत दे *(तब तक अम्मा बाहर आ जाती है, उन्हें देखकर बाबा कहता है)* माई तेरा भाग्य बड़ा ऊँचा है, तेरा बच्चा बड़ा होनहार है।

अम्मा - *(अम्मा शर्माते हुये)* हैं ऽ हैं... मराज सब अपुनई कौ आशीर्वाद है। *(फिर पीछे मुड़कर)* अरे बहू जल्दी सें लै आओ चून मराज देर से ठाँड़े हैं।

बाबा - अरे, नहीं-नहीं कोई बात नहीं बेटी। आराम से लाओ मैं बैठ जाता हूँ। *(चबूतरे पर बैठते हुये कहता है, तभी कटोरी भर आटा लेकर उर्मिला आती है उसे देख)*

बाबा - आ..हा..हा...हा. क्या रूप पाया है। साक्षात् अप्सरा है।

अम्मा - कछू कै रये का मराज?

बाबा - *(चौंक कर)* नहीं नहीं कुछ नहीं। ये तुम्हारी बहू है क्या?

अम्मा - हओ मराज एकई तौ बहू आई अबै, जा बड़े लरका की दुलैन आय छोटो तौ अबै कुँवारो है।

बाबा - अच्छा-अच्छा! बहू तो तुम्हारी बहुत भाग्यवान है, मगर..

अम्मा - ऐं, ई अगर-मगर कौ का मतलब भओ?

बाबा - मतलब ये कि इसके भाग्य में संतान सुख नहीं है, इसके कोई संतान है क्या?

अम्मा - *(उदास होकर लम्बी सांस खींचते हुये)* अरे मराज! अपुन तौ अर्न्तयामी हौ। आप सें तौ कछू दुकोई नइयाँ ऊसें तौ भगवान कौ दओ सबई कछू है। अकेले दुक्ख तौ बस एकई बात कौ है, कै अबै तक... *(इसके आगे अम्मा गला रुंध गया और वे कुछ बोल नहीं पाई।)*

बाबा - माई समस्या बड़ी गम्भीर है, इसी बात को लेकर तुम्हारे घर में कभी-कभी कलह भी हो जाती है, जिस कारण घर में अशान्ति फैल जाती है।

अम्मा - *(उत्तेजित होकर)* हओ मराज हओ, बिल्कुल साँसी कै रये हौ अपुन, अब कालई की बात लै लो हम दोइयन में खूबई न्याओ भई! काय मराज? ऐसी कौनऊं उपाव नइयाँ जीसें मोय पोता-पोतियन कौ मौ देखबे खों मिल जाये?

बाबा - उपाय? हरि ओम, हरि ओम, उपाय तो है। वैसे तुम्हारा काम तो बहुत मुश्किल है, पर तुम्हारे कष्टों को देख कर मुझे तुम पर दया आ रही है। इसलिए मैं तुम्हें एक ताबीज व गंडासा देता हूँ *(और झोले में हाथ डालकर, एक गड़ा व ताबीज निकाल कर देता है)* लो माई, यह अपनी बहू को पहना देना, हरि ॐ ने चाहा तो शीघ्र ही तुम्हारे आँगन में किलकारियाँ गूँजेंगी। तुम जल्द ही दादी बनकर पोता खिलाओगी। हरि ओम, हरि ओम हा... हा... हा...।

अम्मा - *(खुश होकर ताबीज और गड़ा अपने माथे से लगा कर कहती हैं)* लै आओ मराज, जै हो प्रभु जैहो *(और उठकर अन्दर जाते हुए कहती है चलौ बहू, फिर मुड़ कर बाबा से कहती है)* मराज अबै जइयो ना हम अब्बई आये।

(पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है, दृश्य परिवर्तन)

(अन्दर कमरे में अम्मा एक नई साड़ी लिये हुये दिखती है, उर्मिला आती है और साड़ी देखकर चोंक जाती है।)

उर्मिला - अरे अम्मा जौ का कर रईं? नई धोती काय खों उठा लै आईं? काय जा देतीं का बाबा जू खाँ।

अम्मा - उँह-हूँ काय बहू हमने कित्ती बेर तुमसें कई है कै दान-पुण्य के काम में टोका ना लगाये करे, अकेलें तुम नईं मानती। जा १००-२०० रुपट्टी की धोती हमाये पोता पोतिन सें जांदा मँगी है का?

उर्मिला- अकेलें अम्मा वे गुस्सा हुइयें तौ?

अम्मा - अरे कोउ गुस्सां-उस्सां ना हुइये। अबै तो जो सामने है वौ देखौ। कछू रुपइया हैं तुमाये नेंगर?

उर्मिला - कल्लई तौ इनकौ चिट्ठा (वेतन) लगो है।
अम्मा - तौ जाओ ५०० रुपइया लै आओ।
उर्मिला - अरे का कै रई अम्मा? ५०० रुपइया फिर घर कौ खर्चा कैसें चलहै?
अम्मा - *(घूरकर बहू की तरफ देखती है)* तुम सबाल-ज्वाब जाँदा करती हो, जो हम कै रये हैं वौ करो। जाओ जल्दी रुपइया लै कैं आओ।
उर्मिला - *(गुस्सा से अम्मा की ओर देखती है और पैर पटकते हुये जाती है और रुपया लेकर अम्मा के हाथ में थमाती है)* लो जे हैं।
अम्मा - ल्याओ ल्याओ। अच्छा हम जौ सब लै कें जात हैं मराज बैठे बाट हेर रये हुइयें। और हाँ एक थारी में सीदौ लगा कै लै आओ *(जाते-जाते रुक कर)* सुनौ बहू तेल, डालडा नै लै अइयो, शुद्ध घी धरो है डब्बा में बोई लै अइयो।
उर्मिला - अकेलें अम्मा वौ घी तौ मोहन भैया के लाने मंगाओ तो, वे रात-रात भर पढ़त हैं उनकी परीक्षा नेंगर है।
अम्मा - अब दो-चार दिनां चुपरीं रोटी ना खैहै तौ कौन गजब भओ जात। फिर देखियो कैसे लडुआ फूट है मनईं मन, जब भतीजौ कक्का-कक्का कै कैं आंगे-पाछू घूमहै, फिर है, हाँ।

(सास बहू दोनों हँसती हैं) (पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है)

(अम्मा सामान लेकर बाहर आती हैं।)

अम्मा - हैं... है... हैं... मराज माफ करियो, तनक देर हो गई।
बाबा - कोई बात नहीं माई, लाओ-लाओ।
उर्मिला - *(पीछे से आकर)* अम्मा जौ है सीदो।
अम्मा - हओ, लै आओ, वाह कपड़ा में बाँध लै आई जौ अच्छौ करो। नईंतर मराज कैसे लै जाते। लेओ मराज अबै तौ इत्तई कर पाये फूल-फूल की पखुरी फिर और आँगे देखो जैहै। अबै का है, अब तौ लैबे-दैबे कौ मौका आउतई राने। हैं .... हैं... हैं... *(हँसती है)*
बाबा - हाँ-हाँ माई बिल्कुल हरि ओम ने चाहा तो शीघ्र ही इस आँगन में आनंद की वर्षा होगी। लेकिन बेटी इस ताबीज और गंडासे के ५० रुपये और होते हैं यदि वे भी अभी मिल जाते तो ठीक रहता।
अम्मा - हओ-हओ, काय नईं। बहू जाओ और ५० रुपइया और लै आओ।
उर्मिला - *(गुस्से सें आग बबूला होकर अम्मा को देखती है, फिर पैर पटकती हुई जाती है और ५० रु. लाकर देती है)*
बाबा - अच्छा माई अब चलता हूँ। यह ताबीज- गड़ा इस बच्ची को अवश्य ही पहना देना। *(इधर-उधर देखकर सारा सामान समेटकर भागता है)* हरि ओम, हरि ओम माई।
अम्मा - हरि ओम बाबा जू हरि ओम।

उर्मिला - अम्मा तुमने बेकारई में ऊ बाबा खों इत्तो सब -

(अम्मा बीच में ही टोकती है)

अम्मा - अरे बेटा कुड़ूडती काय खों हौ। दान-पुन्न उखटने नईं आउत कुड़ूडवे से दान-पुन्न ना धरती कौ रै जात ना आसमान कौ।
उर्मिला - फिर भी अम्मा तनक ना मनक तुमने तौ इतनो भर-भर कें दै दओ, ऊपर से पाँच सौ रुपइया भी।
अम्मा - बेटा! जो आस उनने जगाई है, ऊके आँगे तौ जौ सब ना कछू है। इतने से के लाने काय खों मरी जातीं। सबई कछू तौ दओ है ईसुर ने। जाओ अपनों काम करौ। *(अम्मा नें हँसकर झिड़की दी)* लो जौ ताबीज गड़ा ई खों आशीर्वाद समज कें पैर लो।

(बहू गड़ा-ताबीज लेकर चली जाती है, अम्मा दर्शकों से मुखातिब होकर कहती है) -

ऊंह... बड़ी भोरी है। अबै उमरई का है ई की, बच्चई तौ है, दुनियांदारी का जाने।

(हँसकर अम्मा जाती है और इसके साथ ही पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है दृश्य परिवर्तन होता है)

(रात का समय है चारों ओर सन्नाटा है लखन और उर्मिला गहरी नींद में सो रहे हैं, तभी ठम्म-ठम्म की आवाजें सुनाई देती हैं। उर्मिला की आँख खुलती है, वह लखन को हिलाकर उठाती हैं)

उर्मिला - ये सुनत हौ, जौका हो रओ? उठौ तौ देखौ तौ।
लखन - *(नींद में कुनमुनाता है, ऊँ ऽ ऽ हूँ ऽ ऽ ऊ आँ हूऊँ)* अरे का है? काय खों नींद हराम कर रईं? सोउन दो।

(किसी चीज की टकराने की आवाज आती रहती है)

उर्मिला - अरे उठ कें तौ देखो जो का ठप्प-ठप्प हो रओ।

(उर्मिला उठकर बिजली जलाती है, लखन भी उठता है)

लखन - *(आश्चर्य से)* अरे जौ का हो रओ? जौ डबला किबार सें काय टकराय रओ?
उर्मिला - ई डबला में तौ वो गड़ा-ताबीज धरो तो जौन ऊ बाबा नें हमें पहरबे खों दओ तो।
लखन - का? का कै रईं? काँ कौ बाबा? कैसौ गड़ा ताबीज?
उर्मिला - अरे तुमाये दफ्तर जाबे के बाद एक बाबा आओ तो। ऊ नें अम्मा खों झाँसौ दओ कै ई ताबीज गड़ा के पहरबे से बच्चा हो जैहै। उनने हमें पहर वे खों दओ, हमने कुठिया के ऊपर ई डबला में धर दओ कै तनक देर में पहर लैहें। अकेलें फिर हमें ध्यानईं बिसर गई। ओ राम ई में जाने का है जो तौ हवा में उड़ रओ।
लखन - *(गुस्सा होता है)* हमने कितनी बेर तुमौरन खों समझाओ है कै इन बेकार के चक्करन में नईं परो करे। अकेलें तुमौरें काय खों मानवे वारी।

उर्मिला - हम का करें? वे तुमाई अम्मा तौ तड़पीं जा रईं नाती-पोतन कौ मौ देखवे के लाने।

लखन - अच्छा छोड़ो जाँदा पंचयात ना लगाओ मोहन खों पढ़ै कै दो-चार जनें पुरा-मुहल्ला के जोरौ। हम किबार खोल कें देखत हैं जौ डबला काँ जात।

उर्मिला - *(घबरा कर)* अरे आँहाँ अबै जिन खोलियो हम पाछें के द्वारें सें कड़ कें पैलें कछू जनन खों जोर लेवें फिर खोलियो।

(उर्मिला चली जाती है) (पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है)

(दरवाजा खुलता है, चारों ओर हो हल्ला सुनाई देता है, वह छोटा मटका ऊपर उड़ता जा रहा है नीच लोग भी उसको देखते हुये भागे चले जा रहे हैं)

हीरा - अरे भैया हरो देखौ-देखौ मोहन के घर सें डबला उड़त जा रओ।

संतोष - काँ है? काँ है? अरे हओ वौ है वौ है।

कुछ लोग - हओ-हओ वौ तौ उड़तई जा रओ, चलौ देखें कहाँ जात?

मास्टर साब - ये, देखौ तुमौरे हल्ला-गुल्ला ना करौ चुपचाप ई के संगै-संगै चलौ देखें जौ आखिर जात काँ है, कऊं आँखन सें ओझल न हो जाये।

(तभी एक जगह जाकर वह रुक जाता है)

हीरा - ये लखन भैया जौ डबला तौ नैचें उतर रओ।

संतोष - अरे हओ! जौ तौ साँसऊँ नैचे खों आ रओ।

पंचू - अरे उतै तौ कौनऊं कौ टपरा है, लालटैन जर रई।

हीरा - कौनऊँ आदमी सौ ठाड़ो। कछू दार में कारो है।

(धीरे-धीरे सभी आगे बढ़ रहे हैं)

मोहन - भैया वौ तौ बाबा जू सौ लगत।

लच्छू - हओ बावई तौ है। अरे बड़े भैया जौ तौ वोई बाबा है जौन काल परौं अपने मुहल्ला में फिर रओ तो। और हमसें पूँछत तो कै मोहन के घरै न्याव काय हो रई। साँसऊ जो तौ वोई है।

लखन - भैया हरौ हल्ला-गुल्ला ना करौ - हरां-हरां चलौ। बाबा जू की अच्छे सें खबर लई जाये।

(धीरे-धीरे बढ़ते हुये सब उसके पास तक पहुँचते हैं, जैसे ही बाबा ने उन्हें देखा तो दौड़ने लगा, सारे लोग उसके पीछे भागे और उसे घेर लिया। पकड़ने के बाद उसकी जमकर धुनाई की)

हीरा - मारौ सारे खों, बच कें जा ना पाये।

संतोष - पनइयाँ उतार कैं दै-दना-दन लै-लै-लै।

पंचू - सारे बदमाश खों जान सें खतम कर दो, आग लगा दो, कुटिया समेत जर कैं खाक हो जाये।

लखन -अरे नईं-नईं कानून अपने हाथ में ना लेओ ससरे खों पुलिस के हबाले कर देओ।

सब एक साथ - हओ-हओ, ऐसई करौ कुतवाली लै चलौ

(रस्सा से बाँध कर उसे मारते हुये ले जाते हैं)

(पर्दा गिरता है)

(पर्दा उठता है) (दृश्य परिवर्तन)

(सुबह का समय, धूप खिल गई चिड़ियाँ चहचहा रही हैं। घर के दरबाजे पर अम्मा और उर्मिला बैठी हैं। उदासी और चिन्ता उनके चेहरे से साफ झलक रही है साथ में लच्छू की अम्मा और दो-चार औरतें और भी हैं।)

अम्मा - बहू भुन्सारो हो गओ, सूरज इत्तो ऊपर चढ़ याओ, लखना अबै तक नईं लौटो। कुजाने का भओ उतै।

उर्मिला - अम्मा! फिकर काय खों करती। कौन वे अकेले आ गये, पुरा-मुहल्ला के सबई जनें तौ हैं संगै।

लच्छू की अम्मा - ये जिज्जी मोहन और लच्छू तक नईं दिखात हमें लगत वे सोई उनोरन खोईं पछया गये हुइयें।

उर्मिला- अरे काकी वे तौ सबसें आँगे गये हुइयें। पै तुम चिन्ता ना करौ आउतई हुइयें।

(तभी लच्छू और मोहन भागते हुये आते दिखाई देते हैं उनके पीछे लखन मास्टर साहब व अन्य लोग भी आ रहे हैं।)

लच्छू - *(हाँफता हुआ)*, काकी-काकी वौ बाबा पकरौ गओ।

मोहन - खूब मजा आओ। थाने में पुलिस अच्छी खबर लै रई ऊ की।

अम्मा - कओ राम धई? काय बेटा कैसे पकरो गओ, नठूया का भओ बताओ तौ?

लखन - होने का हतो अम्मा। इतै सें हमौरे ऊ डबला खों पछयात भये गये। देखतई-देखत वौ डबला दूर जंगल में एक कुटी के पास जा के उतर गओ। बाबा बाहर ठांड़ोई हतो बाट हेरें कै उर्मी आरई हुइये। हमोरन ने पाछे सें जा कें धर पकरो सारे खों।

मास्टर साहब - और काकी फिर का धुनकाई करी, वा धुनकाई कै हा-हा दइया के बजार लगे। फिर ज्योरा सें बाँध कें थाने लै गये सो पुलिस वारन ने मार-मार कें सब कछू उगलवा लओ।

अम्मा - *(आश्चर्य चकित हो, उनकी बातें सुनते हुए बोली)* कओ राम धई? जा तौ बताओ कै का-का रानो ऊ ने।

मास्टर साहब - अरे काकी पैलें तौ कछू रानईं नईं रओ तो जईं सें थानेदार के डन्डा परे सोई फिर उगलन लगे।

हीरा - कैसे-कैसे ठग डरे दुनियाँ में, ना चोरी ना डाँकौ वे तौ तुमायेई हात सें तुमई मर्जी सें लै जारये। ऐसी कैऊ वारदातें रानी ऊनें।

लखन -और ऊने जा भी बताई कै कैसे वौ ताबीज गड़ा पैरा के जनी-मान्सन खों अपने नेंगर बुला लेत तो और भुन्सारो होवे सें पैले वे अपने घरै पींच जात ती कोऊ खों कछू पतौई न परत तो।

अम्मा - *(दाँत पीसते हुए कहती हैं)* भाई हत्यारो है, नाशमिटौ बर गये ने हमें लूट लओ। नई की नई-धोती ५००-७००

रुपइया। ये दइया हम तौ लुट गये *(सर पीट कर रोने लगती है)*

लखन - सुनी अम्मा रुपइया-पइसा तौ गऔ सो गओ। अब तौ जा खैर मनाओ कै उर्मी ने वौ गड़ा-ताबीज बाँद नईं लओ नईंतर का होतो? अब रोबौ-धोबौ बंद करौ।

संतोष - और कानन खों हांत लगा लो कै अब ऐसे ढोंगियन सें दूरई सें हांत जोरने हैं।

लखन - वे बच्चू तौ फँस गये, उनै तौ कानून सजा दै हैई अकेले तुमौरें चेत जाओ। ऐसी गलती दुबारा ना होवै।

(अम्मा, उर्मी और वहाँ बैठी हुई सभी महिलायें कान पकड़ती हैं)

अम्मा - अब तौ ऐसे कान पकर लये।

मास्टर साहब - काकी एक बात कौ हमेशा ध्यान राखौ बाबा-महत्मा कोनऊँ भगवान नौंईं जो काऊ खों मोड़ा-मोड़ी दै सकें। आज मैडीकल साइंस ने इतनी तरक्की कर लई डाक्टरन की होशियारी सें सैकरन निसन्तान दम्पत्ति संतान कौ सुख भोग रये हैं। सो हमाई मानो लखन भैया औरे कालई तुम अस्पताल जाओ औ डाक्टर की सला लो।

लखन - का बतायें मास्साब हम सोचइ रये ते कै एक आद दिनां हम औ उर्मी डाक्टर के पास जात हैं। अकेलें ऊ के पैलेंई इनोरन ने जौ नाटक कर लओ।

मास्टर साहब - कछू बात नई, अबै कछू नईं बिगरो ईसुर की कृपा सें सब ठीकई हुइये। ऐसो है लखन भइया, जे ऐसी घटनायें कछू न कछू शिक्षा जरूर दै कें जाती हैं।

लखन - सई बात हैं अब देखौ ना कितनी बड़ी दुर्घटना होवै से बच गई।

मास्टर साहब - आज की दुनियाँ में ऐसे ढौंगी, लुटेरे तुमे पग-पग पै मिलहैं। कोऊ साल भर में रुपइया दुगने करवे की बात करत है तौ कोऊ चौगुने करबे की कै कें तुमे लूट रओ। कैउ ठग गाने गुरिया, सोनों-चाँदी दो गुनौं करवे कौ झाँसौ देत हैं। कोऊ गाने उजरवावै (चमकावें) के बहाने उनै लै कैं गोल हो जात।

पंचू - अबै कछू दिन पैलें सुनी नईं ती कै एक बड़ी कम्पनी के नाम पै कछू लोगन ने लाखन रुपइया जोरे, कै दो के दस दै हैं। और जब अच्छो पइसा जमा हो गओ सो पतोई नइँ परो कै क्यांय तौ वा कम्पनी गई औ क्यांय उनके कर्मचारी।

मास्टर साहब - एक नईं ऐसी हजारन कम्पनी गरीबन के पइसा खा कें भग गई। सरबसर ठगुआ लूटत फिरत अपन खों।

लखन - जई तौ सोचवे की बात है कै आजकाल अपनी महनत कौ फल अपनो हक्क तौ कोऊ देत नइयाँ। फिर फिरी फण्ड में कोउ-कोउ खों का दै है?

मास्टर साहब - बिल्कुल सही। जा कई तुमने सौ टका की बात, पैली बात तौ अपने हांतन पै अपनी मैनत पै भरोसौ रक्खौ, दूसरे अपने आँख-कान खुले राखौ। तनक दिमाग कौ स्तेमाल करौ, सोच समज कें चलौ तबई ऐसे ठगुअन सें बच सकत हो।

हीरा - औ लालच तौ बिल्कुलई नई करनै। कतई है कै लालच बुरी बलाय होत। लालच में पर कोंई इन्सान ऐसे चक्करन में फँसत हैं।

लखन -साँची कै रये। मास्साब परकी साल चार-छै घरन कौ गानो-गुरिया गओ तो याद होय तुमें तौ, हमें लगत ऐई बाबा कौ काम हतौ वो।

मास्टर साहब - बिल्कुल हो सकत तबई तौ वौ फिर कऊं इतै आओ।

अम्मा - *(गुस्सा होकर)* कजन्तकीदार वौ पापी मोय मिल जाये तौ नासमिटे की डाड़ियई नौंच लेओं।

(तभी एक आवाज सुनाई देती है, अलख निरंजन, माई कुछ लाना हरि ओम, हरि ओम)

(सब चौंक कर देखते हैं लच्छू बाबा का रूप धर कर आता है। अम्मा उठ कर खड़ी हो जाती है और उसकी ओर दौड़ती है।)

अम्मा - टैर-टैर नठ्या आज मैं निकारत तोरी हरि ऊँ।

(और लपक कर उसकी दाढ़ी पकड़ लेती है, नकली दाढ़ी उनके हाथ में आ जाती है। वे आश्चर्य से कभी बाबा की दाढ़ी कभी उसका मुँह देखती है। तभी वह बोल पड़ता है)

लच्छू - माई तेरा कल्याण हो। ये तो लच्छू बाबा की दाढ़ी है, तू इसका क्या करेगी।

(और अम्मा के हाथ से वह नकली दाढ़ी छीन कर फिर से अपने मुंह पर चिपका लेता है और दाढ़ी पर हाथ फिराते हुए कहता है)

लच्छू - दो मिनिट में इतनी लम्बी दाढ़ी उग आई। देखा बाबा का प्रताप?

अम्मा - उसका कान पकड़कर खींचते हुये कहती है। तोरी मूड़ बरै। मैं बताउत तोखों बाबा कौ पिरताप।

(सब लोग ठहाका मारकर हँसते हैं)

(पर्दा गिर जाता है)

- एफ-७, गीत बंगले, फेस-२, दुर्गेश विहार, जे.के. रोड, भोपाल (म.प्र.)

बुन्देली हायकू

- राजीव नामदेव 'राना लिधौरी'

कछु बचो न,
वो अखिया मिलाके।
सबे लें गई।।

सयानी होत,
घर से भग जात।
गाँव की मोड़ी।।

वसंतोत्सव,
बुन्देली है बिखरी।
बसारी गाँव।

प्रेम के लानें,
राम-राम है कानें।
मिले सयानें।।

चौंच लड़ती,
ट्यूशन में मोड़ी।
मौंड़न संग।

नहीं लगाम,
मंहगाई को साँड़
छुट्टा फिरत।।

- शिवनगर कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुन्देली व्याकरण का इतिहास एवं मानकीकरण

- डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

भाषाओं में परिवर्तन होना भाषागत एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसको देश-काल और सामाजैतिहासिक कारक मुख्यतः प्रभावित करते हैं, लेकिन उसकी व्याकरणिक कोटियों की एकरूपता ही बहुत लम्बे समय तक उसकी पहचान बनाये रहती है। अन्यथा जायसी और तुलसी (रामचरित मानस) दोनों की भाषा को एक भाषा (अवधी) नहीं माना जाता।

देश की आजादी के बाद शिक्षा के क्षेत्र में विविध प्रयोगों ने हिन्दी शिक्षण में व्याकरण के शिक्षण से भी आजादी ले ली। अधिकांश शिक्षित लोगों को कारकों तक के नाम याद नहीं है। उनके प्रत्यय चिन्हों का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता है। हिन्दी मातृ भाषा होने के कारण सब धकता है। जहाँ थोड़ा अन्तर होता है वहाँ हिन्दी-हिन्दी में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ-छत्तीसगढ़ की हिन्दी की तुलना परिनिष्ठित हिन्दी से करके व्याकरण विद्वान पढ़ी हुई हिन्दी का अन्तर समझा जा सकता है।

जब हम बुन्देली के मानकीकरण या परिनिष्ठीकरण की बात करते हैं, तो व्याकरण का स्मरण दिलाना आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख में बुन्देली के मानकीकरण की बात के साथ बुन्देली व्याकरण की बात कुछ बेमेल सी लगती है, परन्तु यदि हम बुन्देली का एक सर्वमान्य रूप स्थापित करना चाहते हैं तो हमें व्याकरण पर भी ध्यान रखना पड़ेगा। यहाँ बुन्देली व्याकरण का मात्र स्मरण ही दिलाया जा रहा है, ताकि बुन्देली विद्वान उस दिशा में चिन्तन और काम करें।

बुन्देली का प्रथम व्याकरण स्व. महेश प्रसाद जैसवाल के यूट्रैक्ट विश्वविद्यालय हालैण्ड में किये शोध कार्य 'ए लिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ बुन्देली' के रूप में प्रकाश में आया। नाम से यह व्याकरण नहीं लगता है, परन्तु अध्यायों के नाम उनके अन्तर्गत काम से बुन्देली व्याकरण ही है। यथा - 1. Noun, 2. Pronoun, 3. Adjective, 4. Numerls, 5. The Post Position, 6. Indiclinables, 7. The Verb, 8. Adverb, 9. Syntex, 10. Emphatic Forms. दूसरा श्री लक्ष्मी चन्द (नुना) का 'बुनियादी शब्दकोश और व्याकरण' बुन्देली का तीसरा व्याकरण डॉ. श्रीमती रमा जैन का शोधकार्य 'परिनिष्ठित बुन्देली का व्याकरण' प्रकाश में आया।

चौथा भी एक लघु प्रयास स्व. भगवती प्रसाद निगम ने लुधाँती बुन्देली में 'इन्द्रधनुष' नाम से अपनी पद्यात्मक आत्मकथा में एक किरण (अध्याय) बुन्देली व्याकरण पर डाली है, जो पाँच पृष्ठों में सिमट गयी है।

डॉ. रमा जैन ने अपने शोध प्रबन्ध को परिनिष्ठित बुन्देली का व्याकरण कहा अवश्य है, परन्तु ग्रियर्सन से लेकर थोड़े हेर-फेर के साथ अन्य विद्वानों द्वारा किये गये बुन्देली के परिनिष्ठित क्षेत्र को स्वीकार किया है। बुन्देली जो वास्तव में खटोला, लुधाँती और बनाफरी के मिलन क्षेत्र की बोली है, और उसकी सामान्य जन भाषा पर डँगयाऊ बुन्देली का बहुत प्रभाव है।

मैंने १६-१७ नवं. १९९९ ई. में बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी छतरपुर के तत्वावधान में आयोजित बुन्देली संवाद-६ के अवसर पर अकादमी के संचालक स्व. डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त से सम्पूर्ण बुन्देली भाषी क्षेत्र के लिए बुन्देली का एक मानक, परिनिष्ठित या साहित्यिक रूप स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि बुन्देली का उपभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने का मार्ग प्रशस्त हो सके। क्योंकि मैंने शोधकार्य के दौरान और बुन्देली के उपबोली के कुछ क्षेत्रीय रूपों गद्य-पद्य; अधिकतर पद्य रचनायें पढ़ने पर यह गंभीरता से महसूस किया था कि यदि बुन्देली अपने क्षेत्रीय उपबोली रूप में बाहर नहीं निकलती है तो उसका ब्रज, अवधी आदि की तरह उपभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होना एक सपना ही रहेगा। हमारे इस आग्रह से डॉ. गुप्त सहमत हुये और उन्होंने समारोह में बुन्देली के मानकीकरण पर आलेख वाचन तथा चर्चा के लिये एक सत्र रखा। मैंने और श्री गुणसागर सत्यार्थी ने बुन्देली का मानकीकरण शीर्षक आलेख पढ़े, जिसमें उपबोली गत कुछ भिन्नताओं पर प्रकाश डाला और बुन्देली में उनके स्थान पर एकरूपता लाने के लिए कुछ तर्कपूर्ण शब्दों को मानक रूप में अपनाये जाने हेतु प्रस्तावित किया था। स्व. श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल, विन्ध्यकोकिल श्री भैयालाल व्यास, स्व. शारदा प्रसाद उदैनियाँ 'मनोज' आदि मूर्धन्य विद्वानों की सराहनापूर्ण सहमति से उत्साहित होकर मैंने मीडिया के द्वारा तथा अनेक मंचों पर बुन्देली के मानकीकरण के प्रश्न को उठाया और इस सम्बन्ध में बहस आमंत्रित की; परन्तु खेद है कि किसी विद्वान ने समर्थन, सुझाव या आलोचना के दो शब्द भी नहीं लिखे।

झाँसी के डॉ. राम नारायण शर्मा द्वारा आयोजित तृतीय बुन्देली भाषा-साहित्य एवं संस्कृति सम्मेलन, झाँसी सन् २००२ के मंच पर मैंने यह प्रश्न उठाया था। उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप चौथे सम्मेलन वर्ष २००३ की स्मारिका 'बुन्देली बानी' में दो स्वघोषित डाक्टरों ने अपने अटपटे और स्वयं विरोधाभासी लम्बे लेखों द्वारा मानकीकरण के प्रस्ताव को हास्यास्पद; जगड्वाल और बाग्जाल कह कर खारिज कर दिया था। एक असली डॉ. बलभद्र तिवारी पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग एवं बुन्देली पीठ सागर ने इस तथ्य को छुपाते हुए कि 'कोई मानक भाषा साहित्य लेखन तथा अपनी ही उपबोलियों में सेतु का काम करने के लिए होती है', लिख दिया कि ''बुन्देली भाषा के मानकीकरण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे भाषा

का मूल स्वरूप विलुप्त हो जायेगा।'' किन्तु मानकीकरण के एक अंश से सहमति जताई कि ''आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किया जा सकता है।''

भाषा की व्याकरणिक कोटियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है संज्ञा और क्रिया। सर्वनाम तो संज्ञा के ही कार्यकारी हैं। उन पर भी लिंग, वचन, कारक और वाच्यों की स्थिति में संज्ञा तथा कालनिर्णय में क्रिया और सहायक क्रिया ही विधिक रूपों में विकसित होकर प्रमुख उपबोली रूपों का निर्धारण करती है। मानकीकरण का तात्पर्य है एक साहित्यिक बुन्देली की स्थापना और बुन्देली के सम्पूर्ण उपबोली क्षेत्रों में पूर्ण अपनेपन के साथ अपनाए जाने योग्य लिंग, वचन, कारक, सर्वनाम, क्रिया के काल तथा सहायक क्रिया आदि में शब्दों की कुलीनता, व्यापकता एवं मुख सौंदर्य को ध्यान में रखते हुए मूल शब्दों और प्रत्ययों का चयन कर एकरूपता लाना हैं

कुछ प्रमुख भिन्नताएँ निम्नानुसार हैं -

१. **कर्म कारक के प्रत्यय** - कों, खो, खाँ, हाँ, खें, य के लानें, के काजें, के लाजें इनमें खों का प्रयोग मानक बुन्देली में योग्य होगा, क्योंकि वह 'कों' की तरह निर्बल नहीं है, और खाँ की तरह खड़ापन नहीं है। उसमें ध्वनिबल के कारण प्रेषण और ग्राह्यता अधिक है।

'य' जैसे जाय, वाय, ई (इसको, उनको) इन शब्दों को साहित्य के लिए मानक बुन्देली में पूर्णतः वर्जित करना उचित होगा क्योंकि इन्हीं के कारण प्रभूत मात्रा में बुन्देली साहित्य ब्रजभाषा में खाते में जाता रहा।

'हाँ' का कर्म कारक चिन्ह के रूप में 'हाँ' का प्रयोग तो बिल्कुल ही नहीं होना चाहिए। अभी तक तो कोई बात नहीं थी क्योंकि यह एक सीमित क्षेत्र डंगयाऊ (बिजावर, किशनगढ़ तथा पन्ना जिले के कुछ भागों में बोला जाने वाला बुन्देली का एक अतिक्षेत्रीय रूप) अभी तक तो एक मौखिक परम्परा में होने के कारण कोई विशेष खतरा नहीं था लेकिन हाल ही में प्रकाशित एक रचना - 'बेर मकुरियाँ' नामक काव्य संग्रह में प्रयुक्त होकर इसने साहित्य क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है।

ऐसी अतिक्षेत्रीय भाषिक प्रवृत्तियाँ यदि साहित्य में प्रवेश कर जायें तो उस क्षेत्र की बोली में एक और स्थानीय रूप उभरने लगता हैं।

२. **वचन** - बहुवचन बनाने में 'न' तथा 'ओं' दो प्रत्ययों का प्रचलन है। लेकिन 'न' प्रत्यय ही बुन्देली का मूल प्रत्यय हो सकता है। 'ओं' प्रत्यय नव प्रवर्तित प्रत्यय है जो दक्षिण पर दिल्ली के आक्रमणकारियों के साथ पश्चिमी बुन्देली में आ गया है और सगरयाऊ बुन्देली तक में प्रचलित है। 'न' प्रत्यय ही उचित है जो बुन्देली की पहचान के अनुरूप है।

३. **परिणाम वाचक** - भौत, मुतके, मुलक के, गल्लन, बिलात, बड़े, कुल्ल, आदि शब्द प्रचलित हैं। इनमें से 'भौत' और 'बड़े' दोनों ही शब्द बृहद् से विकसित प्रतीत होते हैं किन्तु 'बड़े' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग कम ही होता है जैसे - ''मेला में बड़े मान्स जुरे ते।'' लेकिन भौत शब्द कुलीन भी है और व्यापक भी इसलिए मानक बुन्देली में इसी को मान्य किया जाना अधिक उपयुक्त है।

४. क्रिया के भूतकालिक रूपों के साथ हते, रहे, रए तथा भविष्य कालिक क्रियाओं में जैहैं, जैं, जैबी, जाबू, आदि रूप प्रचलित हैं। जैहैं स्वीकार करने योग्य है।

५. हकार का आवश्यकतानुसार उचित प्रयोग किया जाना आवश्यक है। हकार के स्वरीयकरण अथवा अल्पप्राणीकरण से भाषा की गति तो अवश्य बढ़ती है किन्तु प्रेषणीयता नकारात्मक रूप से प्रभावित होती है।

सर्वनाम आदि के प्रयोगों में भिन्नता आदि कुछ अन्य विचारणीय बातें भी हैं जिनकी एकरूपता पर विचार किया जा सकता है। यहाँ केवल मानकीकरण के सम्बन्ध में विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना है ताकि वे इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें।

- पुरानी नजाई, वार्ड नं. ८, टीकमगढ़ म.प्र.

ऊँचौ देश को उठाउनें

- कु. रिंकी शर्मा

धरम अपनों हम सबकों निभाँउनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।
कर की चोरी, रिश्वत खोरी
ई, धन सें न भरो तिजोरी
ई सें कुगत होयगी तोरी
इन कुकरमँन सें पीछौ छुड़ाउनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।
धरती की शोभा बिरछन सें
इनकी सेवा, करो लगन सें
सुधरै पर्यावरण जतन सें
हमें डगर-डगर बिरछा, लगाउँनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।
शिच्छा की है अलख जगानें
साक्षर-सब नर-नार बनानें
जा तें तन-मन में सुख आनें
दिया शिच्छौ को घर-घर जराउँनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।
करबें बंद भ्रूण हत्यायें
सब कन्याँन के प्राँन बचायें
घर घर जौ सँदेसौ पठायें।
ई पाप छोड़, पुन्न को कमाउँनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।
आपस की तकरारें तजकें
माला प्रेम-भान की भजकें
सब धरमँन को आदर करकें
अपनी मैया कौ मान है बढ़ाउँनें, ऊँचौ देश कों उठाउँनें।।

- डिग्री कॉलेज के पास, आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

जा डायन मैंगाई

- गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

मैंगाई की मूंदी मार सें कोऊ नईं बच पा रओ। अमीर, गरीब, बामन, बानियाँ, ठाकुर औ ओछी जात-पाँत बारे। मैंगाई की निघा सबई पै बिरोबर सें पर रई है। ऊकी नजर भेदभाव नईं राखत। सिरकार ऊखो मूंड पै चढ़ायें है जैसें लाड़लौ पूत होय। इकलौती, हद्‌दई करें। हर चार छै मइना में जब देखौ तब आगी मूतत। उर सिरकार है, सो मँतक-मँतक तमासौ देखत। कीसें कयें कोऊ सुनैया नैयां, सिरकार कित्ते अत्त कर रई। कोऊ इयै रोकबे बारौ नई दिखात अब तौ। ऊपर बारौ अपनी टेड़ी निघा सें औरऊँ पेरें डारत। अबै जिदना सें मैंगाई नें चरपेटा दओ, सो ऊपर बारे नें पानी कौ पथरा पटक दओ, जीसें फसलें चौपट हो गईं। खेती-किसानी बिलुर गई। भाजी-तिरकारी कौ भट्टा बैठ गओ। बजार सरग पै चढ़ गये। उतै सिरकारी खरीद बारौ गोऊँ, धान जौन (खरीदो गओ) हतो सोऊ खुले मैदान में डरो-डरो भींज गओ, सर-फफूंड़ गओ, उर ढोर-बछेरू, सुगरा-सुंगरियाँ, बुकरा-बुकरियन नें कछू खाओ कछू अन्न कौ कुन्न करो। सिरकार टुकर-टुकर तकत रई। स्यानें कात हैं कै सिरकार कीं आंखीं उर कान नईं होत। बा आँधरी उर बिहरी होत। नैता ओई अच्छी कहाउत जीमें आंदरे उर बिहरे होबे बारे गुन भरे होंय। जनता बुकरिया सी मिमयात रहै और नेता मुस्क्या कें कनांव काट कें कड़ जावै। कांत हैं कै अटके पै गदा सें कक्का कओ जात, सो बखत परे पै नेता तौ जनता के ऐंगरें जाकें ऊखों सगे सें बढ़कें बना लेत।

नेतन की का कानें। जे तौ कहाउत ईं जनता के प्रतिनिधि। पै साँसऊ में जे खुदई के गुड़नतान में उरजे रात। जौन खरचा-पानी चुनाव में भओ, सो ऊ पैलऊँ मय-ब्याज के वसूलबे की घोकत। फिर कुरसी पै बनें रैबे के लानें जुगाड़ कुदाईं देखत। जनता जाय भाड़ में। तौ चरचा मैंगाई की आय हम करत ते। सो जे जौन सिरकारी औदन पै बैठे हर-हर दारै मैंगाई बढ़ा कें नाक में दम जनता की करत भये जौ बताउत रहत, कै सिरकार हमाई मुठी में है। जनता खों दिन में तारे हमईं आय दिखा सकत, दूसरन में कूबत नैयां। मैंगाई की जौन बा डायन है सो कोऊ खों नईं छोड़ सकत। ऊकी चपेट में बारे-बूढ़े, अमीर-गरीब, हल्के-बड़े सबई रहत हैं। देहात में कान लगत कै जौन 'डायन' होत बा तौ एक घर छोड़ई देत पै जा जौन मैंगाई डायन है सो झुपरिया लौ नईं छोरत। बनी मजूरी करन बारे खों भेट भरबे काजें दो जून की रोटी के लानें ऐड़ी चोटी एक कन्नें परत। तऊँ पै तिरकारी लैबे जा बखत ऊ दुकान पै जात सो भाव सुनईं कैं ऊ रै जात। आलू की पनियाँ तिरकारी बना कें, नोंन-मिरचा सें रोटी खा लेत। गैस की किल्लत बनी रइत, केवला-नकरिया की कछू दसा कही नईं जात। सिरकार मनंख की पसुरियाँ गिनबे की फिकर में सूकत जारई है। सो जनता खों बिना भूँके मारें जौ काम भौतई मुसकल है। ई मुसकल खों हल करबे मैंगाई बढ़ावौ जरूरी है। घरैनी कात है कै "मोरौ सैयां तौ भौतई कमात है। मैंगाई डायन खाय जात है।" सो औरत जनी खों चूले सें मूंड़ रोजई मारनें परत है। बा जानत है कै घर-गिरस्ती कैसें चलाउनें परत। अब जा मैंगाई डायन ऊकी सौत बनी जीवौ हलाकान करवे सामूं ठाड़ी है। कान सोई लगत कै सौत तौ चून की लौ बुरई होत। फिन जा मैंगाई डायन बारी सौत? ईकी तूती गेरऊँ बज रई। ईसें पिंड कैसें छूट पाउनें, कोऊ नई जानत। नें जोतसी, नें बड्‌डे-बड्‌डे पंडत, ग्यानी-ध्यानी उर नें आक्टोपस पाल बाबा। नंदी, सुआ-परेबना की कोनें चलाई। पंडा, गुनियां-नावतेउर सत्तरा घाट कौ पानी पीबे वारे लौ ई मैंगाई डायन से पिंड नईं छुड़ा पा रये हैं। इत्ती जबर है जा। कहत हैं जबरा मारे, रोन नें देय, सो ऐई दसा जनता की हो रई है।

- पी-३२, डी-१०, कचनार सिटी,
विजयनगर, जबलपुर (म.प्र.)

हार कौ हरवारो

- मुक्ताप्रसाद गुप्त 'रत्नेश'

हार को हरवारो, हमाओ पालन हारो।
न चिलचिलाती धूप न अँधियारी रात।
न कड़ाके की सरदी, नहीं देखे बरसात।।
रोजाना उठ जात, देख जुन्हैया तारो।हार को हरवारो...।।

बज्जुर की छाती, खेत को खूबई जोतत।
अजब की मेहनत, पसीना न वे पोंछत।।
उजाउत पेला सोनों, गरीब तऊ बिचारो।हार को हरवारो...।।

संग देती घरवारी, काम में हाथ बटाउत।
गृहस्ती की गाड़ी, मिलकें सदा चलाउत।।
मिल चलने से हो जात, आसान काम भारो।हार को हरवारो...।।

इनकेई दम पै, चल रहे कारोबार।
इनईं सें रोटी रोजी, इनईं पै दारमदार।।
हमाये नेता भइया, पेट न इनको मारो।हार को हरवारो...।।

बढ़ाओ इनको मान, जे हैं देश की शान।
इनकी उन्नति को, रखो अब हरदम ध्यान।
इनको खुशहाल बनाने, चलो लगायें नारो।
हार को हरवारो, हमारो पालन हारो।।हार को हरवारो...।।

-रत्नेश सदन, आलमपुर, जिला भिण्ड (म.प्र.)

गठेवरा का युद्ध

- अम्बिका प्रसाद दिव्य

'है यह वही गठेवरा, जहाँ जूझ मजबूत'
रहे खेत गृह युद्ध में, सवा लाख रजपूत।,
धन रणमत्त गठेवरा, गौरव गरब निकेत।
हमरे खंड बुन्देल को, साँचहुँ तू कुरुखेत,

ये शब्द बुन्देलखण्ड के सुप्रख्यात कवि वियोगी हरि ने कहे हैं।वे गठेवरा को बुन्देलखण्ड का कुरुक्षेत्र मानते हैं। कहा जाता है कि गठेवरा में जो गृह युद्ध हुआ था उसमें सवा लाख ठाकुर मारे गये थे।

जिस गठेवरा ने इतना बड़ा बलिदान लिया था, उसके विषय में कुछ जानने की किसे इच्छा न होगी। यह गठेवरा एक छोटा सा ग्राम है। यह छतरपुर से दक्षिण पूर्व ४ मील की दूरी पर स्थित है। पन्ना से छतरपुर जाने वाली सड़क से इसकी दूरी केवल एक मील के लगभग है, और इस तक पहुँचने का मार्ग भी दुर्गम नहीं है। इस ग्राम के समीप ही एक बड़ा मैदान पड़ा है, जिसमें यह युद्ध लड़ा गया था।

'बुन्देलखण्ड के गौरव' नाम से विख्यात श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य की गणना देश के शीर्ष ऐतिहासिक उपन्यासकार, कवि एवं चित्रकार के रूप में की जाती है। साहित्य की सभी विधाओं में दिव्य जी ने साठ महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। वे सफल चित्रकार, अन्वेषी और शिक्षाविद् भी थे। अनेक पुरस्कारों एवं सम्मानों से गौरवान्वित दिव्य जी लोकप्रिय समाजसेवी तथा क्रान्तिकारी भी थे। दिव्य जी द्वारा रचित उपन्यास 'खजुराहो की अतिरूपा' का अंग्रेजी अनुवाद 'द पिक्चरस्क खजुराहो' ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति पाई है। दिव्य जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर अभी तक पाँच शोध प्रबंध लिखे गये हैं। इन्हीं की कलम से लिखा गया यह लेख पाठकों के लिए प्रस्तुत है। - सम्पादक

विवेचनीय है कि इस रणक्षेत्र को कुरुक्षेत्र क्यों कहा गया? क्या वास्तव में, यहाँ जो युद्ध हुआ था, वह उतना ही बड़ा था, जितना कि किसी समय कुरुक्षेत्र में कौरवों पाण्डवों के बीच लड़ा गया था। आज इसे इतना बड़ा मानने के लिए कोई साक्ष्य या प्रमाण नहीं। इसका भी कोई प्रमाण नहीं कि इसमें सवा लाख ठाकुर मारे गये थे। तब भी किंवदन्तियों के आधार पर मानना ही पड़ेगा कि यह बुन्देलखण्ड का सबसे बड़ा युद्ध था। इसी कारण से इसे बुन्देलखण्ड का महाभारत भी कहा जाता है। इसके गौरव को चुनौती देने वाले, बुन्देलखण्ड में किसी अन्य युद्ध का नाम भी तो नहीं लिया जाता। तब भी सर्वसाधारण को इसकी जानकारी बहुत कम है। गठेवरा ग्राम के निवासी भी इस युद्ध के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं रखते। उनसे इतना ही सुना जा सकता है कि यहाँ के मैदान में किसी समय ठाकुर-ठाकुर आपस में लड़ मरे थे। वे एक लाख रहे हों या सवा लाख, या सवा हजार ही।

पर यह निश्चय है कि यहाँ युद्ध हुआ था। यह सन् १७८३ ई. में लड़ा गया था। छतरपुर के गजेटियर में लिखा है कि यह युद्ध पन्ना के बेनी हजूरी तथा सुंगरा ग्राम के राव अर्जुन सिंह में हुआ था। राव अर्जुन सिंह बाँदा राज्य के कामदार थे। एक दिन बेनी हजूरी छतरपुर आये। छतरपुर उस समय पन्ना राज्य के ही अन्तर्गत था। बेनी हजूरी ने भगवन्त चौधरी के काम की जाँच की। भगवन्त चौधरी अमीन के पद पर कार्य करते थे। उनके लेखा-जोखा में कुछ अनियमितता पाई गई। इससे बेनी हजूरी ने उन्हें बहुत भला बुरा कहा और गालियाँ भी दी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पैर से जूता भी उतारा और उन्हें बुरी तरह पीटा भी। भगवन्त चौधरी इस अपमान को न सह सके। वे उसी समय छतरपुर को छोड़कर चले गये। इसी समय बेनी हजूरी को समाचार मिला कि कालिंजर के किलेदार कायम जी चौबे बगावत कर बैठे हैं और कालींजर पर अपना स्वतंत्र अधिकार चाहते हैं। यह समाचार पाते ही बेनी हजूरी को कायम जी चौबे को वशीभूत करने के लिए कालींजर का को प्रस्थान करना पड़ा। कालींजर पहुँचते ही दोनों में टकराव छिड़ गया।

इसी समय, जब बेनी हजूरी कालींजर में कायम जी चौबे से युद्ध कर रहे थे, राव अर्जुन सिंह कलानी गाँव को आये। भगवन्त चौधरी को जब यह समाचार मिला, वे भी कलानी गाँव पहुँचे और राव अर्जुन सिंह से मिले। उन्होंने राव अर्जुन सिंह से अपना दुखरौना रोया और उन्हें छतरपुर को अपने अधिकार में कर लेने की प्रेरणा दी। राव अर्जुन सिंह इस इरादे से आये ही थे। उन्होंने छतरपुर पर आक्रमण किया और उसे अपने अधिकार में ले लिया।

यह समाचार पाते ही बेनी हजूरी कालींजर से दौड़े आये और गठेवरा के मैदान में दोनों की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। छतरपुर गजेटियर में गठेवरा के युद्ध का यही एक कारण बताया गया है। परन्तु इतिहासकार गोरेलाल तिवारी ने अपने बुन्देलखण्ड के इतिहास में इस युद्ध का कारण कुछ और ही बताया है। उन्होंने लिखा है कि महाराज छत्रसाल के वंशज, पन्ना के राजा हिन्दूपत के तीन पुत्र थे - सरमेद सिंह, अनिरुद्ध सिंह तथा धौकल सिंह। सरमेद सिंह को सरनेत सिंह भी कहा जाता था। सरमेद सिंह बड़े पुत्र थे और पन्ना राज्य के हकदार थे। परन्तु महाराज हिन्दूपति इनसे अप्रसन्न रहते थे। अतः उन्होंने अपने दूसरे पुत्र अनिरुद्ध सिंह को अपना युवराज घोषित कर दिया। अतः महाराज हिन्दूपति की मृत्यु के पश्चात् अनिरुद्ध सिंह ही राजा हुए।

राजा अनिरुद्ध सिंह के दो कामदार थे - बेनी हजूरी और

कायम जी चौबे। कायम जी को खेमराज चौबे भी कहते थे। बेनी हजूरी और कायम जी चौबे में आपस में वैमनस्य रहता था और दोनों एक दूसरे को नीचा दिखाने के प्रयत्न में लगे रहते थे। परन्तु राजा बेनी हजूरी की बात अधिक मानते थे। इस कारण से कायम जी चौबे राजा अनिरुद्ध सिंह के बड़े भाई सरमेद सिंह से छिपे छिपे मिल गये और उन्हें राज्य छीन लेने के लिये उभारने लगे। राजा अनिरुद्ध सिंह को जब कुछ पता चला, उन्होंने कायम जी चौबे को किलेदार बनाकर कालींजर भेज दिया, पर इससे कायम जी चौबे को और भी अधिक अवसर मिल गया। वे सरमेद सिंह को और भी अधिक प्रेरणा देने लगे। सरमेद सिंह पर उनका मंत्र चल गया। वे राजा अनिरुद्ध सिंह से युद्ध करने की तैयारियाँ करने लगे। राज्य उनका था। उनके पिता ने उनके साथ अन्याय किया था। उनका बड़ा अपमान किया था। वे क्षत्री हैं। तलवार के बल पर अपना राज्य क्यों न अनाधिकारी से छीन लें। लोहा से लोहा बजे। उनका राज्य उनको मिले या समूल नष्ट हो जावे। ये विचार उनको निरन्तर बेचैन करने लगे। गठेवरा के युद्ध का ही प्रमुख कारण था।

इस अन्तर्द्वन्द्व से प्रेरित होकर सरमेद सिंह पहले जैतपुर गये, इस समय जैतपुर के राजा खुमान सिंह थे। उनसे अपना अभीष्ट कहा और सैनिक सहायता माँगी। राजा खुमान सिंह को उनकी बात जँच गई। समझ गये कि उनके साथ अन्याय हुआ है। अतः उन्हें सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। उन्होंने राव अर्जुन सिंह को, जिन्हें नौने अर्जुन सिंह भी कहते हैं, एक बड़ी सेना देकर युद्ध के लिए भेजा।

गठेवरा का मैदान युद्ध के लिये चुना गया। अनिरुद्ध सिंह की सेना का संचालन बेनीहजूरी के हाथ में था। दोनों की सेनायें बुन्देलखण्ड के इस कुरुक्षेत्र में। आपने सामने जा डटीं। अन्य और भी राजाओं तथा जागीरदारों ने उभय पक्ष को सैनिक सहायता दी। युद्ध स्थल में उभय पक्ष की कितनी सेना उतरी, इसका कहीं उल्लेख नहीं। किसी कवि ने भी इस युद्ध का वर्णन नहीं किया। किसी सेना में कितने हाथी, कितने घुड़सवार, कितने प्यादे तथा कितनी तोपें आदि थीं, इसका भी कुछ पता नहीं। कहा केवल इतना ही जाता है कि इस युद्ध में सवा लाख ठाकुर मरे। युद्ध चला। लोहे से लोहा बजा। रक्त की नदियाँ बहीं। सवा लाख की संख्या में अपना नाम लिखने वाले कितने वीर धराशायी हो गये। इन वीरों में बेनी हजूरी ने भी वीरगति पाई और नौने अर्जुन सिंह एक अप्रतिम वीर के रूप में उभरकर सामने आये। सरमेद सिंह का न्याय पक्ष सबल था। वे विजयी हुये। इसी समय राजा अनिरुद्ध सिंह का देहान्त हो गया। सरमेद सिंह पन्ना की राजगद्दी पर आसीन हुए। यह था गठेवरा का युद्ध जिसने सरमेद सिंह को न्याय दिलाया।

इस युद्ध में न्याय पक्ष को समर्थन तो मिला, परन्तु पन्ना राज्य का विघटन भी हो गया। वह कितने ही छोटे-छोटे राज्यों और जागीरों में विभक्त हो गया। सारे बुन्देलखण्ड में छत्रसाल जैसा कोई सशक्त राजा न रह गया जो सारे क्षेत्र को पूर्ववत वशवर्ती बनाकर एक राज्य के रूप में रखता।

पन्ना के राज्य में फूटने वाले राज्यों में छतरपुर ही पहला राज्य था। इसकी स्थापना कुँवर सोनेशाह पंवार ने की। सोनेशाह पंवार पन्ना के राजा हिन्दूपति के ही एक सेवक थे। सन् १७७६ ई. में जब राजा हिन्दूपति की मृत्यु हो गई, उनके पुत्र सरमेद सिंह को पन्ना छोड़कर अपनी जागीर राजनगर को चला जाना पड़ा। उनके एक पुत्र था, जिसका नाम हीरासिंह था। सोने शाह पवार उसी हीरा सिंह के अंगरक्षक थे। हीरासिंह को ही जागीर पर सोनेशाह अपना अधिकार जमा बैठे। उन्होंने छतरपुर पर भी अधिकार कर लिया और स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। जब अंग्रेज सरकार शक्ति में आई उसने छतरपुर राज्य को मान्यता दे दी। सोनेशाह की मृत्यु १८१६ में हुई। उनका अन्तिम संस्कार छतरपुर में ही हुआ।

कायम जी चौबे कालिंजर के किलेदार, पन्ना के राजा अनिरुद्ध सिंह के द्वारा ही बनाये जा चुके थे। गठेवरा के युद्ध के पश्चात् उन्होंने भी अपनी एक स्वतंत्र जागीर स्थापित कर ली, जो चौबयाने के नाम से प्रख्यात हुई।

पन्ना के राजा हिन्दूपति ने बेनी हजूरी को मैहर की जागीर दी थी। राजा अनिरुद्ध के समय में बेनी हजूरी की मैहर पर अपना स्वतंत्र अधिकार जमा बैठे। बेनी हजूरी के पितामह ठाकुर भीम सिंह महराज छत्रसाल के नौकर थे। इनके पूर्वज अलवर से आये थे। ये कछवाहे राजपूत हैं। बेनी हजूरी की मृत्यु के पश्चात् राजधर मैहर का राजा हुआ। अंग्रेज सरकार ने भी मैहर राज्य का अस्तित्व मान लिया।

गठेवरा के युद्ध में सरमेद सिंह को जो विजय मिली थी, वह नौने अर्जुन सिंह के ही कारण। नौने अर्जुन सिंह एक बड़े वीर और प्रतापी राजा थे। सारे बुन्देलखण्ड में इनकी धाक थी। सभी इनका लोहा मानते थे।

नौने अर्जुन सिंह ने अपने लिये कोई स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं किया। ये सदैव स्वामिभक्त सेवक रहे। जिस समय नबाब अली बहादुर ने बाँदा पर आक्रमण किया, नौने अर्जुन सिंह, बाँदा के राजा बखत सिंह को लेकर अजयगढ़ आ गये। नवाब अलीबहादुर और गुसाँई हिम्मत बहादुर ने अजयगढ़ पर भी आक्रमण किया। इनके पास बहुत बड़ी सेना थी। नौने अर्जुन सिंह उसका सामना न कर सके और युद्ध करते अजयगढ़ में ही मारे गये। उनकी समाधि आज भी अजयगढ़ में खड़ी है।

यह था गठेवरा का युद्ध। इस युद्ध में बुन्देलखण्ड को, जिसे महाराज छत्रसाल ने एक शक्ति के रूप में संगठित किया था, टुकड़ों टुकड़ों में विभाजित कर दिया। आज यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि बुन्देलखण्ड के निवासी किसी समय इतने वीर बाँकुरे और रणोन्मत रहे होंगे, जिन्होंने गठेवरा जैसा विनाशकारी युद्ध लड़ा होगा। उस युद्ध के कारण ही गठेवरा जैसे नगण्य से ग्राम का नाम आज भी गर्व के साथ लिया जाता है। वियोगी हरि जैसे कवि उसे धन्य कहते हैं।

प्रस्तुति : जगदीश किंजल्क,

-१४५-ए, साँईनाथ नगर, सेक्टर-सी, कोलार, भोपाल

बुन्देली भाषा-साहित्य के प्रकाश स्तंभ : ईसुरी

- पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

ईसुरी को विगत हुए अभी मात्र एक सौ वर्ष ही बीते हैं, वे सन् १९०९ में (अगहन बदी सप्तमी १९६६ वि.) मात्र ६८ वर्ष की आयु में इस असार संसार से विदा हुए थे। इतने से अन्तराल में वे एक ऐसे मिथक बनकर रह गए हैं कि - :'जितने मुँह उतनी बातें' वाली उक्ति मानो ईसुरी के सन्दर्भ में समा गई है। बाबू कृष्णनन्द गुप्त तो ईसुरी को साधारण फगुवारा ही कहते रहे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि - "... ईसुरी न तो बुन्देलखण्ड का कालिदास था, न भवभूति न जयदेव, एक साधारण अल्पशिक्षित व्यक्ति था, जिसे भगवान ने काव्य रचना की अद्भुत चमत्कारी शक्ति प्रदान कर रखी थी।... वह एक फगुवारा था। फागों के दंगल में फागें कहने का उसे शौक था। इन फागों में ही उसकी प्रतिभा का चमत्कार हमें देखने को मिलता है। प्रतिभा का व्यक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं..." (पत्रिका ईसुरी-५, पृ. ४६) बाबू कृष्णानन्द गुप्त की ही लीक पर साहित्य महोपाध्याय पं. श्याम सुन्दर बादल ने भी अपने शोध ग्रन्थ - 'बुन्देली का फाग साहित्य' में ईसुरी को फगुवारा मानते हुए फाग साहित्य की वृहत्रयी निरूपित कर दी है, जिसमें उन्होंने तीन बड़े फगुवारे बताए - ईसुरी, गंगाधर व्यास और ख्यालीराम। फिर स्व. अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' जो एक स्थापित साहित्यकार के रूप में कुशल चित्रकार भी थे, वे भी इस लीक से बाहर नहीं निकल सके। उन्होंने भी अपने उपन्यास 'प्रेमतपस्वी' में ईसुरी का वही लोक प्रचलित फगुवारे का ही स्वरूप उभारा। इतना ही नहीं, दिव्य जी ने ईसुरी का एक काल्पनिक चित्र भी बना दिया जिसमें ईसुरी को ठेठ फगुवारे के रूप में नगड़िया बजाते हुए दर्शाया है। प्रख्यात उपन्यास लेखिका श्रीमती मैत्रेयी पुष्पा ने तो कल्पना की उड़ान में इतिहास-भूगोल की सारी सीमाएँ ही पार करके अपने उपन्यास 'कही ईसुरी फाग' में ईसुरी और रजऊ की प्रेम कहानी की अभिनव आयाम देते हुए, ईसुरी से विछोह पश्चात् रजऊ को झाँसी की रानी के स्वातंत्र युद्ध में उनकी सेना में पहुँचा दिया? जबकि ईसुरी का जन्म चैत्र सुदी दसवीं १८९८ वि. अर्थात् सन् १८४१ ई. में हुआ, जिसके ठीक सत्रह वर्ष बाद १८५७ की वह ऐतिहासिक क्रान्ति हुई थी। तो क्या ईसुरी और रजऊ मात्र १७ वर्ष की आयु में ही बिछुड़ गए थे? फिर मैत्रेयी पुष्पा के इस उपन्यास की भाषा? तो मैं समझता हूँ कि उसकी चर्चा में समय विनष्ट क्यों किया जाए? जिसके मन में जो आया सो ईसुरी के सन्दर्भ में लिखा पढ़ा जाता रहा है। उरई से प्रकाशित चतुर्मासिक पत्र 'स्पन्दन' में डॉ. रमाशंकर द्विवेदी का एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ, जिसमें वे एक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं - "...ईसुरी जिस गाँव में रहते थे, उस गाँव में क्रान्तिकारी भी आते थे। १८५७ का विद्रोह चल रहा था, किन्तु ईसुरी के काव्य में उसकी कोई झलक नहीं थी।..." (पत्रिका 'स्पन्दन' नवम्बर ८, फरवरी ९, पृ. ४८) है न मजे की बात, कि मैत्रेयी पुष्पा की भाँति बड़े-बड़े दिग्गजों तक को ईसुरी का कालबोध नहीं है कि वे कब जन्मे? कहाँ जन्मे? उनका लालन-पालन कहाँ हुआ? और ईसुरी का रचना करने का काल कब से कब तक रहा? वे कब कहाँ दिवंगत हुए... आदि मुद्दे की प्रमुख बातों को भूलकर ईसुरी के बारे में कुछ तो भी लिख दिया जाता है और साक्षात्कारों में कह दिया जाता है। आगत पीढ़ी के लिए ईसुरी का ऐसा मिथक हो जाना कोई अच्छी बात नहीं है। शोध कार्य होते भी हैं तो वह पूर्ववर्ती लेखकों के लिखे हुए की जुगाली के सिवा कुछ नहीं है। डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर की तरह गहरे पैठ कर ईसुरी की रचनाओं का न तो संकलन ही हुआ जिसे प्रामाणिक कह सकें न ही शोध। निश्चय ही ईसुरी के सम्बंध में 'जितने मुँह उतनी बातें' वाली उक्ति सटीक है। अस्तु -

यह सच है कि ईसुरी को उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी, निश्चय ही डाक्ट्रेट तो दूर स्नातक तक की पत्रोपाधि ईसुरी के पास तो क्या - कबीर, सूर, तुलसी, केशव... आदिक किसी भी कवि के पास नहीं थी। बाबू कृष्णानन्द गुप्त की बात हम स्वीकार करते हैं कि ईसुरी अल्पशिक्षित थे, अर्थात् निरक्षर-अनपढ़ नहीं थे। वह जमाना ही ऐसा था कि उस युग में ब्राह्मण बालक के सोलह संस्कारों में 'पाटीपूजन' भी एक संस्कार अनिवार्य था, और पांडेजू (शिक्षक) 'अमरकोश' का श्रीगणेश कराके ही पाटीपूजन कराया करते थे। तब निश्चय ही ईसुरी को हिन्दी भाषा ही नहीं संस्कृत का भी कामचलाऊ ज्ञान था। भले ही वे बुन्देलखण्ड के कालिदास, भवभूति और जयदेव नहीं थे। परन्तु संस्कृत वांङमय का प्रभाव उन पर अवश्य था। उदाहरणतः महाकवि कालिदास ने अपने अमर काव्य मेघदूतम् में यक्ष के माध्यम से विरह का वर्णन करते हुए संस्कृत में लिखा -

'नीत्वामासान् कनक वलय भ्रंशरिक्तं प्रकोष्ठः...।'

तो ईसुरी भी बुन्देली में विरहिणी नायिका का विरह वर्णन करते हुए कहते हैं -'कोंचन में हो निपकन लागीं, चुरियाँ छोड़ीं बहियाँ...'

कालिदास अपने गीत काव्य ऋतु संहार में लिखते हैं कि -

'कुर्वन्तो क्रमिमनताम् सहसोत्सुकत्वंवालाति,मुक्त लतिकाः समवेस्यमानाः।'

तो ईसुरी की फाग का यह अंश भी वही अभिव्यक्ति बुन्देली में दे रहा है - 'ईसुर लरम लिपड़तीं फिरतीं, सोनें कैसीं बेलें।'

संस्कृत वांङमय ही नहीं, भाषा साहित्य में तुलसी से भी वे यथावत प्रभावित दीख पड़ते हैं - तुलसी ने एक पद में लिखा -

'लहकी कपि लंक जथा खरखोंकी।...'

तो ईसुरी ने भी लगभग वही भाव अपनी फाग में भी गाया -

'तुम हौ उनखाँ कूरा-करकट, बे हैं झार अगन की।'
ठीक इसी प्रकार महाकवि सूर ब्रज गोपिकाओं के विरह सन्दर्भ में भ्रमर गीत लिख गए, जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी 'ऊधौ शतक' लिखा। परन्तु कथित रूप में एक साधारण फगुवारे ईसुरी की फागों में भी भ्रमरगीत की वही अनुगूँज और भी सशक्त रूप में हम सुन सकते हैं। ईसुरी गा रहे हैं -

हो गई स्याम निधुरतन जीरन, ब्रज की एक अहीरन।
कल नइँ परत निस वासर ढूँड़त, कालिन्दी के तीरन।
भरमत फिरत चित्त नइँ ठौरें, उठत करेजें पीरन।
हमरौ जनम बिगार चले गये, डारकें मोह-जँजीरन।
बन-बन व्याकुल फिरत ईसुरी, राधा भई फकीरन।''

राधा भई फकीरन, मात्र यह एक फकीरन शब्द ही ईसुरी की अभिव्यक्ति को उस अतल गहराई तक पहुँचा रही है, जिस गहराई में सूर का भ्रमरगीत गूँज रहा है। यह फकीरन शब्द सुधी पाठकों से यही कह रहा है कि ईसुरी मात्र तुक मिलाने के लिए निरर्थक शब्दों का प्रयोग कभी नहीं करते। उनकी समूची सर्जना में बुन्देली भाषा ने क्षेत्रीय प्रभावों और बोली से ऊपर उठकर जो साहित्यिक भाषा का अनूठा स्वरूप पाया है, वह कोई अनपढ़ फगुवारे का कार्य नहीं हो सकता।

पूर्ववर्ती सभी लेखक धन्य हैं, उनके बारे में आज क्या कहें? जिन्होंने ईसुरी के सन्दर्भ में जो कुछ भी लिखा वह भी धन्य है, जो उनकी अपनी बात है। किन्तु हम आँख मींच कर उनके कथन को अन्तिम सत्य तो कभी नहीं मान सकेंगे। कवि के व्यक्तिगत जीवन में अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ा कर उपन्यास लिखे गए हम उनका स्वागत भले ही करें, परन्तु उन उपन्यासों की काल्पनिक बातें प्रमाण किंचित नहीं हो सकेंगी। विद्वान लेखक श्री श्यामसुन्दर दुबे का कथन गम्भीरतापूर्वक सुनें ही नहीं, वे जो कुछ कह रहे हैं उसे मूर्त रूप देने हेतु सक्रियता के साथ पहल भी करें। दुबे जी ने बहुत अच्छी बात कही है कि - ''ईसुरी की कवि प्रतिभा को लोककवि के दायरे में कीलित करके ईसुरी के साथ न्याय नहीं किया गया है। ईसुरी की कवित्व शक्ति अतुलित है। वे अपनी फागों में अद्वितीय हैं। उन्हें उसी तरह से समादृत होना चाहिए जैसे मैथिली के विद्यापति, अवधी के मलिक मुहम्मद जायसी, और ब्रज के सूरदास को साहित्यिक परिदृश्य में समादृत किया गया है। (ईसुरी-१७, में प्रकाशित आलेख 'पुनर्पाठ में ईसुरी') और इसी आलेख के अन्त में श्री दुबे जी ने लिख - '...ईसुरी जैसे कवियों को लेकर हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्विमर्श जरूरी है।...'

यह विमर्श तभी सम्भव होगा जब हम ईसुरी को नगड़िया बजाने वाले साधारण फगुवारे की हैसियत से बाहर निकालकर उनकी रचनाओं में बुन्देली भाषा का स्वरूप शिल्प और भाव प्रवणता की गहरे पैठ कर विवेचना करें। उनके व्यक्तिगत जीवन में ताक-झाँक करने के बजाय उनके रचना संसार में विचरण करें। समय बदल चुका है, आज बुन्देली एक साहित्यिक भाषा के रूप में विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में समाहित हो चुकी है। इसलिए फागों के दंगल और फागों की वृहत्रयी से बाहर निकलकर नए सिरे से ईसुरी पर कार्य किया जाए। आज बुन्देली में लिखने वालों की भीड़ खड़ी हुई है। प्रायः सभी बुन्देली लेखक जहाँ रहते हैं, बस वहीं के इर्द-गिर्द दस-बीस कोस के लोगों द्वारा बोली जाने वाली बोली को ही लिपिबद्ध करके उसे असल बुन्देली मानने का भ्रम पाल रहे हैं। इसलिए आज बुन्देली का भाषा साहित्य अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग की उक्ति चरितार्थ करते हुए बहुरूपों में हमारे समक्ष है। काश, सभी बुन्देली लेखक अपने इर्द-गिर्द के अनपढ़ ग्रामीणों के बोल-चाल की बोली के बजाय ईसुरी की भाषा को अपना आदर्श मानकर उनकी भाषा का अनुकरण करने लगे तो बुन्देली के भाषा-साहित्य का बहुत कुछ भला हो जाए।

आज कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने बुन्देली गद्य के विकास और बुन्देली के मानकीकरण का बीड़ा उठाकर हो हल्ला खूब किया है। उसके तहत वे स्वयं को बुन्देली के सन्दर्भ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बनने का स्वप्न संजोते हैं। जबकि उनकी समझ में नहीं आया कि मानकीकरण होता क्या है? और वह कैसे किया जाना चाहिए? बस यत्र-तत्र मात्र कार्यशालाएँ की जा रही हैं। उन कार्यशालाओं में विद्वानों के भाषण और परचे पढ़े जाते हैं। ऐसा बीड़ा उठाने वालों की स्वंय की सर्जना देखी जाए तो बुन्देली का पद्य साहित्य हो अथवा तथा कथित गद्य साहित्य उसमें वे आज भी अति क्षेत्रीय प्रभावों के स्वत्व मोह से चिपके ही दीख पड़ते हैं। जबकि बुन्देली का मानकीकरण जो बुन्देली को एक साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित करने का कार्य प्रशस्त करता है, वह कभी भी कार्यशालाओं के सिर्फ भाषाओं और पढ़े गए परचों से सम्भव नहीं है। वह तो रचनाधर्मी क्रिया कलापों में अति क्षेत्रीय प्रभावों से ऊपर उठकर क्रियाशील होते ही सम्भव है। अब से शताब्दी पूर्व यह कार्य ईसुरी ने किया है। उन्होंने अपनी फागों में बुन्देली के क्षेत्रीय प्रभावों और बोलने-बतयाने वाली बोली से ऊपर उठाकर जो भाषायी संस्कार दिया है वही ईसुरी की सबसे बड़ी उपलब्धि है और वह ईसुरी को उस कथित बृहत्रयी से निकालकर एक अलग पहचान देती है। ईसुरी जिस क्षेत्र या अंचल में रहे वहाँ 'को' के लिए 'हाँ' शब्द का उपयोग होता है। ईसुरी जानते थे कि 'को' के अर्थ में 'हाँ' का उपयोग एक बहुत छोटे सीमित अंचल में होता है। जबकि बुन्देलखण्ड यमुना से नर्मदा तक चम्बल से टोंस तक फैला एक बहुत बड़ा भू-भाग है। सर्वत्र तो हाँ का शब्दार्थ स्वीकारोक्ति के अर्थ में प्रचलित है। तो बोलने-बतयाने में भले ही हम 'को' के अर्थ में 'हाँ' बोलते रहें, परन्तु साहित्य किसी सीमित अंचल विशेष की परिधि के बाहर भी जाने वाली वस्तु है। इसलिए उन्होंने 'हाँ' के स्थान पर बुन्देली का ऐसा मानक शब्द अपनी फागों में प्रयुक्त किया जिसे सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी संसार भी एक ही अर्थ में स्वीकार करे। वह शब्द था - खों अथवा खाँ भी - ''हमखों विसरत नईं बिसारी, हेरन हँसन तुमारी।'' अथवा- ''हमसें दूर रजऊ की बखरी, इतनी जाँगा अखरी।

हो पावै बतकाव न पूरौ, घरी भरे खाँ छकरी।...''

ईसुरी ने इस अर्थ में 'हाँ' का प्रयोग कभी कहीं भी नहीं किया तो नहीं ही किया। ईसुरी यह भी जानते हैं कि दीवार के अर्थ में बुन्देलखण्ड के किसी-किसी क्षेत्र में (सर्वत्र नहीं) 'भींट' का प्रयोग बोल-चाल में होता है। उसे समझने में कहीं भी किसी को कठिनाई नहीं होगी। परन्तु वे तो एक रस-सिद्ध कवि हैं और जानते हैं कि काव्य की भाषा में लोच एवं तरलता का होना आवश्यक है और भींट में वह लोच व तरलता नहीं है। तब ईसुरी बुन्देली को भाषायी संस्कार देते हुए भींट को 'भींत' लिखकर मार्ग प्रशस्त कर देते हैं -

''कच्ची भींत उठी माटी की, छाई फूस चारे की।''

भींट के स्थान पर भींत लिख देने से बुन्देली का असर समाप्त नहीं हुआ, बुन्देली माटी की सोंधी सुगन्ध उसमें मौजूद है। आज की दुखद स्थिति यही है कि बुन्देली के प्रायः सभी रचनाकारों ने ईसुरी को अपना आदर्श बनाने के बजाय अपने इर्द-गिर्द बीस-पच्चीस कोस के रहवासियों के बोलने-बतयाने वाली बोलियों को अपना आदर्श बना लिया है। वे यही मान बैठे हैं कि असल बुन्देली भींट ही है, क्योंकि लोग ऐसा बोलते हैं। तब वे अपनी कविता में धड़ल्ले से लिख रहे हैं कि - ''आँगन में फतकुल तुरई फरी, भींटन बौलारे बड़न लगे।''

इस प्रकार की प्रकृति में आमूल-चूल डूबे रहकर वे यदि बुन्देली भाषा के मानकीकरण का बीड़ा उठाएँ तो वह उस कहानी को ही चरितार्थ करेगा कि तोतों को रटा दिया गया था कि - ''बहेलिया आएगा, दाने डालेगा, जाल बिछाएगा, दाना चुगने के लालच में तुम उसके जाल में फँसना नहीं।'' ऐसा कहते हुए तोते बहेलिये के जाल में जा फँसे थे। ऐसा करने से बुन्देली का मानकीकरण कभी नहीं हो सकेगा। बुन्देली भी ऐसी प्रवृत्ति के पथ पर अपनी सहोदर ब्रजभाषा के समान साहित्यिक भाषा का सम्मान कभी भी प्राप्त नहीं कर सकेगी। भले ही आप तथा कथित बुन्देली में लिखी कविताओं अथवा गद्य के संकलन छपा कर अपने हाथों अपनी पीठ ही ठोकते रहें।

इसलिए मेरा विनम्र निवेदन है कि ईसुरी को एक साधारण फगुवारे के संकीर्ण घेरे से बाहर निकालकर बुन्देली भाषा साहित्य के 'प्रकाश-स्तंभ' के रूप में स्थापित करें और फिर उस प्रकाश स्तम्भ के ही आलोक में बुन्देली भाषा साहित्य का मार्ग प्रशस्त करें। इसके बगैर तो ईसुरी-ईसुरी-ईसुरी... नाम का संकीर्तन करते हुए हम बुन्देली और उसके भाषा-साहित्य के साथ ईसुरी के प्रति अपनी दीवानगी का भारी बोझ सिर पर उठाये हुए रह जाएंगे। जिससे न तो ईसुरी के साथ ही न्याय हो सकेगा और न ही बुन्देली और उसके भाषासाहित्य का कुछ भला हम कर पाएँगे। अतः ईसुरी की भाषा को अपना आदर्श बनाने का समय आ गया है। यदि हम आज समय की पुकार को सुनकर दो कदम भी आगे बढ़ा सकें तो वह ईसुरी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

- कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ (म.प्र.)

कवि मायूस सागरी की बुन्देली कृति 'बृजरज' पर भावाभिव्यक्ति -

बरवै छन्द

- कुँ. शिवभूषण सिंह गौतम

कवि मायूस सागरी, कवित प्रवीन।
बुन्देली में बृजरज, रचना कीन।।
ललित छंद बहु भाखे, अति लवलीन।
तेरह भाग विभाजित, पुस्तक कीन।।
लिखे तीन सौ छै पद, अति अनुराग।
सौ के ऊपर छत्तिस, सुन्दर फाग।।
छंद मनहरण अस्सी, कलित कवित्त।
बावन सहज सवैया, सुखद सुचित्त।।
दोहा और सोरठा, सहित मिलाय।
दो सौ अधिक बानवे, लिखे बनाय।।
गीत मनोहर इकइस, गजल पचीस।
भगति भाव भरि राखे, कवि उर-शीश।।
ऊधव माधव चरचा, ज्ञान विराग।
बृज बनितन के जीवन, धन अनुराग।।
भक्ति मयी यह रचना, भाव प्रधान।
राधा माधव के हित, ज्यों रसखान।।
भक्ति काल के कवियन, की गति लीन।
कवि मायूस सागरी, भे रस लीन।।
बुन्देली में बृज की, भरी मिठास।
ज्यों-ज्यों पीवै त्यौं-त्यौं, बढ़वै पियास।।
बृजरज सात्विक रचना, रस परिपाक।
प्रेम प्रीति परिपूरित, हर अनुवाक।।
हमरे हिरदय सांचहु, अस परतीत।
बृजरज के कण कण में, प्रभु पद प्रीत।।
कवि 'भूषण' अवगाहन, करि अति धन्य।
साधुवाद स्वीकारें, हे! कवि-मन्य।।

- अन्तर्वेद, कमला कॉलोनी,
छतरपुर (म.प्र.)

निवेदन - बुन्देली विकास संस्थान प्रतिवर्ष बुन्देली लोक साहित्य, संस्कृति, आलोचना, इतिहास तथा लोककलाओं के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले कलासाधकों को सम्मानित करता है। कृपया अपनें अँचल के इन साधकों की सूचना संस्थान को प्रेषित कर सहयोग करने का कष्ट करें।

- सचिव, बुन्देली विकास संस्थान, बसारी

बुन्देली गीत और नारियाँ

- डॉ. आर.बी. पटेल 'अनजान'

बुन्देलखण्ड जनपद सदा से ही अपने आप में अनोखा रहा है। यहाँ हमेशा से ही नारियों का जौहर, पहनावा, भोजन बनाने का तरीका, श्रृंगार, गायन, लेखन, नृत्य, आदर-सत्कार, सेवाभाव, समर्पण भाव, त्याग भावना, दानप्रियता, संग्रहप्रियता, वैवाहिक संस्कार इत्यादि अन्य प्रान्तों से इकदम भिन्न व मनमोहक रही है, तभी तो बुन्देली संस्कृति अपने आप में सम्पूर्ण समृद्ध व प्रेरणादायी सिद्ध हुई है।

यहाँ की नारियाँ, छल, कपट, द्वेष, स्वार्थपरता, अकर्मण्यता, पराधीनता, जैसी विकृतियों से आसक्त नहीं रहीं। इनमें तो प्रेम की प्रगाढ़ता, निश्छलता, परमार्थ, कर्मठता, धार्मिकता तथा पति परमेश्वराय जैसे भाव हैं। इनमें चेतना लाने का श्रेय बुन्देली नारी संस्कृति को हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी सदियों से हस्तांतरित होती चली आरही है। बुन्देली संस्कृति का अधिकांश स्वरूप यहाँ के नर-नारियों के गले का हार बनी हुई है साथ ही यहाँ का अधिकतर साहित्य स्त्री-पुरुषों को मौखिक याद है जिसको संजोने की परम आवश्यकता है और यदि समग्र संग्रह हो गया तो वह दिन दूर नहीं होगा जब पुनः विश्वगुरु संस्कृति वाले बन जायेंगे।

बुन्देली संस्कृति में नारी चेतना के असंख्य लोकगीत प्रचलित हैं। बुन्देली नारियों में धार्मिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई है, जिसमें क्षेत्रीय देवी-देवताओं को अधिक महत्व दिया जाता है क्योंकि यहाँ प्रत्येक घर में तुलसी चौरा, शंकर, गणेश, कुलदेवता, कुलदेवी आदि की पूजा नित्य सुबह-शाम होती रहती है, जिसका अनुकरण यहाँ पलने वाले नन्हें-मुन्ने बालक बालिकाओं में इसका प्रभाव बखूबी देखा जा सकता है, तभी तो एक बुन्देली बेटी और गणेश की पूजा करती है और उपस्थित नारियाँ ये गीत गाती हैं -

बेटी पूजै लागी गौर गनेश, मनावै लागी सरसुतिया-२
बेटा काहा पूजे गौर गनेश, सो काहा पूजे सरसुतिया-२
बेटी काहा दै है गौर गनेश, सो काहा दैहै सरसुतिया-२
बेटी घर दे है गौर गनेश, सो बर दइहै सरसुतिया-२

घर, परिवार, समाज व रिश्तेदारों का विशेष अवसरों में अपना महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन सभी कड़ियों को जोड़ने का कार्य नारी करती है। इन्हीं से नारी पुरुषों का वंश चलता है। इनके अभाव में अगली पीढ़ी की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। मण्डप के अवसर पर जब वंश के लोग इकट्ठा नहीं होते तो वह गीत के माध्यम से कह उठती है कि ये वंश, नाऊ, कुम्हार, बढ़ई, पंडित आदि को क्यों बसाया है, जो आज अवसर पर दिखाई नहीं दे रहे हैं -

या बंश में काहे का लगायों, जो मड़वे नहि आवे रे।
या कुम्हरा में काहे का बसायों, जो कलश नहि ल्यावै रे।
या नऊवा में काहे का बसायों, जो गौर नहि ल्यावै रे।
या बढ़ई में काहे का बसायों, जो खम्भ नहि ल्यावै रे।
या बमना में काहे का बसायों, जो चौक नहिं पूरे रे।।

उक्त गीत में समाज में रहने वाले सभी वर्गों के लोगों की आवश्यकता महसूस की गई है जो यह साबित करता है कि समाज के सफल संचालन हेतु यह परम आवश्यक है।

बुन्देली नारियाँ प्रथम पहर के चकिया चालन से लेकर रात्रि भोज व सयन समय पति की सेवा तक परिश्रम करती हैं, और यदि ऐसे अवसरों पर छोटे-बालक बालिकाएँ परेशान करते हैं तो उन्हें बुन्देली नारी लोकगीत के माध्यम से कैसे चुप कराकर सुला देती है -

झूलें नंदलाल झुलाव सखी पलना।
काय को तोरो बनो पालना, काय की लागी डोर, कायें के लागे फूँदना।
अगर चन्दन को बनो पालना, रेशम लागी डोर, रूपे के लागे फूँदना।

इतने पर भी यदि बालक चुप नहीं होता है तो उसे बुन्देली माताएँ राई नोंन या मिर्च उतारने की बात कह उठती हैं -

राई नोंन उतारौ जसोदा, खुसी भये ललना, झुला दो माई श्याम परे पलना।
जो मोरे ललना खों पलना झुला दे, देंव उये जड़ाउ कंगना।

एक बुन्देली युवक अपनी पत्नी को घर में छोड़कर परदेश कमाने के लिए गया है तो उसकी पत्नी अपनी विरह पीड़ा को अपनी सास से व्यक्त करती हुई कहती है -

हम पै बैरन बरसा आई, हमें बचालो माई।
चढ़के अटा घटा न देखै, पटा देव अंगनाई।
वारादरी दौरियन में हो, पवन न जावै पाई।
जे द्रुम कटा छटा फुल बगिया, हटा देव हरियाई।
पिय जस गाय सुनाऔ ईसुर, जौ जिय चाव भलाई।।

वर्तमान के बदलते परिवेश में एकल परिवार, ग्रामीण समस्याएं, शहरी सुख-सुविधाएं आदि मानस पटल को झकझोर रही हैं, किन्तु ग्रामीण अँचल में आज भी पर्दा प्रथा का प्रचलन है जहाँ नई नवेली वधुओं को घर की चहार दीवारी से बाहर पैर रखने की अनुमति नहीं होती जो कलंक साबित हो रही है तभी तो एक बुन्देली नारी गाँव में न रहने की बात कहती है -

तुम चलो छतरपुर सैंया हो, मोय गाँव में राने नइयाँ।
एक दिना मैं हाट करन गई, व दिन हतीं तिलइयाँ। तुम...
भीड़ भड़क्का देखो ऐसो, धक्कम धक्का हो रओ ऐसो,
बड़ो मजा मन मों आओ है ऐसो,
का बतायें काऊ ने मोरी, मसक दई दोऊ कलइयाँ।। तुम...
खुल्लम खुल्ला बिक रओ गल्ला, कर रये सब्जी बारे हल्ला,
बिक रई चुटियाँ मुदरी छल्ला,
देख-देख के मन ललचानों, रंग बिरंगी चुनरियाँ।। तुम...
ब्लाउज हरो देख ललचानी, गुर देखत मो लार चुचानी,
मन ना मानो तुमरे लाने, ले लई कछु लडुहिरयाँ।। तुम....
अच्छे लोग शहर को बानो, भेद जनानो न मर्दानो, सादो भेष न तन पै गानो,
चलके उते रहन लगियो तुम, पैरन लगो पनइयाँ।। तुम...

वास्तव में आज नारियों में नई-नई सोच, नवीन कार्यों के प्रति रुझान, नवीन प्रतिमानों को हासिल करने की महारत प्राप्त करने में नारियाँ पीछे नहीं है।

- बजरंग नगर कॉलोनी, छतरपुर

भीमकुन्ड की कुन्डली

- देवदत्त द्विवेदी

विन्ध्याचल के लौरे भंइयन घाँइ किलेबन्दी सी करै ठाड़े बड़े बड़े ऊँचे पहार, चौगरदाँ हरयारी की चुनरिया सी ओड़ै डाँग और भाटे, बन्न-बन्न की चिरइंयन की चुकचुकाट और डँगया जनावरन के बीच बंदरन की कूँदा-काँदी सैं मची चैल पैल, भीमकुन्ड पै पौचकें येसौ लगत जैसें - सिन्सारी सें नियारी पिरकिति की दूसरी दुनियाँ बसी होय।

असल में पूरे बुन्देलखण्ड में पिरकिति की बड़ी अनोखी बिचित्र रचनायें डाँग पहारन में लुकी छिपी हैं। जे मन मोहनी सी पिराकितिक रचनायें कीने रची, कैसे रची, कबै रची काउ हौ पतौ नइयाँ। इनै तौ जब जीने देख लव सौ चरचा करी और मान्सन हों इनकौ पतो पर गव। पहारन के गुरु बाबा बिन्ध्याचल तौ, सतजुग सें आज लौ केउ तीरथन और सिद्धक्षेत्रन खों। जनम देबै बारे हैं। इनको सम्बन्द श्रीरामजू और पांडवन के बनवास सें जाँदा रव है, ओइ बखत सें बुन्देलखण्ड क्षेत्र है। पूरे भारत में पिरसिद्धि मिली है। ई क्षेत्र ने आफत बिपत में सबकौ सँग दव है। पाँडवन ने जौन जौन जाँगा पै अपने बनबास के दिन काटे, उनमें बुन्देलखण्ड को पाँडवबन, काम्यकबन, पांडवझील (पांडाझिर), पांडव पिरपात, पातालगंगा, अरजुन कुन्ड, भीमकिला, भीमकुन्ड जैसे ओर केउ गुपत स्थान हैं। इनमें भीमकुन्ड खौ भारी पिरसिद्धि मिली है।

धनुस की नाँइ कटे बने पहार के बीचउ बीच भरो कुन्ड, नैचें अथाँव पानी, ऊपरै दुलउट चदेंबा सौ तनो पहार, औइ के बीच में उजयारे औ हबा बैर के लाँने पहार में बने झरोका, येसौ लगत जैसें काउ ने सैकरन बरस लौ सरतारे में बैठकैं हतौरा छैनी सें काट छाँट कें बनाव होबै। भीमकुन्ड खों पैलउँ पैल देखबे बारे मान्स तौ अबढाइ कैइ उठत, है भगवान इयै कीनै बनाव हुइये? जौ तौ सांसउँ महाबली भीमसेन कौ करतब हो सकत। ई बिसाल कुन्ड की थाँय मिलबो तौ दूर की बात है, आज लौ ई की गैराई को पता न परो कहाव।

नीलम सौ जड़ो नीलबरन कौ साफ सुवच्छ पानी दूर सें देखो तौ नील सौ घुरो दिखात, ऐसौ लगत के मत्स्य पुरान में जौन नीलकुन्ड कौ बरनन है, ऊ जौइ नीलकुन्ड (भीमकुन्ड) आय। काय कै जुगन जुगन सें कुन्डन के नाँव बदलत आय हैं। पै नीलकुन्ड की चरचा सतजुग, तिरेता, दुआपर सबइ जुगन में मिलत है।

सतजुग - नीलकुन्ड के बारे में एक पुरानी कथा मिलत है, कै गन्धर्व बिध्या के जनबा नारद जू ने एक बेर बिन्ध्याचल की तलैटी के पहार की खुवा में बिराज कैं सामगान सें श्रीमननारायण को अखंड कीरतन करो तौ, उनके गुरीरे गानतान में श्री बिस्नू भगवान हौ येसौ आँनद आव कै उनकी दोइ आँखन सें पिरेम के इत्ते-अँसुवा बहानै कै एक कुन्ड भर गव, ओइ कुन्ड कौ नाँव नीलकुन्ड परौ।

तिरेता - जब सिया जू के सुयमबर में श्री रामचन्द्र जू ने रिसी दधीच की हड्डियन कौ बनो अजगव धनुस टोर कै राजा-जनक की प्रतिज्ञाँ पूरी कर दइ, सो महाराज दसरथ जू की बरात लैकें जनकपुरी अबाइ भइ, और गाजे बाजे सें श्रीराम जानकी जू को ब्याव हौ गव। जब बरात बिदा हो कै अयोध्या हों लौटन लगी, तबइं श्रीराम जू की नजर टूटे धनुस पै परी। बे सोसन लगे कै टूटे धनुस में रिसी के फूल (हड्डिया) तो अबे इतइ डरी, इने किते सिराव जावै? ऐसौ उत्तम एकान्त तीरथ स्थान काँ है। तबइँ उने नीलकुन्ड की खबर आई, सो उननें तुरतंइ कछु बरतयन हौ बुलाकें अग्याँ दइ कै ई टूटे धनुसहो लै जाकें फलानी फलानी जाँगा के नीलकुन्ड में सिरा आव। बे बराती टूटो धनुस लै कै भगवान राम की बताइ समजाइ गैल धर कें कुन्ड पै पौचें और नीलकुन्ड में धनुष खों सिरा कै माटी पथरन सें अच्छी तराँ पूरकर कै चले आए।

दुआपर - महाभारत के अनसार पांडवन खों बारा बरस कौ बनवास और एक बरस को अग्यात वास भव तौ। येइ सें पाँचइ पाण्डवा बनवास कौ बखत काटत काटत, अग्यात बास करबे खो बुन्देलखण्ड में आ गए ते। इते खूब घनी डाँगे ओ पहारन की बड़ी-बड़ी चुलें देख कें येइ डाँग में अग्यात-बास काटबे खो रुप गए ते। अपनी मताइ कुन्ती के बरदान से पाँचइ पण्डवा ओसरी सें द्रोपती के सँगे रैबू करत ते। ओइ नैम टैम के हिसाब सें ऊ बखत द्रोपती भीम के सँगै रै रइ ती। अपनो राजपाट पाबे औ बुरय दिन काटबे के लाने बे बनवास में सोउ भगवान कौ भजन पूजन और तपस्या करत रात ते। चलत चलत भीमसैन और द्रौपती ने निरजला गियारस को पुआस करो, दिन-रात को निरजला पुआस पूरो होबे के बाद द्रोपती हों येन कर्री पियास लगी, पियासी द्रोपती खो तलफत देखकें भीमसैन खों बड़ी गलानी भइ कै हमाय कारन द्रोपती की जा दसा हो रइ है। और हम हांत पै हांत धरै देखत ठाड़े। भीम ने मुरलिया बारे को धियाँन धरकें उतइ पहार पै अपनी गदा पूरी ताकत सें दे मारी। भगवान की किरपा सें तिरेता युग सें ढके नीलकुन्ड क पथरा भर भरा कें फूट परे औ खूब गैरें अच्छो साफ नीलो सो पानी दिखान लगो। फिर का हतौ भीम ने झट्ट-पट्ट अपनो धनुस उठाकें बानन सें पानी लौ की गैल बना दई। अच्छो जूड़ौ पानी पी कै द्रोपती की पियास मिटी और भियावान भाटे में पानी को सादन हो गव। भीम की ताकत औ बीरता सें खुदे ओइ नीलकुन्ड खों आंगू चलके भीमकुण्ड के नाँव सें जानन लगे।

कलजुग - ई जुग में हजारन साल पैलाँ मान्सन खौ ई कुन्ड कौ पतौ पर गव तौ, पै भूत पिरेतन औ डँगया-जनावरन के डर सें कोउ ई भियावान कुन्ड लौ जात नइं हते। सैकरन साल पैला जब भीमकुन्ड पै कछू बाबा बैरागी राँन लगे सो असपेर के मान्सन को

डर छूटो औ हराँ-हराँ ऐंगर पासके गाँवन के मान्स कुन्ड देखवे खौ जान लगे। कछू दिनन में पूरी बिजावर रियासत में भीमकुन्ड कौ हल्ला पर गव, सो हजारन मान्स असनान धियान करबे जान आँउन लगे।

आँगू चलकैं बिजावर राज के राजन ने कुन्ड में उतरे खों छिड़ियाँ लगवाइ और हल्की पतरी कटाई छटाई करवा कैं साफ सफाई करवा दई ती। ओइ बखत नरसिंह भगवान के भगत एक बाबा जू नें कुण्ड के बगल में एक टीले पै नरसिंह भगवान् कौ मन्दर बनवाकें प्रान प्रतिष्ठा कराइ। ईके बाद राजा भानप्रताप ने बिहारी जू कौ मन्दिर बनवाव फिर शंकर जू कौ मन्दिर बनौ। सिकार के सौंकिया महाराजा बिजावर राजा सावन्त सिंह ने तौ सन् १९२५ के आसपास भीमकुन्ड पै एक आलीसान कोठी बनवा लइ ती। जेठमास भर उनकी रहस येइ कोठी में रव करत ती, इतइ हो बे राजकाज चलाव करत ते। ऊ बखत कुन्ड पै जितने बाबा बैरागी डेरा डारै ते सब ढबुअन में रव करत ते, एक दो जने कठवा की मड़इँयन पै परत बैठत हते। एक तपसी बाबा खो तौ येसी सिद्धि हो गइ ती कै बे हर साले जग्य कराकें असपेर भरे कौ भन्डारो करत ते। फिर उनने भीमकुन्ड पै पैलउ पैल भौत बड़ी धनुस जग्ग कराइ जी की बड़वाइ अबे लौ होत जात, तबइ सें कुन्ड पै बुड़की को १५ दिन कौ मेला भरबो चालू हो गव तौ।

समय भौत बलवान है पैला तीज तैभार भरे पै मान्स असनान करबे ही जात ते फिर बुड़की के मेला में पांच जिलन के हजारन मान्स जुरन लगे। झकमार कै बाजना पंचायत खों कच्ची सड़क बनवाने परी और असपेर के बड़े आदमन ने चन्दा करकै हल्की सी धरमसाला बनवा दइ। परमेसुरकी दया सें सन् १९५६ में बिन्द्रावन सें भिरमन करत श्री इन्द्रामन जू महाराज भीमकुन्ड कौ नाँव सुनकें इते पधारे। उनें जो क्षेत्र ऐसी अच्छी लगी कै बे एक चुल की सफाइ करकै ओइ में रान लगे। उनने भीमकुन्ड क्षेत्र के विकास कौ भौत काम करो। सन् १९६१ में स्वामी जू ने श्री नारायण सन्तकित विद्यालय की इसस्थापना करी, तब सें भीमकुन्ड पूरे प्रदेश में प्रसिद्ध भव।

आजलक्ष्मी नारायण मन्दिर, राममन्दिर, कृष्णमन्दिर, शंकर जू कौ मन्दिर, हनुमान मन्दिर, नरसिंह मन्दिर, और नारायण बगीचा, यज्ञशाला, गौशाला, छात्रावास आदि स्थानन सें भीमकुन्ड भौतइ दरसनीय स्थान बन गव है। ईकुन्ड कौ पिरताप येसौ है कै लाखन मान्स असनान करत जाय पै कुन्ड कौ पानी कभउ मैलौ नइ होत, औ कैसउ कम पानी बरसे कुन्ड कौ पानी कम नइ होत है। जब सुनामी लहरें उठी ती सौ कुन्ड कौ पानी अबढाव खड़बड़ा गव तौ ई कुन्ड के पानी से धोयभरें सेकेउ चरम रोग मिटत हैं, बसकारे केखुरन की तौ जौ पानी मूर दवाइ कहाव। जो पानी पीबे में बाँको सुवाद बारो पाचक है, उनारी की फसलन पै छिड़के से भियाँउ को रोग सोउ नइ लगत। भीमकुन्ड के आसपास कौ इलाकौ दौन कहाउत इते के सैकरन गाँवन में पानी की भौतइ आजादी है।

सागर-छतरपुर राजमारग के गाँव दरगुवाँ से सिरफ तीन कोस पै भीमकुन्ड कहाव, तोउ अबे लौ सरकार ई कुन्ड के विकास पै नइं ढुरी। कैउ बेर बड़ी-बड़ी घोसनायें हो गइ पै ऐसे अनोखे बाँके पिराकितिक सिद्ध क्षेत्र पै सरकारी किरपा आज लौ नइ भइ कहाइ। जब कै पूरे प्रदेश का देश भरे में ऐसौ बाँको कुन्ड कउं दूसरौ न कहाव। 'अबस देखिये देखन जोगू - देख करँइ अचरज सब लोगू।'

- उत्कृष्ट विद्यालय के सामने, बड़ामलहरा,
जिला छतरपुर (म.प्र.)

चौकड़ियाँ

- डॉ. अवध किशोर जड़िया

देहिया की दुति दिपत दिया सी, भरी नई नदिया सी।
प्रीतम कौ रस चाहत कोरी, माटी की मलिया सी।
छलिया सी छल लेत हियो फिर, पलट जात पलिया सी।
कहत 'किशोर' पियासी प्रिय की, मेंहदीली गदिया सी।

सबरी चतुरई कारीगर की, भई इनइँ के घर की।
अँग अँग में अंगूरी भर दई, जा न कोंनउँ बरकी।
गोरी देह गाँठ हरदी की, कै डिरिया ईंगुर की।
'कवि किशोर' अँग अँग में किलकत सुगरइ सधी सुगर की।

रूपसि ऐंड़ाई जा भरईं, कलित कला सी करईं।
दोउ भुज मूल उठा कें ऊपर, अँगुरिन अँगुरिं मरुरईं।
खुल गये बंद, बंद सो खुल गये, छवि खुल खेल उघरईं।
कवि किशोर ताकत वारन कीं तकि तकदीर सुधरईं।।

सपरत में कँप रई सलौनी, ज्यों कपास की पौनी।
कंपत में संपत ना सँवरी, भइ पूरे की पौनी।
अँग अँग कपत दिपत हदूनी दुति, लफत लरम करदौनी।
कहत 'किशोर' अलौनी नौनी विन गौने गजगौनी।।

अपने नैंना तनक सँवारौ, करत उचम अतकारौ।
विदत छियत घायल कर डारत अपयश भरो पसारौ।
संयम सिंधु डगत लखि इनकौ निष्ठुर नजर नजारौ।
खुद कारे फिर भूषण काजर, मन न होय क्यों कारौ।।

ऐसी नये नैंनन की हेरन, करतब करत अहेरन।
जैसइ कत रत बैसइ कतरत घायल करे करेजन।
वेर न लगत निवेरत में सोउ ऐसो हाँकत वे रन।
कवि किशोर से लखि लखि कें सब चाहत है सेजन।।

- हरिहर मार्ग, हरपालपुर, जिला छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देलखण्ड का अज्ञात सूफी कवि : हाजी वली शाह

-डॉ. लखन लाल खरे

बुन्देलखण्ड के तमाम अंचल अब भी ऐसे हैं जहाँ अनेक स्वनामधन्य कवियों की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। इतना ही नहीं, अनेक पोथियाँ ऐसी हैं जो बस्तों में बन्द दीमकों का आहार बन रहीं हैं। वर्तमान उच्च प्रौद्योगिकी के समय में, जब साहित्य से आज के युवा की दूरी बढ़ती जा रही है, प्राचीन ग्रंथों के संरक्षण का विषय चिन्तनीय है। ऐसा ही कुछ मध्यकाल के सूफी कवि हाजी वली शाह के साथ है।

मध्यप्रदेश के शिवपुरी जिले की कोलारस तहसील में 'रन्नौद' नामक कष्बा स्थित है। यह अत्यन्त प्राचीन स्थल है और किसी समय बहुत बड़ा नगर रहा है। इसका प्राचीन नाम अरणिपद्र है जो परिवर्तित होत-होते रन्नौद हो गया। मध्ययुग में रन्नौद शैवधर्म का एक शक्ति केन्द्र था। शैवों का बनवाया हुआ एक मठ अब भी अच्छी हालत में यहाँ विद्यमान है जो 'खोखई मठ' के नाम से जाना जाता है। मोहम्मद गौरी,, अलाउद्दीन खिलजी,, बाबर व औरंगजेब आदि जब आगरा और दिल्ली से मालवा, गुजरात तथा दक्षिणी प्रदेशों में आते-जाते थे, तब उनका इस नगर में पड़ाव होता था। रन्नौद में पहले अनेक मसजिदें रही होंगी परन्तु आज उनके भग्नावशेष ही हैं। इसी नगर में एक सूफी संत शेख हसन साहब का निवास था।

जनश्रुति है कि शेख हसन साहब जन्म से ही चमत्कारी थे। इनकी कीर्ति चंदेरी के प्रसिद्ध संत हाजी वली शाह तक पहुँची और ये हसन साहब से मिलने रन्नौद आ गये। घर पर पता चला कि हसन साहब खेलने गये हैं तो हाजी वली शाह ने कहा कि शेख हसन जब घर लौटें तो उनसे कहना कि उन्होंने खेलने के लिए जन्म नहीं लिया है। हसन साहब जब खेलकर लौटे तो माँ से सारा वृतान्त जाना। वृतान्त जानते ही उन्होंने अपने घर के आँगन की दीवार पर बैठकर उसे चलने के लिए कहा। वह चल पड़ी और शेख हसन साहब को लेकर चंदेरी के पास 'ओर' नदी के किनारे तक गयी। हाजी वली शाह जब नदी के तट पर पहुँचे तो उन्होंने दीवार पर एक बालक को बैठे देखा। कौतूहल के कारण वली साहब ने उस बालक से बातें की और इतने प्रभावित हुए कि उसे अपना गुरू बनाने की मंशा जाहिर कर दी। कम उम्र होने के कारण हसन ने वली साहब का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, किन्तु वली साहब को यशस्वी होने का वरदान अवश्य दिया। वली साहब रन्नौद आ गये और यहीं बस गये।

आज भी रन्नौद में शेख हसन साहब की दालान, कोठरी, कुआँ और वह स्थल, जहाँ वे बैठकर नमाज पढ़ते थे; बना हुआ है। यहीं पर शेख हसन साहब की दरगाह है और इस दरगाह के पास हाजी वली शाह की दरगाह है। दोनों दरगाहों पर हजारों की संख्या में हिन्दू-मुसलमान आज भी जाते हैं।

हाजी वली शाह का जीवन परिचय अज्ञात है। तमाम प्रयास करने पर भी मुझे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इनका लिखा हुआ एक ही ग्रंथ है- 'प्रेमनामा', परन्तु इस ग्रंथ में भी परिचय नहीं दिया गया है। ग्रंथ की प्रतिलिपि किन्हीं जनाब न्यामत खाँ ने सम्वत् १६३१ (सन् १८७४) में की थी। इस प्रतिलिपि की प्रति अधिक पुरानी नहीं है। रन्नौद निवासी सेवानिवृत्त शिक्षक ज़नाब तब्बार अहमद, जिनके सहयोग से मुझे उक्त प्रति प्राप्त हुई, हाजी वली शाह और उनके 'प्रेमनामा' का अनुमानित समय चार-साढ़े चार सौ वर्ष बतलाते हैं।

स्व. श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने अपने ग्रंथ 'बुन्देल वैभव' में जिन 'हाजी' का कवि के रूप में उल्लेख किया है, वे यही हाजी वली शाह हैं, क्योंकि द्विवेदी जी ने हाजी कवि की कविता के जो कतिपय उदाहरण दिये हैं वे हाजी वली शाहकृत 'प्रेमनामा' में हैं। द्विवेदीजी लिखते हैं- ''हाजी कवि बुन्देखण्डी का जन्म और कविताकाल अनुमानतः क्रमशः विक्रम संवत् १७२० (सन् १६६३) और संवत् १७६० (सन् १७०३) माना जाता है। आप कहां के निवासी थे, कौन थे, इत्यादि बातें अधिक अनुसंधान करने पर भी नहीं मिल सकीं, किन्तु आपकी रचनाओं को देखने से तथा आपकी रचनाओं का बुन्देलखण्ड में अधिक प्रचार होने के कारण यह निश्चय है कि आप बुन्देलखण्ड ही के निवासी थे। आपकी स्फुट रचनाएँ भी यत्र-तत्र मैंने सुनी हैं। आपने (१) नायिका भेद पर अच्छा ग्रंथ लिखा है, कविता साधारण है।''

मैंने इनके अन्य ग्रंथों की खोज की ; परन्तु मुझे 'प्रेमनामा' के अतिरिक्त और कोई दूसरा ग्रंथ नहीं मिला। द्विवेदी जी ने हाजी कवि के जो उदाहरण दिये हैं, वे सब 'प्रेमनामा' के हैं। नायिका भेद पर इन्होंने कौन सा ग्रंथ लिखा है, द्विवेदीजी ने न तो उसका शीर्षक दिया है और न ही उक्त ग्रंथ में से कोई उदाहरण दिया है। एक और विसंगति द्विवेदीजी के शोध में परिलक्षित होती है। एक ओर तो जीवन परिचय के नाम पर वे लिखते हैं- अधिक अनुसंधान करने पर भी नहीं मिली ; दूसरी ओर जन्म और रचना काल के अनुमानित समय का उल्लेख करते हैं। इस अनुमान का आधार क्या है, यह उन्होंने स्पष्ट नहीं किया।

काव्य वैभव एवं प्रदेय – 'प्रेमनामा' में प्रयुक्त ठेठ बुन्देली के शब्द वली शाह को बुन्देलखण्ड का कवि सिद्ध करते हैं- यह निर्विवाद है। 'प्रेमनामा' का प्रारम्भ जिस रीति से हुआ है, उससे पता चलता है कि इस ग्रंथ में सूफी सिद्धातों का प्रतिपादन किया गया है-

आद अलख अलख नसिका वो है यौं कैसा ।
रूप न रेख न सर न सबद न बरन न भैसा ।।

आया माया लोव धन तो कछू न लागे।
हँसे न रोवै न मारे न सोवै न जागे।।
हाज़ी खूबी हुश्न की कर परदा दूजा।
आपही देखा आप में तब आपई सूजा।।

अल्लाह की स्तुति के पश्चात् हाजी, हजरत मोहम्मद साहब और उनके चार यार (चारों खलीफ़ा) की प्रशंसा करते हैं। उस समय की परिपाटी के अनुसार हाजी अपने पीर हसन मोहम्मद का शुक्रिया अदा करते हैं:-

हसन मोहम्मद बूंसईद सा पीर हमारा।
धनपत गुनपत प्रेमपत दोऊ जग उजयारा।।

एक स्थल पर हाजी ने जो संकेत दिया है, उससे यह तो निश्चित है कि ये चन्देरी के निवासी थे, जो बुन्देलखण्डान्तर्गत है। भले ही उन दिनों राजनीतिक दृष्टि से वह मालवा सूबे के अन्तर्गत हो-

हाजी सूबा मालवा सरकार चन्देरी।
दिना चार रन्नौद में भई बैठक मेरी।।

ग्रंथ पंथों में विभक्त है। ये पंथ हैं- पंथ जोगन का, पंथ सन्यासी का, पंथ पांचों दरसन का, पंथ विरहामन (ब्राह्मण) का, पंथ सूफी का, पंथ वैरागी का, पंथ बनिया का, पंथ किसान का, पंथ माली का, पंथ बरई का, पंथ कल्हार का, पंथ कलावत का, पंथ भट का, पंथ लोहार का, पंथ बढ़ई का, पंथ नाऊ का, पंथ कुम्हार का, पंथ धोबी का, पंथ चमार का, पंथ तुर्क का, पंथ सौदागर का और पंथ मोमिन का। इन पंथों के पथिकों के माध्यम से कवि ने प्रेम के महत्व को प्रतिपादित किया है। 'पंथ नाऊ का' में नाई के कार्मिक उपकरणों को प्रतीक बनाकर कवि कहता है-

प्रेम छुरा बनाय कें पथरी पर फेरा।
हाजी कोरा मूंड़कर करन निहोरा।।
जोग कतरनी जुगत की सिर सूधे हाथ चलाय।
कागहीं गियान विचार के और के सुर साय।।

हाजी ने प्रेम-निरूपण बड़ी विलक्षण रीति से किया है। लौकिक प्रेम-व्यंजनों में दो विपरीत लिंगी होने की अनिवार्यता है। हाजी ने पंथ में दर्शित जातियों के लिए प्रिय-प्रिया, नाई-नाइन, ध ोबी-धोबिन आदि को प्रेम-पंथ पर चलने के लिए सजग किया है। यही लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित होगा। शर्त यह है कि भावना पावन हो :

गंगाजी, सोंरों, हरिद्वार, जगन्नाथ दोऊ हैली।
सपरत खोरत नित फिरीं पर मैली की मैली।।

और जब कवि प्रेम-केवल प्रेम का संदेश दे रहा है तो इसमें हिन्दू-मुसलमान जैसे विभेद रहते ही नहीं। ग्रंथ का समापन करता हुआ कवि बड़ी मार्मिक उक्ति कथन करता है :

दाहिने हाथ कुरान धर बाँएं हाथ पुरान।
बीच-बीच बनाय के हाजी बना निदान।।

स्पष्ट है कि कवि का व्यापक दृष्टिकोण है और वह मानवता की स्थापना के लिए सचेष्ट दिखाई देता है।

हाजी वली शाह के अन्य ग्रंथ यद्यपि उपलब्ध नहीं है, परन्तु प्रेमनामा में सूफी दर्शन को सामाजिक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है और सम्भवतः यह अपने आप में अनोखा तथा मौलिक कवि कर्म है। कवि ने ग्रंथ में न तो किसी की बुराई की है और न ही किसी को श्रेष्ठ बताया है। तत्समय में प्रचलित जातियों के कर्मों को आधार बनाकर प्रेम और भाईचारे का संदेश देना कवि की नूतन दृष्टि का परिचायक है।

हाजी वली शाह के कृतित्व पर साहित्य के अध्येताओं का ध्यान आकृष्ट होना ही चाहिए।

-विभागाध्यक्ष हिन्दी, शास. एस.एम.एस. महाविद्यालय,
कोलारस जिला शिवपुरी (म.प्र.)

फागें

- गंगाधर व्यास

होरी खेलत जोरा जोरी, जोरी ब्रज में होरी।
होरी की मौसम तक आई, श्री बृषभान किशोरी।
सो री सोर करैं सब सखियाँ, लेव प्रीतम कर छोरी।
छोरी पिचक श्याम ने तन पर, और गुलालन झोरी।
झोरी झटक कहत गंगाधर, हँसकें बाँह मरोरी।

होरी हमें खेलबे जानें, रँग बरसत बरसानें।
सानें सनें हमारे मोहन, रंग डारें मनमानें।
मानें कौन तराँ सें जियरा, जौ तक नहीं दिखानें।
खाने जबइँ कहत गंगाधर, मुक्त मोक्षरस चाने।

प्यारे आज खेल लो होरी, ललक मिटी न मोरी।
घुरो धरो रँग कई वरन कौ, भरी गुलालन झोरी।
केसर कुम-कुम औ अबीर सँग, मलौ कपोलन रोरी।
गंगाधर कएँ दंगल भीतर, वरनी मोरी तोरी।

आई तुरत हुकम खाँ पाकें, सुन्दर रूप बनाकें।
आसन लगा होलिका बैठी, नृप सुत दियो गहाकें।
अग्नि देव की भई परीक्षा, जली होलिका आकें।
मनभावन सबके हैं स्वामी, लओ पहलाद बचाकें।

सौजन्य से - भगवान दास कुशवाहा, सभापति, कुशवाहासमाज
सरानी दरबाजा, छतरपुर (म.प्र.)

बुंदेली विभूति, प्रखर वैचारिकता के अग्रदूत : ओम शंकर खरे 'असर'

- रघुवंशमणि

मेरा खरे साहब से परिचय सन् १९८४ में फ़ैज़ाबाद में हुआ था जहाँ वे उपनिदेशक राष्ट्रीय बचत के पद पर कार्यरत थे। मिलना उनसे एक पत्रिका की सामग्री के सिलसिले में हुआ था जिसका सम्पादन मेरे एक मित्र कर रहे थे। उन्होंने उस समय अपनी दो भागों में लिखित एक कविता 'तल्खियों के खत' प्रकाशनार्थ दी थी। उस कविता को पढ़कर मैं इतना प्रभावित हुआ कि उनसे मिलने चला गया। असर साहब से पहली ही मुलाकात का इतना गहरा असर पड़ा कि उनसे जुड़ाव आज भी बना हुआ है।

खरे साहब लम्बी-चौड़ी कद-काठी के स्वामी हैं जिनपर रौबदार मूँछें खूब फबती हैं। उन दिनों वे अपना रशियन लगने वाला कोट और टोपी पहनकर जब फ़ैज़ाबाद की सड़कों पर निकलते थे तो सबसे अलग दिखते थे और बरबस उनकी और ध्यान चला जाता था। फ़ैजाबाद के जीवन में वे एक हस्तक्षेप की तरह थे। संस्कृतिकर्मियों की एक पूरी पीढ़ी ही उन दिनों खरे साहब के चारो तरफ घूमती थी और उनसे संस्कार ग्रहण करती थी। उस समय की हम युवा लोगों की संस्था नव साहित्य संगम के तो वे संरक्षक जैसे थे। उनकी बातचीत का लहजा तो ऐसा है कि कोई भी उसके जादू में उलझ कर रह जाय। वह जादू इतने दिनों बाद तो आज भी कायम है। किसी शायर ने लिखा है, 'किसी की आँख में जादू तेरी जुबान में है।'

वे फ़ैज़ाबाद में अकेले रहा करते थे। स्वपाकी थे और खाना गजब का बनाते थे। उनकी बनायी खीर तो अयोध्या के बाबाओं की तस्मै को भी मात करती थी। कभी-कभी जब मैं रात में उनके कमरे पर पहुँचता था तो उन्हे अपने अति पुराने बत्ती वाले स्टोव पर कुछ पकाता हुआ पाता था। कभी-कभी मैं उनकी बेहद महीन प्याज काटने की कला पर मुग्ध हो जाता था। यह बात तो बाद में जाहिर हुई कि अपनी सूक्ष्म कटी प्याज की ही तरह वे महीन और पारंगत कलाकार भी थे। वे बढ़िया मिनियेचर पेंटर थे। खाना पकाने के काम के दरम्यान वे बातें भी करते थे और किसी के न होने पर कोई किताब भी देख लिया करते थे। उन्हे पुरानी चीजों का बेहद शौक था। उनके पास एक ऐसी घड़ी थी जो गाँधी बाबा की घड़ी जैसी थी। गोल और चैन से बंधी हुई, जिसमें वे रोज सुबह उठकर चाभी भरा करते थे। लगता था कि उन्होंने उस घड़ी के बहाने अपने किसी पुराने समय को बचा रखा था। वह समय दुनिया के तमाम परिवर्तनों के उपरांत शायद अब भी उनके पास सुरक्षित होगा।

वे दिन हमारे लिए संक्रमण काल साबित हो रहे थे। फ़ैज़ाबाद में उन दिनों हम लोग मित्रों की मंडली की छोटी-छोटी गोष्ठियाँ आयोजित करते थे जिसमें खरे साहब अक्सर अपने स्टोप पर चढ़ी दाल छोड़कर आ जाया करते थे। अन्त में कविता सुनने-सुनाने के चक्कर में उनकी दाल गल-जल कर खाक ही हो चुकी होती थी। हम लोग तो उन्हें सुनने के लिए बेताब रहा करते थे और वे सुनाने के लिए। जाहिर है ऐसे में दाल की क्या बिसात थी कि बीच में आती।

उस दौर में खरे साहब से सीखने के लिए बहुत कुछ मिला। सब का जिक्र करना तो यहाँ संभव नहीं। मगर इतना बताना जरूरी है कि वे सामान्य व्यक्ति और सामान्य जीवन में गहरा विश्वास रखते थे। वे अक्सर कहा करते थे कि सामान्य व्यक्ति का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। एक लेखक को इसी प्रकार का जीवन जीना चाहिए। सामान्य जीवन किसी भी लेखक को जीवन की नब्ज पहचानने में मदद करता है। सामान्य लोगों के बीच रहने पर प्रवाहपतित करने वाली तीव्र अभिलाषाएँ जन्म नहीं लेतीं। वे साहित्य सर्जना और कला उपक्रम को भी सामान्य जीवन की गतिविधियों से जोड़कर देखा करते थे। एक बार एक लड़की उनसे पेंटिंग सीखने आयी तो खरे साहब ने उससे कमरे में झाड़ू लगाने के लिए कहा। जब उसने बेमन से झाड़ू लगाया तो उन्होंने उससे कहा कि जो शख्स ठीक से झाड़ू नहीं चला सकता वह ब्रश क्या चला पायेगा। यह घटना इस बात को साबित करने वाली है कि खरे साहब के लिए सामान्य जीवन की गतिविधियों और कलासृजन में कैसा सम्बन्ध था।

वे बहुत अच्छे पाठक थे और उनका साहित्य संबन्धी अध्ययन बहुत गहरा था। हमने हर्जेन, बेलिंस्की और चेर्निस्वेस्की के बारे में पहले-पहल उन्ही से सुना। उनसे उपन्यास, कविता, आलोचना आदि पर लम्बी-लम्बी बातें होती थीं। बातें बेतकल्लुफ मगर गहरी। फ़ैज़ाबाद जैसे छोटे शहर में यह बड़ी बात थी। वे किसी प्रोफेसर की तरह अकादमिक बातें नहीं करते थे बल्कि उनकी बातों में उनके अपने साहित्य सम्बन्धी अनुभव जुड़े रहते थे और यही चीज़ हमारे जैसे युवाओं के लिए सबसे कीमती थी। बाद में कविता और आलोचना को हाथ लगाया तो उसके संस्कार पहले खरे साहब से ही मिले थे। यही कारण है कि मैं उन्हें अपना काव्यगुरु मानता हूँ।

तथ्यपरक बातें करनी हों तो ओम शंकर खरे 'असर' साहब का जन्म ७ फरवरी १९३० में मोठ, झाँसी में हुआ। उनके पिता जी का नाम श्री जगरूपन लालजी खरे था। खरे साहब ने सन् १९४९ में आगरा कालेज, आगरा से स्नातक उपाधि प्राप्त की थी। तदुपरांत अगले ही वर्ष १९५० में उ.प्र. सोशल ट्रेनिंग अकादमी, फैजाबाद से फ़ौजी ट्रेनिंग सहित डिप्लोमा प्राप्त किया। १९५१ में वे भारत सरकार के वित्त मंत्रालय के राष्ट्रीय बचत संगठन के अधीन जिला संगठनकर्त्ता नियुक्त हुए और १९८८ में डिप्टी रीजनल डायरेक्टर, राष्ट्रीय बचत के फ़ैजाबाद-गोरखपुर मंडलों के राजपत्रित अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुए। जीवन भर वे अपनी जिम्मेदारी को बेहद ईमानदारी और अनुशासन के साथ निभाते रहे। सरकारी महकमें के ऊँचे पद पर रहते हुए भी वे बेहद समान्य जीवन जीते रहे। उन्होंने यह जीवन स्वयं चुना था। वे मानते थे कि सामान्य व्यक्ति का जीवन ही सर्वश्रेष्ठ जीवन है क्योंकि यहाँ रहते हुए एक लेखक जीवन की नब्ज को ठीक से जान सकता है, पकड़ सकता है और साहित्यकार के लिए यही सबसे जरूरी बात है।

खरे साहब के साहित्यिक जीवन की शुरुवात उनकी नौकरी से पहले हो चुकी थी। दूसरे शब्दों में साहित्य से उनका लगाव काफी पुराना था। १९४४ में ही वे हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावन

लाल वर्मा के सम्पर्क में आये और कहानी लेखक के रूप मे अपना साहित्यिक कार्यकलाप प्रारम्भ किया। वृन्दावनलाल वर्मा के सम्पर्क में आने पर इतिहास के प्रति जो अभिरुचि उनमें पैदा हुई वह अभी तक उनमें बरकरार है। विशेषकर झाँसी का इतिहास उन्हें लिखने के लिए प्रेरित करता रहा है।

वर्ष १९४५ में वे व्रजभाषाचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी के सम्पर्क में आकर उन्होंने कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया। लेकिन खरे साहब के लेखन और सोच में बड़ा परिवर्तन तब हुआ जब उनका सम्पर्क हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि केदारनाथ अग्रवाल से हुआ। बाँदा में होने वाली गोष्ठियों की गंभीरता ने उन्हें कविता और जीवन से जुड़े नये संस्कार दिये। जनवादी लेखन का क्रम तभी से शुरू हुआ और आज तक चलता रहा है। अपने समय के महान लेखकों के वे सम्पर्क में रहे। डॉ. रामविलास शर्मा, वशीर बद्र, डॉ. महावीर साहा, स्मैकेल जैसे विद्वानों के वे सम्पर्क में आये। बाँदा के कृष्णमुरारी पहारिया जैसे साहित्यकारों के साथ वे गतिशील रहे। कहना न होगा कि बाँदा जिले से उनके सम्पर्क ने उन्हें साहित्य के गहरे संस्कार दिये।

खरे साहब ने राधास्वामी सम्प्रदाय से जुड़े लेखक शिवव्रतलाल वर्मन पर १७ लेख लिखे थे जो ब्रिटिश इण्डिया लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित रखे हुए हैं। वर्मन जी मूलतः उर्दू के लेखक हैं । लेकिन उनकी लेखनी हिन्दी और अंग्रेजी में भी गतिशील थी। उन्होंने जमाना अखबार का सम्पादन भी किया था। उन्होंने छोटी-बड़ी ३६०० पुस्तकों का लेखन किया था। खरे साहब के ये लेख वर्मन जी के बारे में विशद जानकारी प्रदान करते हैं।

झाँसी का इतिहास उन्हें बार बार लिखने के लिए प्रेरित करता रहा है। झाँसी के इतिहास पर उन्होने एक छोटी पुस्तिका महारानी लक्ष्मीबाई और उनकी झाँसी तैयार की थी। मगर बाद में उन्होंने 'झाँसी क्रान्ति की काशी' नाम से एक लेखमाला ही तैयार की जिसे स्थानीय दैनिक जागरण ने प्रकाशित भी किया था। बाद में यह पुस्तक के रूप में झाँसी म्यूजियम द्वारा प्रकाशित की गयी है। झाँसी पर इतनी विशद पुस्तक मेरी जानकारी में नहीं लिखी गयी है। इस ऐतिहासिक पुस्तक पर तो अलग से लिखने की जरूरत है, मगर यहाँ इतना कहना अनुचित न होगा कि झाँसी के इतिहास पर और रानी लक्ष्मीबाई के जीवन पर यह बेजोड़ पुस्तक है। इस पुस्तक में खरे साहब ने झाँसी के इतिहास की विशद चर्चा करते हुए इस विषय पर ढेर सारी सामग्री एक साथ संकलित कर दी है। मगर यह संकलन से अलग एक तर्कसंगत लेखन भी है जिसमें महारानी लक्ष्मीबाई के जीवन से जुड़े मिथकों का प्रतिकार भी किया गया है। साथ ही साथ हमें खरे साहब का काफी व्यक्तिगत भी मिलता है। उनकी अपनी शैली का रंग भी जगह जगह छितराया हुआ है। इस पुस्तक पर उन्हें कोई महत्वपूर्ण पुरस्कार मिलना चाहिए था। मगर वे स्वयं अपने लेखन को पुरस्कृत करने के प्रति निर्लिप्त लगते हैं। आजकल पुरस्कारों के लिए लार टपकाने वाले लेखकों के बीच यह भी अलग लेखकीय अवस्थिति है।

खरे साहब के गद्य लेखन की चर्चा में यह जोड़ना जरूरी है कि वे एक बहुत सधे हुए व्यंग लेखक हैं और उनके व्यंगो में विलक्षण पठनीयता है। उनके फैज़ाबाद प्रवास के दौरान जनमोर्चा दैनिक ने उनके बहुत से व्यंग प्रकाशित किये थे। उस समय जनमोर्चा के समाचार सम्पादक स्व. श्री चन्द्र मोहन जी उनके घनिष्ट मित्र हुआ करते थे। उनके ही अनुरोध पर खरे साहब ने अपने बहुत से निबन्ध जनमोर्चा में प्रकाशनार्थ भेजे थे।

खरे साहब एक विलक्षण चित्रकार हैं। उन्होने छोटी साइज में बहुत सारी पेन्टिग्स बनायी है। चित्रकारी के साथ उनका यह जुड़ाव १९५१ में ही शुरू हो गया था। वे चाकू से ही ब्रश का काम लेते हैं और आधुनिक पेन्टर पिकासो के खास प्रशंसक हैं। पर वे बताते हैं कि उन्हें चित्रकारी की प्रेरणा भारत की पुरानी चित्रकारी की परम्परा से ही प्राप्त हुई है। उनकी मिनियेचर पेन्टिंग्स में पुराने किले और महल आदि मिलते हैं। मुझे कला के बारे में कुछ खास जानकारी नहीं लेकिन कला मर्मज्ञों का मानना है कि उनकी पेन्टिंग्स का अपना अलग महत्व है। उनकी रचनात्मकता के इस पक्ष पर शोध भी हो चुके हैं।

खरे साइब ने पत्रकार के रूप में भी काफी कार्य किये हैं। एक दौर में उन्होने अंग्रेजी पाक्षिक बैंक समाचार का संपादक किया था। इस पत्र में मैने भी कुछ लेख लिखे थे। बाद के दिनों में दैनिक जागरण, मार्गदर्शक, अर्थयुग में आपके स्तंभों ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

हिन्दी कविता के अतिरिक्त उन्होंने उर्दू शायरी को भी गजलों के माध्यम से अपना योगदान दिया। यह बात जरूर है कि उन्होने गज़लें थोड़ा देर से -१९८४ के आसपास- लिखनी प्रारम्भ कीं। मगर उन्होंने जब लिखना शुरू किया तो मन से लिखा। उनकी लगभग ४०० प्रकाशित-अप्रकाशित गजलें हैं। उनका एक संग्रह बेतवा प्रकाश्य है। उर्दू शायरी पर वे आलोचनात्मक लेखन भी करते रहे हैं। कृष्णबिहारी नूर के लेखन पर उन्होंने लम्बा काम किया है जो एक अखबार में प्रकाशित है। अपने स्तंभ एहसासे चमन, मंजरनामा, और सप्तधारा में वे उर्दू शायरों का जिक्र करते रहे हैं।

ओमशंकर खरे साहब की गज़लों में से कुछ का चुनाव करना मेरे लिए कठिन काम था और इस छोटे से लगने वाले काम में मैंने काफी समय लगाया। प्रस्तुत गज़लों में वह शास्त्रीयता दिखायी देती है जिसके साथ असर साहब ने सूफियाना तसव्वुफ को जोड़ दिया है। मगर सबसे बड़ी बात यह है कि यहाँ इन दोनों तत्वों के साथ जिन्दगी के रंग घुले-मिले हुए हैं। यह सब कुछ कभी भी हवा जैसा वायवीय नहीं होता। जिन्दगी के मसाइल बार-बार उभर कर आते हैं। आखिर ऐसा कैसे हो सकता है कि जिन्दगी में डूबे असर साहब की कविता से अपने समय का जीवन ही दूर हो जाय? मैं समझता हूँ कि इन कुछ गज़लों से पाठकों को असर साहब की गज़लों की प्रतिनिधि झलक भर ही मिल सकेगी। अपनी जिन्दगी की चौथी ऊँचाई पर खड़े खरे साहब की रचनाओं का सही मूल्यॉकन होना अभी फिलहाल बाकी है।

खरे साहब इन दिनों सेवानिवृत्त होने के उपरान्त झाँसी नगर में अपने पुश्तैनी मकान २१३, वासदेव, झाँसी में रहते हैं। अपनी अस्वस्थता के बावजूद इन दिनों वे पुस्तकें पढ़ने और गजलें लिखने में व्यस्त रहते हैं।

- ३६६, इस्माइलगंज, अमानीगंज, फैजाबाद, (उ.प्र.)

पंडित मुन्नीलाल पुजारी की बुन्देली गारियाँ

- डॉ. कुँजीलाल पटेल 'मनोहर'

बुन्देली समाज और संस्कृति प्राचीन काल से अपने मर्यादित एवं आदर्श स्वरूप के कारण अनुकरणीय रही है। लोकजीवन को आल्हादित बनाये रखने में बुन्देली के लोकचिन्तकों तथा रचनाकारों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। अशिक्षित किन्तु अनुभवी लोकचितेरों की लोकरचनाओं को लोकमुख से लोकविख्यात बनाकर लोकपरम्परा में प्रचलित करके लोकरागनी की अनूठी निधियों के रूप में स्थापित किया होगा।

बुन्देली लोकपरंपरा में अनेक लोक रचनाकार हुए, जिनके मूल व्यक्तित्व से इतिहास और लोकइतिहास आज पूर्णतः अनभिज्ञ है। केवल उनकी लोकरचनाओं से पता चलता है कि अमुक नाम के रचनाकार कभी बुन्देलखण्ड में रहे होंगे। बुन्देली लोकगायकी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोक-विधा 'गारी' को अनेक रचनाकारों ने समृद्ध कर मानवीय जीवन में उपयोगी एवं अनुकरणीय बनाया। लोकमानस में आज भी प्रमुख रूप से बजीर मुहम्मद, फकीर मुहम्मद, मुन्नीलाल पुजारी, काशीराम, प्यारेजू, सीताराम, दुर्गादास, बंशगोपाल आदि की गारियाँ लोकपरम्परा में सुनने को मिलती हैं। लेकिन उक्त रचनाकार बुन्देलखण्ड में किस क्षेत्र के किस गाँव में कब हुए? इसकी कोई प्रमाणिक जानकारी आज उपलब्ध नहीं है।

जिन लोकरचनाकारों का पता-ठिकाना पूर्णरूपेण विलुप्त हो गया है किन्तु लोकपरम्परा में उनका कृतित्व आज भी प्रचलित है, यदि समय रहते हमने उसका संकलन नहीं किया तो वह भी एक दिन हमारी लोकपरम्परा से हमेशा के लिए गायब हो जायेगा। शोधयात्रा के दौरान हमें द्विज मुन्नीलाल पुजारी की गारियाँ लोकमानस से संकलित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसकी एक गारी में रचनाकार के परिवार, स्थान, व्यवसाय, गोत्र आदि की पर्याप्त जानकारी मिलती है एक वयोवृद्ध लोकगायक से संकलित की गई गारी इस प्रकार है -

टेक - छोटे में पूजा परमात्मा सें पाई, बनी जैसी कर पाई।
१. मंदिर में मुरली बारे, गंगा मुख के दुआरे,
सामू बजरंग पधारे, बजत संख उर नगारे,
जो कछु मिल पाओ भोग ब्यारी लगाई, बनी जैसी कर पाई।
२. अब खेती को न्यारे, हरवाये हैं हमारे,
हम करियत बैदारे, भइया पूजा को प्यारे,
भोग के बनावे को रहत घर मताई, बनी जैसी कर पाई।
३. उतईं घर है हमारौ, धूनी बैठत की यारौ,
रैबे अटा उर उसारौ, बगर गउँवन कौ न्यारौ,
और ना हमारें कोउ लरका लुगाई, बनी जैसी कर पाई।
४. चौक चौंरौ मैंदान, बानियन के मकान,
खोरें तीन जुरीं आन, दुगई बँगला निसान,
तला कुँआ न नगीच तासे होती कठिनाई, बनी जैसी कर पाई।
५. जिला झांसी कौ जानों, रियासत बिजावर की मानों,
सटई तहसील थानों, गाँव बसाटा पुरानों,
उतई अमलत जागीर जहाँ जनम भूमि पाई, बनी जैसी कर पाई।
६. द्विज अड़जरिया आँय, भीतर कोट के कहाँय
गोत्र साँडल कहाँय, सकल करम मन बनाँय
कुल में तौ पूजा गसाँईं जू की आई, बनी जैसी कर पाई।
७. अब तो ईश्वर रखवारे, बो सबके पालन हारे,
बोई हितू हैं हमारे, जी के डाँट लये दुवारे,
द्विज मुन्नीलाल प्यारे ने गारी बनाई, बनी जैसी कर पाई।

बुन्देली लोकपरम्परा से संकलित इस गारी में रचनाकार के घर परिवार तथा जीवनयापन सम्बंधी संसाधनों की पर्याप्त जानकारी मिलती है। शेष जानकारी उनके गांव के लोगों से सम्पर्क कर जुटाई जा सकती है। पंडित मुन्नीलाल पुजारी देशी जड़ी बूटियों के जानकार तो थे ही, धार्मिक भावनाएँ भी उनके व्यक्तित्व में समाहित थीं। गाँव के बुजुर्ग महानुभावों से सुनकर संकलित एक गारी में मुनि आगमन से राम लक्ष्मण सहित जनकपुर पहुँचने तक का प्रसंग लोकभावनाओं के अनुरूप रचनाकार ने किस प्रकार प्रस्तुत किया है यहाँ विचारणीय है -

टेक - कानन में रामरस डार दओ तो, तब कैसो लगोतो।
१. जज्ञ मुनि ने कराये, सुत भूप के मँगाये
बचन प्रेम के सुनाये, सुनत आनंद बन आये,
रिजवा-रिजवा कें उनने लिबाय लओ तो, तब कैसो लगोतो।
२. जज्ञ मुनि की रखाई, नार ताड़का भगाई,
ऐसी प्रेम सें कराई, तनक बिगरन ना पाई,
उनने मार-मार बानन गिराय दओ तो, तब कैसौ लगोतो।
३. रंगभूमि को भये तैयार, गौतम नारी दई तार,
देखी बाग की बहार, ऐसौ लगो मजेदार
उतै सिया जू को निहार लओ तो, तब कैसो लगोतो।
४. पास गिरजा के आई, बरदान देव माई,
पति होबें रघुराई, जा लाज लो बचाई,
बरदान पाय जीरा जुड़ाय गओ तो, तब कैसो लगोतो।
५. फूल टोर कें लै आये, पास गुरुवर के आये,
ऐसे बचन धर सुनाये, बचन हिरदय में भाये,
फूल बाटिका को हाल सब सुनाय दओ तो, तब कैसौ लगोतो।
६. चरन दाबें दोऊ भाई, फिर सोबें रघुराई
करी गुरु की सेवकाई, खुसी हिये ना समाई
मीड़-मीड़ लक्ष्मन सुबाय दऔ तो, तब कैसी लगोतो।
७. हाल जनक ने सुनाये, कौशिक मुनि को पौंचाये
प्रातकाल सोइ हो आये, बचन गुरु को भाये।
करो मुजरा सनमान फिर लुबाय लओ तो, तब कैसौ लगोतो।
८. मिले जनक जू सें आय, रही आनन्द छबि छाय,
शोभा बनी न जाय, दरसन दीनें हरि आय,
उन्हें देखत ही जीरा जुड़ाय गओ तो, तब कैसौ लगोतो।

६. लगीं रामलखन प्यारे, धनी तीन लोक बारे,
संग गुरु के पधारे, मन बस गये हमारे,
द्विज मुन्नी लाल चरनन को रीझ गओ तो, तब कैसो लगो तो।

मुन्नीलाल पुजारी की रामविवाह सम्बंधी एक और गारी लोकमानस में प्रचलित है, जिसे महिलायें वैवाहिक अवसरों पर बड़े चाव से गाती हैं। धीरे धीरे लोकप्रचलन से यह भी बाहर न हो जाये इसलिये महिलाओं से इसे भी संकलित करना अनिवार्य हो गया था। गारी इस प्रकार है -

टेक - राजा जनक ने बारात बुलवाई, चलौ मिथलापुर भाई।।

१. बोले दशरथ महाराज, तुम सुनो भरतराज,
पाती आई है आज, होने रघुवर कौ काज
सुनतन भरत ने तैयारी लगाई, चलौ मिथलापुर भाई।।

२. पाती माता ने पाई, सुनत आनंद रऔ छाई
नारी पुर की जुर आई, नाचें गाबें बधाई।
धन्य घरी आज खबर रघुवर की पाई, चलौ मिथलापुर भाई।

३. नेंवते देवतन पठवाये, सबरे सुर मुनि जुर आये
संग शंकर जी आये, बाहन अपनी लै आये
जुर गई बरात शोभा बरनी ना जाई, चलौ मिथलापुर भाई।

४. रथ गज बाज सब मँगाये, पीनस पालकी लै आये
डंका बाजे बजवाये, बरनन कीनें कर पाये
चौंर छड़ी पंखा और छत्र रये दिखाई, चलौ मिथलापुर भाई।

५. कहैं बंदीजन आन, करें अप्सरायें गान
घूमें तबला निशान, हो रई आनंद की तान।
उतै मिरदान बनने की टेर है लगवाई, चलौ मिथलापुर भाई।

६. घरी सुघरी बन आई, देखी भूप की ललाई
परी दूर लौ दिखाई, शोभा बरनी ना जाई।
लद गऔ समान अब होत है जबाई, चलौ मिथलापुर भाई।

७. सुनो क्रीट मुकुट बारे, तुम जगपालन हारे
हम दास हैं तुम्हारे, पत रखियौ हमारे
द्विज मुन्नीलाल प्यारे ने गारी बनाई, चलौ मिथलापुर भाई।

अयोध्या से बारात सजधज कर मिथिलापुर नरेश राजा जनक की नगरी पहुँचती है। वहाँ टीका चढ़ाये की पूरी तैयारी की जाती है। इस अवसर पर बुन्देली विवाह गीतों में महिलायें एक और गारी बड़ी तन्मयता से गाया करती हैं। लेकिन गारी गाने की यह परम्परा भी धीरे-धीरे खत्म हो रही है। ग्रामीण समाज की वृद्ध महिलाओं से संकलित मुन्नीलाल पुजारी रचित एक और गारी देखिये-

टेक :- बनरा बनकें आ गये तीनऊ लोकधनी, चलौ देखन चलिये।

१. ठाकुर जेई अयोध्या बारे, जे दशरथ के राजदुलारे
हाथन धनुषबान लयें प्यारे, उनके तीन लोक उजयारे
बागी पहरें मोल अमोली पीताम्बर में गुथी मनी, चलौ देखन चलिये।

२. बांके भाल तिलक हैं न्यारे, कानन कुंडल डोलन हारे
कंठी कंठा हैं अति प्यारे, उनके नैना हैं रतनारे
मौर धरो माथे के ऊपर जिनमें जड़ी हीरा की कनी, चलौ देखन चलिये।

३. सजकर राम जनकपुर आये, संग में सुरनर मुनि ले आये
सुनतन बाजे अधिक सुहाये, तिनके शब्द दूर लौ छाये
दोरें जभी बरात है आई तामें लगी बरछी सी अनी, चलौ देखन चलिये।

४. टींका भये जनक के दोरें, सखियाँ बांधे चारऊ खोरे
उठती मन में प्रेम हिलोरें, ऐसौ जोग विधाता जोरें
मुन्नीलाल भजन कर प्यारे छया करें तिरलोक धनी, चलौ देखन चलिये।

लोकपरम्परा में इसी समय एक और गारी विदाई के समय पर गाई जाती है जिसमें बुन्देलखण्ड के रीति रिवाजों के अनुरूप विदाई के पूर्व, विदाई के समय तथा विदाई के बाद सारे रीतिरिवाजों को अंजाम दिया जाता है और यह गारी गाई जाती है-

टेक - जे अबधपुरी के वासी अपनीं करें बिदा की त्यारी।

१. जब सामान भरा दये ताजे, भांड़े बर्तन नये नये साजे,
दायजौ दऔ बजाकें बाजे, समधी फगुयै आन बिराजे,
दूल्हा करन कलेवा आ गये सखियां गावें गारी,
जे अबधपुरी के बासी अपनी करें बिदा की त्यारी।

२. ऐंसी फाग मची घनघोर, गावें सखी नचावें शोर,
समदिन कहन लगी कर जोर, गहकें नेंह न दइयौ टोर,
धरन लगे सामान बाहरें जातीं जनकदुलारी,
जे अबधपुरी के बासी अपनी करें बिदा की त्यारी।

३. भेंटें भइया पिता मतारी, भेंटी सब पुर की नर नारी
फिर फिर कहती जनकदुलारी, राखे रइयो खबर हमारी
गाँठ बाँध सखियन नें बुलाकें रथ में जाय पधारी
जे अबधपुरी के बासी अपनी करें बिदा की त्यारी।

४. पहुँचे जनक समाज लुबाई, सबको दे दई भेंट बिदाई
बोले समधी फिर सिर नाई, गन मुनि गुरु पुरेत बुलाई
भूल-चूक जो बिगरी होवै करियौ माफ हमारी,
जे अबधपुरी के बासी अपनी करें बिदा की त्यारी।

५. बोले दशरथ बात उचारी, तुमनें बहुयें दीन्हीं प्यारी,
संतत संपत बड़े तुमारी, कर दई अब चलने की त्यारी
पहुँचे जायँ अयोध्या नगरी मुन्नीलाल रची गारी
जे अबधपुरी के बासी अपनी करें बिदा की त्यारी।

गाँव के लोग बताते हैं कि पं. मुन्नीलाल पुजारी की सैकड़ों गारियाँ लोकमानस में समय समय पर गायी जाती थीं। लेकिन अब सांस्कृतिक बदलाव तथा बाहरी प्रभावों के कारण हमारी पुरानी पीढ़ियों के साथ ही लोकपरंपरा की यह साहित्यिक, लोकसाहित्यिक तथा सांस्कृतिक धरोहर भी विलुप्त हो रही है जिसको संकलित कर संरक्षित करना हम बुद्धिजीवियों का परम कर्तव्य है।

- रेडियो कॉलोनी के सामने, पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.)

राजतिलक

- डॉ. रामनारायण शर्मा

मुख्य पात्र -

वृसिंह देव : ओरछा नरेश

कन्नरदास : राजगुरु एवं राजमंत्री

कृपाराम गौड़ : सेनापति

केशवदास : पौराणिक

अन्य : पार्वती रानी, पंचम रानी, राजकुमार जुझार सिंह हरदौल, वाघराज, तुलसीदास, वेनीदास, पहाड़सिंह, माधौदास, भगवानदास, नरहरिदास, बसंतराय, साहिबराय, नारायनदास कवि मित्र मिश्र, छितिर मिश्र, दंडाधिकारी, नगर कोतवाल, जागीरदार, मंसबदार एवं गणिकाएँ।

काल : सत्रहवीं सदी कौ पूर्वार्द्ध

समय : दिन कौ पैलौ पार

स्थान : ओरछा राजदरबार

दृश्य : बेतवा तट के वन प्रांतर के घेरे में बसो ओरछा। राजमहल द्वार सें सीधा दिखता रामराजा का मंदिर उसके पास मंत्री, सेनापति, केशवदास आदि के भवन और इन सबके बीच स्थित राजदरबार।

(बसंत पांचें कौ दिन। ओरछा राज दरबार में रंग-बिरंगी पोशाकों में सज-धज के साथ बिराजे दरवारीगन, जागीरदार और मुखिया। सिंहासन के ठीक ऊपर और पाछें नरसिंह देव कौ भव्य चित्र शोभायमान है। सिंघासन के छत्र पै सूर्यदेव कौ चित्रांकन। सिंघासन की दाईं ओर की पांत में गुरुदेव कन्नर दास सेनापति कृपाराम गौंड़, पौरानिक केशवदास एवं छितिर मिश्र, मित्र मिश्र आदि बैठे हैं। दूसरी ओर की पांत में विराजमान जुझार सिंह कुंवर हरदौल, बाघराज, पहाड़सिंह, भगवानदास, नरहरिवास, माधोदास, बेनीदास, तुलसीदास, बसंतराय, साहिबराय, नारायनदास के संग दंडाधिकारी और कोतवाल सोभायमान हैं। सिंघासन के पीछे राजमहिसी गनिकन और पुरैतन संग झीने पर्दा में दिखाई दे रईं। सिंघासन के पास राजमुकुट, सरोपा, पहिरावन आदि रखे हैं। सहसा शांति भंग करत द्वारपाल ने महाराज के आगमन की हुँकार दई। सब सावधान होत भये।)

द्वारपाल-सावधान! सावधान! महाराज की दरबार में अबाई हो रई। महाराज बृसिंहदेव कौ दरबार में आवे पै सब सभासद खड़े होकें उनकौ अभिवादन करन लगे। सिर पै पाग, भाल पै तिलक धारे, गरे में मुक्तन की माला, अचकन, चूरीदार और पैर में दतिया साही उपानय से दमकत महाराज आकें सिंघासन पै विराजमान भये। सभासद आसनन पर बैठ गये। गुरुदेव कन्नर दास खड़े होकें राजाज्ञा के बाद दरवार को सम्बोधित करन लगे।

गुरुदेव कन्नरदास - रितुयन के राजा बसंत के दिना, रामराजा की किरपा से आज की शुभ घड़ी में हम सब ओरछा के सभासद और प्रजाजन अपने महाराज कौ राजतिलक कारज सम्पन्न करवै की महाराज सें आज्ञा चाउत।

महाराज - सिर हिला के अपनी स्वीकृति देत भये। गुरुदेव कन्नर दास ने बृसिंगदेव कौ मंत्रोच्चारन कर पवित्र नदियँन के पानी से आचमन-अर्चन कराओ -

गंगाच जमुना गोदावरी सरस्वती,
नर्मदा सिन्ध काबेरी जलेस्मिन सन्निधमकुरु।

(और महाराज के सिर पै राज मुकुट पहिरादयो और तिलक करौ। मंगल ध्वनि से सारो दरबार गूँज उठो। सबइजन गुरुदेव के सुर में सुर मिला कै जयकारे करन लगे।)

गुरुदेव - महाराजाधिराज महाराज श्री वीरसिंह जू देव की...

सभी जन - जय हो, जय हो।

गुरुदेव - सूर्य वंश कुलावतंश, क़ाशीश्वर, परम प्रतापी, दानवीर महाराज की,

सभी जन - जय हो, जय हो।

गुरुदेव - पंचम ग्रह निवार, विन्ध्येलखण्ड, परम भक्त, प्रजावत्सल, मण्डलाधीश्वर, ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जू देव की....

सभीजन - जय हो, जय हो, जय हो।

(महाराज ने सबकौ अभिवादन स्वीकार कर मस्तक नवायो। पर्दे के पीछे विराजीं राजरानी सब अति पुलकित भईं। महराज ने रीति रिवाज से घोषणा करी।)

महाराज - अपने कुल की रीति से हम अपने गुरुदेव कन्नरदास को अपनों मंत्री घोषित करत। सभी ने करतल ध्वनि के बीच महाराज की जय और मंत्री जू की जय बोली। महाराज नें मंत्री कन्नर दास कों पहिरावन भेंट करी। मंत्री गुरुदेव कन्नरदास ने महाराज कों आशीर्वाद दयो।

मंत्री - अमल चरित्र तुम बैरिन मलिन करौ,
साधु कहें साधु पर दार प्रिय अति है।
एक थल थिट पै बसत जग जन जिय,
द्रिपद बिलोकियत, बहुपद गति हो।
भूषन बसन जुत सीस धरैं भूमि भार,
भूपर फिरत सु अभूत भुवपति हौ।
राजसिंह लीन्हें साथ राखौ गाय ब्राह्मनि,
चिरजीवौ वीर सिंह अद्भुत गति हौ।

(मंत्री कन्नरदास के बाद छितिर मिश्र मित्र मिश्र ने आशीर्वाद दयो। सेनापति, दंडाधिकारी कोषाधिकारी नगर कोतवाल ने अपनी आस्था विश्वास महाराज की सेवा में अर्पन करो। अन्त में पौराणिक केशवदास ने महाराज वीरसिंह जूदेव की प्रशंसा करी)

दानन में बलि से विराजमान जिंह पहं,

मांगबे को है गये त्रिविक्रम तनक से।
पूजत जगत प्रभु द्विजन मंडली में,
कैसोदास देखियत सौनक सनक से।
जोधन में भरथ भगीरथ दसरथ प्रभु,
पारथ में विक्रम समरथ बनक से।
मधुकर शाह सुत महाराज वीर सिंह,
कैसादास राजन में राजत जनक से।

(दरबार करतल ध्वनि से गूँज उठो। तबई महाराज ने मंत्री जू की राजघोषणा, सुनावे की आज्ञा दयी।)

महाराज वीर सिंह जू देव - अब मंत्री दरबार में आज की घोषणा सुनायें। *(मंत्री कन्हरदास ने राजाज्ञाओं की घोषणा करी।)*

१. ओरछा राज में गऊ-ब्राह्मन, साधुअन की रक्षा करी जैहै।
२. ओरछा राज में प्रजा की सुख सुविधा कौ ध्यान रखो जै है।
३. रामराजा मन्दिर के पुजारी कौ पादारख और मंदिर के रख रखाव में बढ़ोत्तरी
४. प्रजा कों बिना भेदभाव कौ न्याव दिलाऔ जैहै।
५. तुंगारण्य अभयारन में आखेट की मनाई।

सभी नें महाराज के उद्घोषनन की भूरि-भूरि प्रशंसा करी। दरबार सें महाराज कौ प्रस्थान। महाराज की जय जयकारों के साथ सभासद आसन छोड़ प्रस्थान कर गये।

दृश्य-दो

(दरबार सें मंदिर होत महाराजा वीर सिंह जू देव गुरुदेव एवं सेनापति के साथ पार्वती रानी के महल में पौंचे। महल पद्मिनी चित्रणी और हस्तिनी के चित्रों सें सुसज्जित सुन्दरता बिखेर रयोतो। रानी ने महाराज की आरती कर अगवानी कर सुन्दर आसन दओ। गुरुदेव, सेनापति कों आसन पै बैठारो। महाराज की न्यौछावर कर दासियों कों भेंट दयी। मंगलगान व वृन्द नृत्यों से सारा महल गूँज उठो। सबने महाराज और महारानी की जय-जयकार करी। तब रानी पार्वती ने कई)

महारानी - महाराज हमाये लानें आज कौ दिन भौतई सुख कौ भयो। आपके राज तिलक से महल में मंगल गान से सब आनन्द विभोर हो गये।

महाराज - महारानी आज कौ दिन सारे ओरछा के उमंग कौ दिन है। आज हमनें प्रजा, गौ, ब्राह्मन, साधु की रक्षा कौ व्रत लओ। महाराज भारती चन्द ने वाघ सें गऊ की सुरक्षा में अपने प्रानन कों न्यौछावर कर दयोतो।

महारानी - महाराज नृसिंह भगवान और कुल देवी की कृपा सें आप को प्रन अवस सुफल हुइये।

गुरुदेव - ऐसेई महारानी कौ कैबो सत्त है महाराज।

सेनापति - ओरछा नरेश के प्रन कों राखों जैहै।

महाराज - अपुन सबसे ऐसेई करबे की गुजारिश है। (फिर रुककर) अच्छा अब प्रस्थान करौ जाय। महाराजा के प्रस्थान से सब महल सूना हो गयो।

दृश्य - तीन

(दिन कौ तीसरौ पहर। महाराज वीरसिंह जू देव अपने कक्ष में विराजे। जनता की गुहार सुन उठवै वारे हते कै तुंगारण्य के रक्षक कों मिलबै की आज्ञा लैबे द्वारपाल नें महाराज सें निवेदन करौ। महाराज की आज्ञा सें वन रक्षक नें प्रवेश करो।)

वन रक्षक - महाराज की जय हो।

महाराज - तुम तो तुंगारण्य के रक्षक हो? बताओ तुंगारण्य में सब शांति तो है?

वन रक्षक - महाराज कहत डर लग रयो। कैसे बताऊँ?

महाराज - निडर हो अपनी बात कहो रक्षक! अपने महाराज पै तुमैं विश्वास नई?

वन रक्षक - ऐसी बात नई महाराज!

महाराज - तो शीघ्र अपने आवै कौं कारन बताओ।

वन रक्षक - महाराज! अपुन की आज्ञा सें तुंगारण्य में आखेट करबो मना है।

महाराज - हाँ, है! तो फिर...

वन रक्षक - महाराज, वेतवा तट पर विचरत शिकारी के वाणों से भयभीत हिरण अपने प्रान बचाकें तुंगारण्य में जा छिपे।

महाराज - ई के बाद का भयो? बखान करौ जाय।

वन रक्षक - महाराज शिकार कों पकरबै शिकारी के आदमी तुंगारण्य में घुस कें उतै बेवता तट पर ध्यान लगाये साधू महाराज सें पूँछन लगे। साधू महाराज ने उनें तुंगारण्य में 'पशु वध वर्जित है' कै कें उनें हिरन वध से मनाकर दओ।

महाराज - राजाज्ञा की जानकारी से अजान आखेटक कौन हतो? शीघ्र बतओ जाये।

वन रक्षक - म...हा...रा...ज...।

महाराजा - डरौ मत निडर होके बताओ द्वारपाल। को हतो?

वन रक्षक - महाराज! अभय चाउत।

महाराज - अभय दयो। रक्षक शिकारी कौ नाँव बताओ जाये। अन्यथा तुमें दण्ड मिलै।

वन रक्षक - रा...ज...कु...मा...र... वाघराज महाराज।

महाराज - का कई? राजकुमार वाघराज?

वन रक्षक - हाँ महाराज, राजकुमार वाघराज नें साधू महाराज के मना करवै सें उनकौ वध कर दयौ।

महाराज - साधू का वध? तुंगारण्य में!! राजकुमार वाघराज ने!!! तुम सच कैरये वन रक्षक?

वन रक्षक - हाँ महाराज! जौ सब सांची बात आय।

महाराज - तुम जा सकत वन रक्षक। रक्षक कौ प्रस्थान। महाराज वीर सिंह जू देव खिन्न मन से कक्ष से प्रस्थान कर गुरुदेव कन्नरदास के भवन में पोंचे।

दृश्य-चार

(गुरुदेव कन्नरदास अपने कक्ष में बैठे धर्म-ग्रंथन कौ पारायन कर रये ते। महाराज वीरसिंह देव कौ कक्ष में आवौ देख उठ कै उननें महाराज कौ आदर-सम्मान सें आसन दयो।)

गुरुदेव - महाराज के माथे पै चिन्ता की रेखाएँ?

महाराज - हाँ गुरुदेव आज में द्विविधा में हों।

गुरुदेव - कैसी द्विविधा नरेश। अपुन तो जानत हौ कै संसार में द्विविधा में फँसो मन कौ निवारन तो रामराजा जू की कृपा सें ही हो सकत। फिर बिरह्मा और माया के बीच हम जीव फँसेरत। अरे स्वयं भगवान रामराजा तक नइं बच सके। फिर अपुन नें समर तक में द्विविधा कों परें रखकें वीरोचित कर्म करें। अब ऐसी कौन-सी दुविधा से नरेश चिंतित हैं।

महाराज - अपुन ठीक कहत गुरुदेव। किन्तु समर में हमें अपने शत्रु से जूझबे की नीति बनाउने परत। पै अपुनन के विरुद्ध निर्णय लेबौ, बड़ी कष्टदायी होत। ईसें अपुन सें पूँछबै आओ।

गुरुदेव - महाराज नें हमें बुला लओ होतौ अथवा दरबार में विचार करौ जा सकत तो।

महाराज - गुरुदेव! समस्या गम्भीर आय। विचार करबौ अवस हतो।

गुरुदेव - महाराज समस्या बताई जाय निरनय अवस हुइये।

महाराज - गुरुदेव तुंगारण्य के वर्जित क्षेत्र में शिकार करबो और मना करवै पै वध। वध भी साधू कौ। अब अपुन बतायें कै जीव, गौ-ब्राह्मन, साधू की रक्षा कौ हमनें संकलप करो और हमाये राज में साधू कौ वध?

गुरुदेव - *(आश्चर्य से)* जौ असम्भव है राजन।

महाराज - असम्भव तौ सम्भव भयो। अब अपुन बतायें कै ईकौ दण्ड का होय?

गुरुदेव - *(सहसा)* मृत्यु दण्ड! एकमेव मृत्युदण्ड ई अपराध कौ है महाराज।

महाराज - कजंत अपराधी राजवंश कौ होय?

गुरुदेव - राजन! अपराधी कौ दण्ड एक होत चाहे वह कोऊ होय, न्याव में राजा और प्रजा एक समान होत।

महाराज - हमाई द्विविधा कौ निवारन हो गयो गुरुदेव। अब चलबे की आज्ञा चाउत।

(महाराज कौ प्रस्थान। गुरुदेव सोचन लगे।)

(रात में महाराज अपने महल में करवट लेत रये। सुबह उठके महाराज ने वाघराज को वंदी बनावे राज दरबार में उपस्थित करबै की आज्ञा दई।)

दृश्य - पांच

(ओरछा राजदरबार पूरौ भरौ हतो। सभी सभासद, राजकुमार हौदेदार अपने-अपने स्थान पै बिराजमान भये। मंत्री कन्नरदास भाल पै तिलक लगाये सफेद परिधान में मंचासीन भये। उन्हीं के पास सेनापति व पौराणिक आदि विराजे। सभी के मुख पैं आज के दरबार की कार्यवाही जानबै की स्पष्ट झलक दिखाई दे रईती। तबई द्वार पर हलचल सुनाई दयी।)

द्वारपाल - महाराजाधिराज महाराज श्री वीरसिंह जूद देव, परम दानवीर गौब्राह्मन साधु, रक्षक, मंडलाधीश्वर, ओरछाधीश दरबार में पधार रये। तीन बार वाद्य ध्वनि भई।

(महाराज श्री वीरसिंह जू देव के दरबार में आगमन पै सभी ने उठकें उनकौ अभिवादन करो। भूरे रंग की अचकन, चूड़ीदार पाजामा सिर पै पाग बाँधे दृढ़ता सें चलत महाराज नृसिंह और कुलावतंसन को प्रणाम कर सिंहासीन भये। रीति के अनुसार मंत्री कन्हरदास ने उठकें महाराज कौ स्वागत करो।)

कन्नरदास - *(मंत्री)* सूर्यवंश कुलावतंश, काशीश्वर, पंचम ग्रहनिवार विन्ध्येलखण्ड मण्डलाधीश्वर ओरछा नरेश श्री वृसिंह जू देव का सभी सभासद स्वागत करत। करतल ध्वनि...

महाराज - मंत्री जू और सभी सभासद जन आज हम ओरछा राज के इतिहास कौ एक अहम न्याँव करबै बैठे। आज कौ न्याँव देस कौ इतिहास बनें और हम आप ईके साक्षी बनें। इतनौ कैकें महाराज नें दण्डाधिकारी से कहा

महाराज - दण्डाधिकारी! आज के अपराधी कों दरबार में उपस्थित करो जाय।

दण्डाधिकारी - जो हुकुम महाराज! महाराज की आज्ञा पाकें दण्डाधिकारी ने अपराधी को दरबार के बीचों बीच रक्षकन की सुरक्षा में खड़ौ कर दयो। राजकुमार वाघराज को वंदी रूप में देख के सभासद भौंचक रै गये। ईके उपरान्त महाराज ने मंत्री से अपराधी के अपराध को पढ़ कें सुनावे की आज्ञा दई।

महाराज - मंत्री जू अपुन दरबार में खड़े अपराधी के अपराध को पढ़ कें सुनावें।

मंत्री - जैसी आज्ञा महाराज। राजकुमार वाघराज ने राजाज्ञा के विरुद्ध आखेट के लिये निरुद्ध क्षेत्र अयोध्या वन में आखेट कौ दुस्साहस करौ। मना करै पै एक साधु कौ वध कर दयो। राजतिलक के औसर पै घोषित राजाज्ञा कौ खुलौ उल्लंघन भयो।

महाराज - *(अपराधी से)* तुमें अपराध स्वीकार है?

वाघराज - महाराज मेरे हकारे के मृग वन में जा छिपे हते। उनें लैबै के लानें हमाये हकवारे अयोध्या वन में गये।

महाराज - वाघराज तुमें राजतिलक के औसर पै घोषित राजाज्ञा कौ ज्ञान हतो।

वाघराज - हाँ महाराज।

महाराज - अयोध्या वन में प्रानी मात्र कौ वध करवौ मृत्युदण्ड है, ई की जानकारी होबे पै तुमने एक साधू कौ वध करो। कारन बताओ जाये?

(वाघराज चुप)

महाराज - एसे अपराध कौ दण्ड तुमें मालूम है?

वाघराज - चु....प।

महाराज - मंत्री कृपा कर बतायें कै ई अपराध कौ दण्ड का हो सकत।

मंत्री - महाराज राजतिलक की परम्पराएँ वंश परम्परा सें ऊँची हैं। इनकौ आधार बड़ौ होत। ई मामले में राजाज्ञा कौ अपमान भयो। जी कौ दंड मृत्युदंड होत।

(पीछे - राज-रानियँन की बैठक सें सिसकियन की आवाज उठी। वाघराज की माता रानी पंचम कुंवर ई सब से विकल भई। महाराज के माथे पै दृढ़ता के भाव उभर आये।)

महाराज - महामंत्री! का न्याँव में हमाये पराये, प्रजा और राजकुमारन

के काजै कछू भेद है?

मंत्री - राजा और प्रजा के काजै न्याँव में एकई दण्ड विधान होत! महाराज।

महाराज - भरत, इकक्ष्याकु, रुद्रप्रताप, रघु, दशरथ, रामचन्द्र, भारती चन्द, मधुकर जैसे परम प्रतापी भक्त व प्रजावत्सल महाराजाओं ने गौ ब्राह्मन साधुयन की रक्षा में राजतिलक तक को त्याग दयो पै अपने वचन कौ परमान राखौ। सो राजतिलक के गौरव को बचावे काजें, रामराजा के राज में ऐसे अनरथ कौ एकई दण्ड है... एक मेव... मृत्यु दण्ड।

न्याव के बाद महाराज उठकर दरबार से बाहर चले गये। सारे दरबारी महाराज के न्याव की भूरि-भूरि प्रशंसा कर जय जय करत प्रस्थान कर गये।

- रामायण, सिविल लाइन,
लक्ष्मीबाई पार्क के सामने, झाँसी (उ.प्र.)

एक बुन्देलखंडी सत्यकथा

हिए की इकाऊ फूट गई का

- चिन्तामणि वर्मा

टीकमगढ़ रियासत के सबसें पछाऊ के राजा वीरसिंह देव (दूसरे) खाँ शिकार कौ इतनी शौक हतो कै अपने दीवान के पद पै दस दर्जा तक पढ़े लिखे एक नामी शिकारी सहपाठी सज्जन सिंह खाँ रख लओ। राजा साहब साल में एक बार दशहरा-दिवारी के मौका पै शेर कौ शिकार करबे खाँ अपने संगै दीवान, कछू शिकारी, बड़े अफसरन खाँ और कछू सिपाइयन खाँ ल्याकै पलेरा जरूरई आउत ते।

एक बार राजा साहब शिकार के लाने बग्गी से पलेरा आए, अफसर घोड़न पै और सिपाही पैलऊँ सैं पलेरा आए। ऊ वक्त हमारे दद्दा (पिताजी) पलेरा के पास जंगली गाँवन के पटवारी हते सो उन्हें पलेरा की डाँग कौ, डग-डग कौ औ जानवरन कौ पतौ ठिकानौ मालूम रततो। राजा के अच्छे शिकार करावै की जिम्मेवारी हमारे दद्दा खाँ, शिकारियन के लानै झिझरिया (एक पुरानी छोटी झील) के तीन ओर लकरिया के ऊँचे ऊँचे मंच बनवाबे की जिम्मेदारी फारैस्टर खाँ और हाँका करावे और कच्ची गैल बनवाबे की जिम्मेदारी पलेरा के थानेदार खाँ सौंपी गई। राजा साहब के बैठवे के लाने झिझरिया के किनारै पक्का दालान बनीअई हती।

राजा के ठैरवे के लानें पलेरा के जुवलीसागर (तालाब) पै एक पक्कौ बँगला बनौ हतो, बड़े अफसरन के लानै बँगला के चारऊ तरफ तम्बू ताने जात ते। डेरा पै नाऊअन की ड्यूटी सबखाँ दातनन कौ, पाँव दवावे की जिम्मेदारी, डेरा पै भरपूर पानी के लाने ढीमरन की, दूध दैवे के लानै अहीरन की औ राशन पानी के लानै बनियन की ड्यूटी लगा दई गई ती। राजा साहब की तरफ सें सब इन्तजामन के लानै पइसा पैलऊँ से भिजवा दए गए तै, पै वो पइसा अफसर खा लेत ते और सब काम बिगार सैंई कराओ गओ तो।

जब शिकार खेलवे की घरी आई तौ राजा साहब के किनारै बनी दालान पै बैठ गए उनके बगल में दद्दा के इलाके नामी शिकारी बुदुआ सौंर खाँ बन्दूक लैकै बिठा दओ। राजा साहब ने हमारे दद्दा खाँ अपने बगल में बिठा लओ और उन्हें एक बन्दूक दै दई गई। हमारे दद्दा ने तौ कभऊँ चिरइअई एक नईं मारी ती पै नौकरी जावे के डरन सें वे राजा की दूसरी बगल में बैठ गए।

हाँका शुरू भओ देहातन से पकर बुलाए गए मजूरी करवे वारन खाँ, तीन ओर ढोल, ढुलक थारी लै कै खड़ै कर दऔ गओ तो। हांका शुरू भओ। तौ तीन ओर सै भौतई हल्ला भओ तौ जंगल के जानवर चौथी तरफ खाँ झिझरिया की तरफ खाँ भगन लगे। राजा साहब ने बुदुआ सें कै दई ती कै जईसें तोखां शेर आउत दिखावै तौ मोंसें कछु ने बोलिए उँगरिया सै ऊँगरया दइए। राजा साहब चारऊ तरफ टकटकी लगाएं ते बुदुआ केवल ओई तरफ देख रओ तो जौन तरफ सै शेर झाड़ियन में छिपो छिपो दबे पाँवन सैं आ रओ तो काए सैं के बुदुआ ऊ चिरइया की आवाज जानत तो जौन शेर कौ पीछौ करत ती।

जईसैं बुदुआँ खाँ झाड़ियन में होकैं सामनें सैं शेर आउत दिखानौ ऊनै राजा साहब खाँ ऊँगरिया कौ इशारौ करो जब एक दो बार इशारे पै भी राजा खाँ शेर न दिखानों और शेर दालान तरफ ऐंगर आउत जा रओ तौ बुदुआ ने गुस्साँ में कई कै 'हिए की इकाऊ फूट गईं का' और ऊने अपनी बन्दूक सें शेर पै फैर कर दओ, शेर घायल होकै गिर परो तो राजा ने भी ऊपै दो तीन फैर कर दए। शेर उतई ढेर हो गओ। दीवान साहब नें तिंदुआ कौ शिकार करो। भारी खुशी मनाई गई। शिकारियन खाँ भोजन व शराब परसी गई इनामें बाँटी गई। खूब नाच गाना कराए गए।

जब महाराज साहब अफसरन सें चारऊ ओर बैठे ते तौ महाराजा साहब नें हमारे दद्दा खां बुलाकै कई कै ऊ सौंर खाँ बुलाव जौन खाँ हमारे बगल में बिठारो गओ तो। दद्दा ने ऊखाँ बुलाओ तौ ऊ मरवे के डरन सै आवई न तौ फिर ऊखाँ समझा बुझाकै दद्दा ऊखाँ महाराज के सामने लिवा गए।

महाराज नैं बुदुआ सें कई कै तैं बा बात कव जौन तैनें हमसैं दालान पै बैठे हते तब कई ती। बुदुआ डरन के मायं कपन लगो और महाराज के चरनन पै गिरकै गलती माफी के लानै गिड़गिड़ान लगो। बड़ी मुश्किल सें ऊनै कई कै महाराज हमने जा कई ती कै हिए की इकाऊ फूट गई का।" महाराज वे ऊके मूड़ पै खुशी से हाँथ फेरो औ बोले बुद्दू हम तुमसें बहुत खुश हैं। महाराज ने बुदुआ खाँ इनाम के पाँच रुपइया दिवा दए और पलेरई में बनरखा के पद पै नियुक्त करा दओ। महाराजा साहब खूब खिलखिला कै हँसन लगे सो सब अफसर हँसन लगे। राजा साहब ने हमारे दद्दा की तनखा में दो रुपैया महीना की बढ़ोत्तरी करा दई।

- चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर

कवि 'बौखल' और उनकी 'नारायण-अंजलि'

- डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

हमारी साहित्यिक परम्परा में ऐसी अनेक प्रतिभायें रही हैं, जिन्होंने विद्यालयीन शिक्षा लिए बिना ऐसी रचनायें समाज को दीं जिन्हें देख-सुन और पढ़कर चमत्कृत रह जाना पड़ता है। भक्तिकालीन निर्गुणिया संतों में से कई का उल्लेख किया जा सकता है। उनमें काव्यात्मक सौंदर्य भले ही न हो, पर भावात्मकता और चिन्तन की दृष्टि से वे किसी से कम नहीं है। उनका अनुभूति पक्ष, उनकी भौतिक दृष्टि, उनका सामाजिक चिन्तन, मानवता के प्रति समर्पण अदृश्य के प्रति आस्था तथा आध्यात्म के प्रति विश्वास अप्रतिम है। 'कलम गही नहीं हाथ', फिर भी इतना लिखवा गए कि बाद की पीढ़ियाँ उनसे ज्ञान, प्रकाश, प्रेरणा और दिशा-दर्शन हो रही हैं। भला हो उन जागरूक सामाजिकों का जिन्होंने ऐसी प्रतिभाओं से सुन-सुन कर उन्हें संकलित किया और आने वाली पीढ़ी को अमूल्य सम्पदा सौंप दी। नारायण दास 'बौखल' (टेलर मास्टर) भी ऐसी ही विलक्षण प्रतिभाओं में से एक हैं जिन्होंने जीवन में जो कुछ भी सीखा वह जीवन और समाज की पाठशाला में ही सीखा और निस्पृह भाव से समाज को समर्पित कर दिया।

नारायण दास 'बौखल' का जन्म सन् १६०४ में सहारनपुर जनपद के रुड़की नगर में हुआ था। पिता रामकृष्ण रेलवे के कर्मचारी थे। माता का नाम इतवारिया था। परिवार से उन्हें भरपूर संस्कार मिले। रामदेई नाम की सन्यासिनी महिला का सम्पर्क उन्हें बाल्यावस्था से मिला। उससे इन्होंने भक्तिपरक पद तथा ज्ञान-भक्ति की बातें सुनी। इसी से इनके भीतर भक्ति, वैराग्य तथा अध्यात्म के भाव जागृत हुये। संगीत और कविता के प्रति भी आकर्षण बढ़ा। मौलवी बसीरुद्दीन ने उन्हें पढ़ाने की चेष्टा की किन्तु इनका मन न लगा। कुछ बड़े होने पर नारायण दास ने सिलाई का काम सीखा और अन्ततः यही उनका व्यवसाय बन गया। जबकि वे जाति के कुम्हार थे। पारिवारिक परिस्थितियों ने इन्हें रुड़की से लाकर कर्वी (जिला बाँदा उ.प्र.) का निवासी बनाया, जहाँ इनके बहन-बहनोई रहते थे। कर्वी में वे सन् १६२७ में आये, और यहीं के होकर रह गये। वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं -

जायो भारत भूमि महतारी।
पिता हमारे रामकिसुन थे, मातु मोर इतवारी।
कुंभकार घर जनम हमारो, रुड़की नगर मझारी।
ब्याह भयो नहिं आखर पायो, द्वन्द मचो परवारी।
सूचीकला से पेट जियावो, कर्वी नगर पधारी।
जेलयात्रा करी कई बारी, शासन भ्रष्टाचारी।
'बौखल' को बहुत दुख दीनो, अंग्रेजन अधिकारी।
मातु-पिता दुइ स्वर्ग सिधारे, बंदी दशा हमारी।
अपनी मति अनुसार ज्ञान गुण, भाषा लिखऊँ गंवारी।

(नारायण नैवेद्य, छन्द १०७, पृ. ३२)

नारायण दास 'बौखल' आजीवन अविवाहित रहे। बौखल का आशय होता है पागल व्यक्ति। धुन के पक्के नारायण भी समाज और देश के प्रति इतने समर्पित थे कि उन्होंने कभी अपनी चिन्ता नहीं की। अन्याय उन्हें बर्दाश्त नहीं था। स्वभाव से संघर्षशील थे। उनकी जिद और धुन तथा मस्ती के कारण ही लोग उन्हें 'बौखल' कहते थे। बाद में वे इसी नाम से जाने जाने लगे और उनका उपनाम 'बौखल' हो गया।

देश प्रेम के प्रेरित बौखल ने कई बार जेल यात्रायें कीं तथा अंग्रेजों के अत्याचार व यातनायें सहीं। अंग्रेजों के अत्याचारों और मनमानियों से वे उत्तेजित रहते थे। सर्वप्रथम उन्होंने 'साइमन कमीशन' के विरुद्ध 'गो बैक' आन्दोलन में भाग लिया। इसके बाद गाँधी जी के आहवान पर 'नमक सत्याग्रह' के सहभागी बने और सन् १६३० में कर्वी में ही एक हँड़िया में नमक बनाने का प्रयास किया। फलतः पुलिस की पिटाई और अपमान के शिकार हुए। फिर विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। १० अगस्त १६३० को उन्हें ६ माह की सजा हुई। सजा भोगकर लौटने पर वे चुप नहीं बैठे। बराबर सक्रिय रहे। सन् १६३५ में 'फेडरेशन एक्ट' का 'काला कानून' कह कर विरोध किया। सन् १६४२ को डी.आई. आर की दफा लगाकर पुनः बाँदा जेल भेजा गया। १५ अगस्त सन् १६४७ को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सामाजिक आन्दोलनों के दौरान सन् १६५८, ६४, ६६ में जेल गये।

'बौखल' की साहित्य साधना सन् १६३८ से प्रारंभ हुई। उन्होंने दोहों और पदों में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया। उनके शुभेच्छुओं ने उनकी रचनाओं के दो संग्रह प्रकाशित कराये हैं १. नारायण नैवेद्य (सन् १६७६) और २. नारायण अंजलि (सन् १६७६). नारायण नैवेद्य में कुल १३०४ पदों का संग्रह है जबकि 'नारायण अंजलि' में कुल ३३८५ दोहे हैं। उन पदों और दोहों की विषय सामग्री तथा भाषा-शैली और कूट आदि को देखकर कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि किसी ऐसे व्यक्ति ने लिखे हैं जो पाठशाला में शिक्षित नहीं हुआ।

'नारायण नैवेद्य' के पदों के सम्बन्ध में मैं एक लेख में प्रकाश डाल चुका हूँ। यहाँ मैं 'नारायण-अंजलि' में संग्रहित दोहों की संक्षिप्त चर्चा करूँगा। यहाँ नैवेद्य में भी उनकी देशभक्ति, सामाजिक चिन्तन, भक्ति भावना, आस्था, आदर्श, श्रृंगार, प्रकृति संयोग-वियोग, नीति-अनीति, सगुण-निर्गुण, भ्रष्टाचार, स्वार्थ धर्म-अधर्म, व्यक्तिवाद, पूँजीवाद, आध्यात्म दर्शन, पाखंड आदि विविध विषयों को प्रस्तुत किया गया है, जो उनके विस्तृत ज्ञान, सूक्ष्म दृष्टि, गहरी पकड़ और गंभीर जीवनानुभव के साक्षी हैं। 'नारायण अंजलि' में भी यही सब मिलेगा। एक ही स्थान पर इतना विशद विषय वैविध्य, भाषा तथा विचारों की गहनता चमत्कृत करने वाली है। यहाँ मैं कुछ उदाहरणों

बुन्देली लोक नाट्य-स्वाँग

- डॉ. के.एल. वर्मा 'बिन्दु'

तुलसीदास जू नें कई कै 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच तत्व रच अधम शरीरा'। ऐसोऊ कऔ जा सकत कै बुन्देली लोक साहित्य सोऊ पाँच ठौ विधायन खौं (लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोक नाट्य-स्वाँग और मुहावरे, कहावतें, पहेलियाँ) अपने में समेटे धरे यें। मनुष्य खौं पिरकिती कौ अनौखो खिलौना कऔ जात ईसें ऊकौ अटूट सम्बंध बनौ रात औ जी माटी से ऊ जनमतई ओइ माटी में मिल-मिलू जातै। धरती सें उपजे अन्न कौ खान-पान, हवा-पानू ऊखौ बना बनू कें बड़ो करत, ऊकी कदकाठी, रैन-सैन, आचार-विचार सोऊ ऊसेइये बनत। ककरीली पथरीली धरती सें अकखड़-फक्कड़पन फरकत, वेतवा, केन धसान की गति सें ऊके जीवन में रंग रस वरसत, जीवन जीबे की ललक-किलक किलकत रत। इतै की पार-टौरिअन की ऊँची उठान ऊकौ माथौ ऊँचौ उठाय रत्त। कऔ जात छत्रसाल जू को जनम कचर कचनेय की टौरिअन की गोद में भऔ तौ - कचर और कचनेर टौरियाँ उपजाये छत्रसाल, ईसें ऊँचौ सरा बनौ रऔ उनकौ भाल विसाल - "इनने कभऊँ दुसमन के आँगू अपनी सिर नई झुकाओ, कऔ जातै छतसाल खौं दुसमन दबत तौ ज्यों जीजा खौं सारौ, साँसऊ में महाराज छत्रसाल जू नें अपने बलबूते पै बुन्देलखण्ड की गरिमा महिमा ठंड की उरइयाँ सी उजागर करी ती। कओ जात -

इत जमुना उत नरमदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल सों लरन की, रई न काहू होंस।

बुन्देलखण्ड की धानी धरती ने आला, ऊदल, मलखान पैदा करे तौ रसवन्ती जियन जोइया-महती भावना नें बाल्मीकि, व्यास, तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर, ईसुरी, गंगाधर मैथिलीशरन गुप्त वृन्दावन लाल वर्मा आदि उपजाये जिनने माथौ ऊँचौ करबे में कौनऊ कसर कोर नई छोड़ी आये अपनी जनम भूमि की सेवा करवें में।

बुन्देलखण्ड की जनी मान्स, मुन्सेलू दोई के दोई पिरकिती के हास उल्लास के साथ अठखेलियाँ कर किलोल करत फिरत, बजें पिरकिती हँसत वे हँसतयें कभऊँ आफतन से डरात ये दरद के पिराते सें घबरात, मरमरात अपने सुक दुख खों गीतन में गाउन लगत, कैवे सुनवे की ललक लोक कथाओं में सुनाउन लगत, ओज औ वीरता कौ गुनगान, तियाग, पुरसारथ औ परउपकार, उतसरग खों लोक गाथाओं में गाऔ जात, बुद्धि विलास के ताने-बाने, कहावतें, मुहावरे, सूक्तियाँ औ पहेलियों में गूँथे जात। ऐसोई जबे मन बाबलो होके अन्तस की तरंग खों तरंगायत कर करू के काया की किरियाओं खों समेट समूट के अपनी बानी खों ससक्त प्रभाव डारवे वाई बना बनूँ के हावन-भावन कौ सहारौ लै लू के मचलन लगत जेई मचल की मचलन लोक नाट्य बुन्देली रावला कऔ जा सकत ये। जीमें संगीत की सुर लैरी अभिनय की झरझरार औ पाँवन की थिरकिन की त्रिवेनी बन कें पिरयाग कौ संगम सौ तीनों काम करन लगत। लोक नाट्य की जरें पिरकिती, समाज औ ऊमें रैवे वारे लोग मान्सन की जिन्दगानी कौ सबरौ को सबरो कतर व्योंत होत। काम कै बुन्देली लोक नाट्य में जन-जन की भावनायें जन-जन के दुआरा जन-जन के लाने पिरगट होतई। डॉ. नगेन्द्र जू ने कई सोऊ है कै लोकनाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से, लोक कथाओं, लोक विश्वासों और लोक तत्वों को समेट चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।

पिरकिती नटी की गोद जो मानव कौ आदिम पालना कऔ जात ईकी मिरदुलता कजंत की दार मुसकाउत ती ईकी भयंकर डरावनी दसा भौतइ डराउत सोऊ है, इन सब आफतन से पिन्ड छुड़बे काजै मानुष ने सबई देई देवतन की पूजा रचा, सुक खों पावै दुख खौ भगावे के लाने कायक किरियायें कर कैं करी। वेदपाल खन्ना जू के औ जो ऊहै "संसार के प्रायः सभी देशों में नाटक के आदि रूप का उदय किसी न किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के फलस्वरूप हुआ है। वीर पूजा की भावना अथवा धार्मिक आवेश जो कि प्रायः प्राणी मात्र के हृदय में किसी न किसी अंश में निहित रहता है, धीरे-धीरे नाटक का रूप धारण कर लेता है। यद्यपि अपने आदि रूप में यह नाटक बड़ा ही साधारण और अपरिमार्जित होता है।

ईसें कऔ जा सकत कै बुन्देली नाट्यों में उत्सवन कौ उल्लास, हुलास, उमंग कौ तरल रूप बन छन में छल, छल, छलकत। बुन्देली जनी-मान्सन की किलक-पुलक की किलकारी किलक किलक के किलकी ये, बुन्देली लोक नाट्यों में जिनें बन्देली मान्सन में बुन्देली स्वाँग, कऔ जातै, बुन्देली संसकिरती की तरलता, बेतवा की धारा सी वै परी, उनकी शीतलता जन मन खों सींच सींच भाव-विभोर करन लगी।

बुन्देली स्वांगन के प्रकार - बुन्देलखण्ड में रामलीला, औ रास के कैऊ स्वाँग दिखाये जात, मन्थरा को स्वाँग, नारे सुआटा कौ स्वाँग, माता पूजन कौ स्वाँग, भाव खेलत कौ स्वाँग, भये बदाये कौ स्वाँग, वियाव कौ स्वाँग-जुगिया-या बाबा, लुगया आदमी कौ स्वाँग, फकीर कौ स्वाँग, कुआ पूजत कौ स्वाँग, डाकू कौ स्वाँग, बरेदी कौ स्वाँग, घसारे कौ स्वाँग, धन्जुआ धोबी कौ स्वाँग, कलुआ मेंतर कौ स्वाँग, तिजुआ ढीमर कौ स्वाँग, नौटकी-कौ स्वाँग, भाड़ौ की नकलें, नटन की नकलें, बहुरूपिया कौ स्वाँग, लेबी कौ स्वाँग और कैऊ ऐसेई।

बुन्देलखण्ड में रामलीला औ किसन लीला औ सिरमन कुमार कौ स्वाँग सोऊ भरौ जात, मन्थरा कौ स्वाँग, कूवरी कौ स्वाँग, ठूँठा धोबी को स्वाँग, होलका को स्वाँग भरों जात। मन्थरा

कै स्वाँग में जनीमान्सन खों चेताव जात घर परवार बचावें के लाने कुबड़ी मन्थरा जिन वनिओ, सौतन की पीरा कैसी लम्पा घाँई कसकत, बाँस की फाँस की औसत, सो कूवरी जिन बनियो औ जरेली बुआ बनके भइयन की औलादन खों काँटे जिन बइऔ। मताई बाप की बुढ़ापे में निरजू भये पै कैसे सेवा करे चइये ईकी लाने इतै सिरमन कुमार कौ स्वाँग भरी जात।

१. भये बदाये कौ स्वाँग – सोरा संसकारन में तीन ठौ संस्कार जनम कौ, बिआव कौ, औ मौत कौ – अनोखे कये जात, जनम की बिरियाँ बुन्देलखण्ड में भये बदाय कौ स्वाँग खेलौ जात, पुरुस पिरधान समाज में ऊको जादा महत्त रैत, मौड़ा के जन्मन सास, ससुर, मताई, बाप बैने लौ भौतई हाली-फूली फिरतई औ बिटिया के जन्मतई ये सबरे मों फुलाये फिरत रत, स्वाँग में जेई भाव बताये जात, एक मान्स जनी बनो भीड़ में कत फिर "तुम धन ललना जाये सुकई सुक भोगिओ महराज" औ बैन लेव बतासा, लेव बतासा, सबखों सबई खें बायनों बाँटत फिरत, पै तनकई देर में जो पतो चलत कै मोड़ नई मोड़ी भई जेऊ ऊ जनी रोउन पीटन लगत, आग लगे लूगर लगे मोयती भागई फूट गये औ कुलच्छनों हो देय बतासा मोय लौटा देव मोरे बतासा, मोंय नई बाटने आपनों बायनों जो सुन सुन भीड़ हँस हँस के लोट-पोट हो जात।

२. बिआव कौ स्वाँग – जुगिया बाबा, बुन्देलखण्ड में बिआव की बेरा जौ स्वाँग खेलौ जात जिये जुगिया नौरंगा, या बाबा, अलग-अलग जाँगा इनन नावन सें जानौ जातै, पै होत सबरे एकई सौ है। विआवता घरै जब बरात लरका बिआवे के लाने अंत गाँव चली जातै ऊ रात खों जुगिया को खेल जनी मान्से सब सब रातन खेल खूलकें सब सब रातन जगत नचत रती औ अड़ौस-पड़ौस के मुन्सेलुअन खों जगाउत रती, जीसे घर की सुरच्छा तौ होतई बिआव के उछाव में हँसी मसकरी कर कें मनोरंजन करत रती । ईके खेलवे में होत का है कै बिहाव की पूरी की पूरी नकल करी जात एक ठौ मानगीन की चढ़ती रिसते की नौनी हुनगारू चंचल चपल, गदराई, गवरूली सी जनी खों दूला बनाऔ जातै औ लम्पावरन पतरी सी नोंनी सलौनी ककरी सी मोरी होरी सी झाँक कजरारी सी आँख बारी धनिया खौ दुलैन बनाओ जात जुगिया बनी जनी मुन्सेलू कौ बानों धरत, मुन्सेलू धोती कौ कछौटी कसी जातै ऊपर कुरता डटौ जात जा पै फेटा बाँद बूँद के मूँड़ में मुड़ायछौ सोऊ बादौ जात, पाउन में फिचऊ पनइयाँ पैरी जात केवला से कारी मूछैं ठांड़ी रंगी जात ओं करया में बैलन में झेला वादै जात पाउन में घुँघरू कसी जात हात में मूसर-बिलना लैकें मुन्सेलू रोबदार आवाज में फलाने ढिकानें, ढडकोले, घपू घसीटे नांव लै लै उछलत कूँदत, उचकत फँदकत नचत फिरत जनी मान्सन कौ झुन्ड औ झुन्ड सोउत मान्सन खौ जगाउत, गुलगुलाउत, गुद गुदाउत, विलना कौ ठूँसा मारत मूसर से गुलैचा देत, नाँय माँय मड़राउत फिरती। मुन्सेलू उसनीदें उठत, गिरत परत नाँय माँय दौरत फिरत। पै भइया जनीअन की इन हरकतन की ने कऊ बुरऔ नई मानत आँय बे तौ हँस हँस के आपुस में बतयात रत सबरेहाँय फिर फिरु कें फिर दूला दुलइया की बियाव रचाओ जातै, बिआव के जितने ई नेंगचारे होतै सबइ करे जात मटयावनो, सीदो झुवत, हरदी चढ़ै, टीका होय, चड़ाव चढ़ै, भावरें परे अन्त में विदाई लुक में सबई गीतन खों गाओ जातै, कोट नवे परवत नवे आजु कू जू कौ माथौ जब नवे जंग साजन आये। बुन्देली नारी की गैनन के लाने ललक चढ़ाव गीत में फट परत ये, मोई सीता कौ चढ़त चढ़ाव सौ दौडी कामना चाय नई लियाये इतनोई नई बिटिया की विदा की बेराँ कच्ची ईट बाबुल अगना न दइऔ बिटिया न दइयो परदेस मोरे लाल गीत में करुना करुन किरन्दन करन लगत औ नेगाचारी कर करूँ के जुगिया की विदाई हो जात। समधी एक दिना रुक जइयो, विलम जइयो हो ठैर जइयो चुनी-भुसी की खइयो समधी नेक विलम जइयो डॉ. सरोजनी रोहतगी ने अवध लोक साहित्य में सोउ ई की चर्चा करी, यही स्वांग अवधी में नकटौरा कहलाता है। नकटौरा विवाह के अवसर का एक प्रसिद्ध स्वाँग है। यह प्रत्येक जाति में प्रचलित है।

३. भाव खेलत कौ स्वाँग – बुन्देलखण्ड में भाव खेलत कौ स्वाँग उन ठगुअन खौ उगारे करत जो इतै की सूदी सादी जनी मान्सन खौं ठगत रत। बुन्देलखण्ड में अन्धविसवास की जरें भौतई गैरे लौ नीचट होके जमी धरी। जब कौन वियावता जनी कैं चार छै मइना मोड़ी-मोड़ा नई हौते तौ वैदन की दवाई कराई जातें, दुलइया विसूरत रत कर कर दवाई बैद हारे हमाय पिआ निरसई के मारे, ऊ सबई हकीकत जानत यें कै नई पाउत सरम के माँय। सास-ससुर परेसान होकें नावतन की झारफूक कराके उनकी सेवा में लग लगू जात गाँव कौ नावतौ उनकी मजबूरी कौ पूरौ कौ पूरौ फायदा उठाउत। उनै उल्लू बनाउतै कन लगत बैठक डारने आय कै बऊ पै की छायरी परी को परेशान कर रओ, औ घुल्ला कौ बुलाके उये देई देवता कौ भाव भरा दे। घुल्ला भाव भरे कौ स्वाँग कर करू कें सूदरे मान्सन कौ सोसन करन लगत, ऊपरी छाया है, गेवड़ौ की घटौइया परेसान कर रऔ मरई माता की सवारी काढ़ने आय तौ गोद भरे नई ऐसीई की ऐसेई रै जै। घबराने, झूठी आसा बादें घरइया हौत जोरकें ठाँड़े होंके विन्तवाई करन लगत, महराज फूल की जांगा पखुरा देव, सूने घर में सोहरे तो होय। घुल्ला हाली फूलौ कन लगत, किलके, काय मिलके, जरूरई किलके इत्ती चीजे होने परे तौ सबइ दुइये, नई देवै पै न हुइये।, पत्थर की जरे, बगदर के हाँड़, धुआँ की कोंपे, चील कौ मूत, विन कपास को सूत ल्यादें सबहुइयें। कजंत जे नई दै सकत तौ, बुकरा दारू पूजा रचा के लाने रचा दै घटौइया सान्त होजै घुल्ला सान्त होजै, घरइया घुल्ला की दूजी माँग मान लेतई। नचइया गाउत रत। तुम खोलला मर जाने, एक ललन के लाने। गड़ा तबजियों सब बदवाये कऊँ नई लगे ठिकाने, मन मौजी भौजी रई हँसमुख, करम करे मनमाने।

नचइयाँ नत चलो जात, सुनइया, हँसत रत, सुनत रत,
गुन्त वियोंत कर गुनत रइ मनई मन...।।

४. लुगया आदमी कौ स्वाँग - बुन्देली स्वाँगन में समाज की जैसी दसा-दिखात ये ऊसी की ऊसी सबरे स्वाँगन में बगरी धरी, लुगया स्वाँग में पाँच जनें, होतई, लुगया मान्स ऊकी जनी, डुकरा डुकइया ओ ऊकी-मोड़ी, जे सबई आदमी अई बन जात। लुगया आदमी मताई बाप औ बैन से जादा जनी खों चाउत, गरे कों कठला बनाये फिरत, उये कदाँ में बिठा बिटू में घुमाई उतै, डुकरा डुकइया ओ ऊकी-मोड़ी जे सबई आदमी अई बन जात। लुगया आदमी मताई बाप औ बैन से से जादाँ जनी खौ चाउत, गरे कों कठला बनाये फिरत, उये कदाँ में बिठा बिटू के घुमाई उतै, डुकरा डुकइया खौ छिरिया बुकरिया सौ डुरयाये रत और घर गिरस्ती कौ सबरौ सामान बाँद बूँद कै बैन की मुड़ी में लाँद देत। भूके पियासे मताई बाप कौनऊ जीन्स खावे खों माँगत तो ऊ उनै दुतिया दैतें, बैन खों खुन्स से खिसया देत, जै भइया जनी सों बेर बेट पुटया पुचकार के पूछत ये काय तुमे का खाने रसगुल्ला कै पेरा, आम कै केरा और पिआर से मुड़ी पै हात फेरन लगत। जो स्वाँग देख के दिखइया सोसन सूकत रत दुक के गड़ा में डूबत रत, कै पुछइया (स्वाँगों में एक पात्र होता है) लुगया खों डाँटत उपदेस देव देत गाउन लगत।

कल में चैती रे दगा बाज आऔ। .
जोरें हात मरद तिरिआ सें, तोउ नई दबत लुगाई।
बैन भनेजा कोई नई मानत, सारी आन बुलाई।
बाप मताई खों लातन मारत, तिरिया कंठ लगाई।

५. घसारे कौ स्वाँग - बुन्देलखण्ड में स्वाँग भरबे के लाने जबई कौनऊ मौका मिलत ये तबई खेली जाती। बिआउन में रावला नचौ जातै, रावला में स्वाँग भरे जातै। फागुन में होरी की विरियाँ राई नाच नचौ जातै, ईमें बेड़नी झूम-झूम कें नचत फागें गाउत ये -

ओ जू आज दिखानें नइयाँ, काँ गये मिन्त मिलनियाँ।
लम्बो-लम्बों कुरता पैरें, घुटरनदार परदनियाँ।
अड़िया कड़ी भसीली, पैरे, पाउन फिचऊ पनइयाँ।

कै इतने में घसारे कौ स्वाँग, बीच-बीच हँसी ठट्ठा करवे के लाने, नाँय-माँय मों लटकायें, मुड़ी पै हरे चारे के दो ठौ पूरा बाँदे, करया में एक जोइया से लत्ता की पतरी सी चार आँगुर चौरी तनी खों बाँदे, जोइया में हँसिया खोंसे, दोऊ हातन खों चौंरो करके लठिया से बाँदे घसारे कौ स्वाँग गाउत फिरत।

तै लौ हरे घाँस कौ गट्ठा।
एक मुठी कौ पूरा बाँदे, डेढ़ मुठी को गट्ठा।
गैल गली में ररियाँ कर रऔ, धरे मुड़ी पै गट्टा
चुनी भुसी की रोटी खाबे, पिओ पेट भर मट्ठा
पौदन पाछू हँसिया खोसें, जोरो बनौ दुपट्टा
मो गरीब पै ओ मालिक जिन करौ कोऊ रे ठट्ठा
नचत कौसिया नचवे वारी, गावे वारी जट्ठा।
कोंसिया दूनर हो हो नचत, नगड़िया गड़ गड़ गड़ा बजत।
झीका झींक झीक के झरत, रगरस वरसत सो दिखात।

इतेक में एक मुन्सेलू घसारे के पोंदन पै लटके हँसिया खों झटका से खैच देत, लत्ता की पट्टी औ जोइया नैचे डरी दिखात, इतै घसारो नँग धड़ंग, मौ चक्को घबरात। नाँय माँय भगत दिखात, घरन में घुसनें गैलगली ढूँढ़त, दुआरे दुआरे जातें पै आड़ी लठिया से बदे दोउ हात उये कऊ घुसन नईं देत। उतै हँसी ठट्ठा के माँय जनी मान्से नैची गरदन करें मौखों घूँघट की दुन्टन में दुकायें, दूनर हो हो लोट पोट होती में...।

६. डाकू कौ स्वाँग - बुन्देलखण्ड में डाकुअन कौ स्वाँग भरके समाज की बुरई असमान विवसथा खो दिखाओ जात। समाज ने जिये सुक से जिअन नई दऔ, ऊके खेत उनके नई रन दये, आपस की जलन ऊखो ठाँड़ी खेत बार दऔ। खरयान में धरी फसल की लाँक खों तिलगइया लगा कें होरी सों फूँक दऔ, असहाय बैन, बेटी दुलइया की इज्जत आवरू गैल गली में तार-तार कर दई। साऊ कारन ने अपनी करतूतन से जिन्दगी नरक बना बनू बरबाद कर दई, ऐसे मान्स मजबूरन बरजोरा बनके बागी बन जातई। वी मौका पाके बैरिअन खों ठिकाने लगा देत। कंजूस मक्खी चूस बिआजखोर खो, तेल में बूड़ी लत्ता की चिरी बाँद बूँद के जरा डारत औ सबई पाप की कमाई खों पुटरिया में बाँद के लै जातई औ धरम-करम में कामन में, गरीबन में बाँद बूँद देत। दिनन कों फेर फिरत डाकू बेड़नी के फेर में परके, पकरौ जात् उये बुरये करमन की सजा मिल जात - बुन्देली गीत गाऔ जात।

पंचमसींग निवाई बारे डाकू हो गये हैं दइया,
इनके संगे कैऊ भइया।
पैले करी पुलिस में काम, लऔ न कभहऊँ एक छिदाम।
दबंग गाँव की भावी जू खों, करन लगो तौ बदनाम।
लै बन्दूक डाँग में घुस गये, भावी को कर काम तमाम।
हो रई सबरे दइया दइया...

पुछइया कतरत ये धन देय तो धरम देय, बल देय तौ चरित देय, मन देय तौ पिरेम देय, औ सकती देय तौ निभाय देय...
नई तौ ऐसो ऊ हुइये, होत रऔ, औ होत रै...।

७. सास बहू कौ स्वाँग - बुन्देली स्वाँगन में सास, बऊ कौ स्वाँग लोक मनोरंजन करत रात। रात-रात भर जग-जगू के जनी-मान्से जो स्वाँग देख-देख के अपनौ मन मसोस मसोस कें रै-रै जाती ये दुखयारी दुलहनें नौनी सास कों तरज तई, सासें सोऊ साँसे रोक-रोक के मनखाँ मसूस-मसूस कें मनई मन विसूरती में कै कऊँ न कऊँ मोई गलती तौ बउअन खों दुख देवें में, सुकसे तौ जिअन नइ देतीं कुलच्छनें सासें। स्वाँग में कऔ जात सासें जैसो विटिअन खों चाउती ऊसी बहुअन खों नई चाउती आयें ईसे घर-घर में रोजई टन्चो होत रत। विचारों लरका नाय कुआ माय खाई-दोई जागा मौत

के मौं में फसो राय की की कये की की नई कयें ऐसई सोसन में सूक छुआरो हो गयो, ठठेरी सौ। काय के दो पाटन के बीचों बीच कछू सावित नई बचत आय। ननद बाई की तौ का कानें, ननद तौ रैनई की भली नई होत, सौ वा चुलका चुलक-चुलक, बुलक-बुलक, आगी में घी डारत रत, नचइया गउत -

सास बैंचे धनिया ननद विचवावे
चोरी कौ अनुआ बऊ खों लगावे।
लरका से चुगली कर रोजई पिटवावे
अदबूड़ी होकें लरकें, उसरा में सुआवें।

पै भइया स्वाँग में कऔ जाते समय को फेर फिरतन नैकऊ देर नई लगत आय, आधान से भये, बिन्नू के बिन्नू ओ बऊ के सो नोने सौ नौने लरका हो परत। सास सौसन में सूकत विसूरत, पै लरका हालौ फूलौ नई समात, ऊ अपनी जनी खों लैंकै अलग रन लगत, ललन खौ पलना में पारपूर के गाउन लगत-

सास बैचे हरदी, ननद बिचवावें,
हम ठाँड़े देखें बलम बेचें धनियाँ।
सास खो ल्याय धुतिया, ननद खों ल्याय लाँगा।
हमखों ल्याय राजा रंग उचटू चुनरिया।
सास खो ल्याय लडुआ, ननद खों ल्याय पेरा,
मो खों ल्याय राजा सूके गुर की डिगरिया।
सास खो ल्याय लूगर, ननद खो ल्याय डेंगुर
ललन भये बलम ल्याय सोने की पुंगरिया।

८. फकीर कौ स्वाँग - फकीर कौ स्वाँग समाज के सबई रखवारे लोग मान्सन की दोगलापन खौ बताउत, उनकी करनी औ करनी कौ तकता तकाउतै। ई स्वाँग में सबई लोग होत उनई में से एक जने रंडी बन जात औ अपनी कोठा चलाउत, नचनचू के मन बैलाउत, भइया होत का है कै एक बड़े बड़े सेत पखा रखाये फकीर-ए-बाबाजू, अलख निरंजन खौ जगाउत चमीटा चटकाउत, खड़ाऊँ खड़काउत, बूड़ी-हाड़ी हिलाउत रंडी की साँकर खड़खड़ाउत हरँई से टेरन लगत, पिरान मुनइँयाँ आ गये, तुमाये गुइयाँ। रंडी के बेतौ हते जाने पैचाने गिराक, सो ऊने उनखों तुरतई भीतर कर लओ औ किवारन खों लगा के बेड़ौ सोऊ लगा लऔ तनकई देर भई कै गाँव कौ चौकीदार रात भीजंत देखदाख कें अपनी दार चुराबे की जुगत में कुन्डी खटखटा देत। खटखट की आवाज सुनकें बाबा जू के होस उड़ जात, ऊ तौ रंडी के पाउन में गिर गिरू कें गिगयान लगत, मोय बचा लो, मोय बचा लो, बा हती भौतई चतुर चालाक, ऊनें बाबा जू खौं जोरों पैरा के धुतिया उड़ा दई, औ चतइया पै मूँग दरबे के लाने बैठा दऔ, भइया चौकीदार के भीतर आउतन बाबा जू नें नैचौं घूँघट-डार डूर के सेंत पखा ढाँक-ढूँक कें गारियन खों गा-गा के अर्राटे पार दये, चतइया चलन लगी, मूँग दरन लगी, गारी-खुलन लगीं -

जौ देखौ किसमत की खेल, पढ़े फारसी बेचें तेल,
पूजा पाठ लगाके लूंगर दरें दार, दये नरक ढकेल।

उतै होत का है कै चौकीदार रंगरेलियन खौं तियारई होत कै फिरकूँ साँकर बजन लगत, सौ ऊ तौ चौकीदार खौं घुटरू के भार औदौ करकें ऊपर से एक पिछौरा से ढाँक देत औ ऊपर तेल को बरत दिया धरकें दियल बना देतै। अबकी बेर सिपाई जू आये ते सो वे सोई बरत आगिन में हात सेकँन चाउत ते कै उतै फिर कोई खटखट करन लगत सो वा ऊ सिपाई खौ धुतिया पैरा, सूपा पकरा के नाँज फटकवे दे देत, सिपाई जू गा गा के सूपा फटकन लगत, अब की बेटा खुदई दरोगा जू आए ते सो बेई गंगा जू में डुबकी लगावे की जुगत करनई चाउत कै फिर सांकर बज उठी, दरौगा जू सोउ डरान लगै बचवे खों गिगियान लगे, उनै करों का दरोगा जू खों सन्डास में बन्द कर मसके साकर चढ़ा दई। अबकी बेरा रात की गसत पै शाहजादा खुदई हतै बै गाँव गली की खैर लेत फिर रये तै जौ तमासौ देख दाख कें उननें रन्डी खों खूबई खरी खोटी सुनाई औ सन्डास जाबै की कै दई, भइया कैवे की देर भई के डरन के माय रंडी बिजना सी कपन लगी, औ ऊने दरोगा जू खों बायरे कर के सबई ढोंगियन की पोल खोलकें धर दई। सबके सब अपनी करनी पै पछता पछता, गिगया कें माफी माँगन लगे, शाहजादा ने सबखौं दण्ड दैकै भगा भगू दओ। रंडी खौं जेल में डरवा दओ। गवइया गाउन लगौ .... नइया काऊ से पिरीत, जग जाहर है ऐसी रीत।

पइसा ऊकौ पति-परमेसुर, ऊ तौ सबके धन की मीत।
ईसें चेत जाऔ नर पियारे, अब जिन करौ नई अनरीत।

९. बरेदी कौ स्वाँग - ई स्वाँग में किसानन की जिन्दगानी खों बताओ जात, गाउन के किसान, उनके खेत खरयान, ढोर चारुअन की थान, जुनई बाजरा गेऊँ औ धान, गइयाँ बिछिया औ चरबारों जुआन सबई की गौर गथन्ना कई जात ई स्वांग में, ईके लाने बरेदी बनावे के गाँव कौ निठल्ला, ठलुआ, सेड मुसन्डा, कलुआ खों पकर के बरेदी बनाओ जात ऊ भुन्सारे सें घर घर के ढोर चारुआ दिन डूबौ लौ चरा चरू के घरघर पौंचा देत स्वाँग बनौ बरेदी भीड़ में लोगन ताँय कत फिरत जो पड़ा, जो साँड औ रंगीले छैल छबीले खौ खैला में कै पुकारत रत। भीड़ हँसत रत के जनी मानसन तामें मोटी मुटल्लू जनी खों भैंसिया नई नवेली दुलइया खों कलुरिया कै कै कैं मन की खुन्स ललक काढ़त हँसी करत रत, गीत चल रत-

अरे जेई आय जेई आय, मोरी भूरी भैंसिया जेई आय।
मोरी कल्लू कलुरिया जेई आय, कल्लू की बछिया जेई आय।
मोरौ डूँड़ौ बैलवा जोऊ आय, मोरी पड़ई कौ वच्छा जोउ आय।
अन बिआई कलुरिया जेई आय। जेई आय।

जाति परक स्वाँग - बुन्देलखण्ड के सबई जात बिरादरी के मान्स बसत। इनके जिअन जोइया की दुरदसा, उनकी रैन-सैन, काम-काज, पेसा की कठिन दसा खौं स्वाँगन में दरसाव जात, जीसें

समाज उनके लानें नीनीं सोच-सोच के, दुख तकलीफ की बिरियाँ सुक की हमदरदी की दो चार बुँदियाँ बरसा देत ती उनखों साजो लगन लगे कै हम सोउ मान्स आयें -

१०. धोबिअन कौ स्वाँग - ई स्वाँग में धोबिअन के काम-काज खों उनकी दुरदसा खौं, उनकी गरीबी खौं, उनके पैसा की अहमिअत खों दरसाओं जात। धोबी ठिठुरती ठंड में तला की पार पै उन्ना धोउत सेई राम सेई करत दिखात ती जनी गदइया पै उन्नन की गठइया लादै गाउत जात।

कउआ के बोले अरे मऊआ भुँजें, भरदुपरे लटन की मार।
दिन डूबे अरे डुबरी चढ़ी, भुनसारें मची ज्यों नार।
एक की जाँगा अरे दो दो भये मोड़ी मोड़न परी गिड़वार
काऊ ये कठौला अरे दो दो दये, काऊ ये दये दो चार।
घर कौ बूढ़ौ अरे मिलया गओ, हँड़िया लै गओ तला की पार।

११. ढीमरों कौ स्वाँग - ई स्वाँग में ढीमर बनो स्वाँग फटे पुराने पिछौरा खों जाल बना बनू के भीर में नाय-माँय फेंकत फिरत, औ ऊयै समेट समूट कै, हँसी ठट्ठा के लानें, दुबरे पतरे मान्स तय कन लगत सोंन्ला फँस गओ, हट्टे-कट्टे खों कतला, रोउआ फँस गओ हुनगारू मोड़ा खौ कत मंगूरौ फँस गओ मंगूरा फस गओ, दुवरी-पतरी खपच्ची जनी खों खड्डिया, सोरा साल की गदरई जनी खों लोचिया, आदी अधेर खों चड़ार और भोतऊँ हुनगारू साँवरी सलोनी गोला मी की के लाने सिन्नी औ सिंगी कत हँसाउत रत इनन को अरथ जो जानत ये वोऊ साँचौ रस लूट-लूट लोट पोट होकै, निरस सोऊ सरस होकैं हसत रत, गीत चलत रत -

गई गई रे करीदा खान अकेली मोड़ी ढिमरा की...
ऊखौ पकरकें लै गये गबरू जुआन।...अकेली...
ꝏ ꝏ
मेला में ढिमरिया मौजे करे, मौजे करे, अरे मौजें करे।
एक एक सिगाये के दो-दो करे, बेला में ढिमरिआ

१२. कोरी को स्वाँग - कोरी के सूदैपन खों औ कोरिन में अनारीपन खो ई स्वाँग में बताओ जात। कोरी वीदो काँस में औ लये सरइया हात में, सरईया लये पैऊ निनुर नई पाउत। स्वाँग गीत गाउत-

बीदी काँस से निनुरत नइयाँ,
हातन सरइया नेंक सरकत नइयाँ
डूबौ जात नदिया की धारन, पकरवे वारो कोऊ पकरत नईयाँ।
ꝏ ꝏ
राँटा करै न पौनी, देखत नीनी
अदचुरी दार चुरा कैं धर दई
ओई पै कर दई रौनी, देखत की नीनी
खिसया खसम सें रोजई लर रई, बनवादें करदौनी
देखत की नीनी रौंटा करै न पोनी...।

१३. कलुआ मेंतर कौ स्वाँग - ई स्वाँग में कारौ कलूटौ मान्स कलुआ मेंतर झाड़ू से झारत फिरत औ गाउत जात -

अरो मोरी कलुआ मैतर आव नगर में कलुआ मैतर आव रे
अमावस पूनै रोटी कौ लैवौ, हरदम काय खों आव रे।
जूठन जाँठन घरई खों लै गओ, दुआरे कऊँ नई खाव रे।
जो कऊँ कलुआ दुआरे पै खावे, मरकें नोन मँजाव रे।
अँगला बंगला झारत फिरत रओ, खोरन खोरन धाव रे।

१४. नौटंकी - गाँवन-गाँवन सजवे संवरवे कौ सामान लाद लूद कें नौटंकी वारे नौटकी की खेल, राजा हरीचन्द, मोरधुज, पूरनमल, रूपवसंत कौ खेल खेलत फिरत। गाँव की सादी बिआउन में तो निच्चै कै नौट की होतई। खेल जमावे के लाने पैले भाँड़न की नकलें होती हैं, जीपे गाओ जात -

माई तोरे मँड़पै अँदरा पुकारे,
देव लुगाई घर जाँव हो माई तोरी लागी किवरियाँ।

ई के पिछारू नौटंकी खेले जात औ आखिर में जात-जात आला गाओ जात जीमें हँसी के फुव्वारे छूटत। लोग मान्स हँसत हँसत घरे चले जात -

अरे हाल सुनौ एक नारी कौ,
तीन कुआ कों पानी पी गई चौथी कुइया खारी को।
सास ससुर कौ सब धन खा गई, सबरौ पइसा उधारी कौ।
नरदा ऊपर मूतन बैठी, पुल बै गओ निवारी को।
अरे हाल सुनो एक नारी को, तीन कुआ कौ पानी पी गई,
चौथी कुइया खारी कौ।

१५. भाँड़ौ की नकलैं - बुन्देलखण्ड में भये बदाये की बिरिआँ सादी बिआव की बेराँ, भाँड़ घर-घर जाकें, ढोलक ठनकाउत मजीरा टुनकाउत, हास-परिहास, करत नकलैं करत दिखात, इनाम पावे कें काजै साँवरी सलौनी कजरोटी-कजरारे नैननवारी, दुलइया के लानें गाउत - काय खों री कारे ढिग गैरे कजरा दये,
औ बिन्नू बूँदा दमकाउत लिलार।
सास ससुर तोरे अँदरा धरे है, री,
लूला लँगड़ा जनम के गँवार।
बलम तोरौ बारे कौ हिजरा, बीते तोय, साउन, भादों, क्वाँर,
अवधी में सोऊ इन भावन खों स्वाँग कओ जात,
किहि पै दिहिउ ढे पारदार कजरा, सास तोरी अंदरी ससुर तोर लगड़ा।
तू अलबेली भतार तोर हिजड़ा, किहि पै दिये दिपार दार कजरा।

१६. नटों की नकलैं - नटों की नकलन में लोक कौ मनोरंजन तौ होतई ये पै इनन में इतै तियागी वीरन की वीरता कौ बखान करौ जात, अमर सुतंतासेनानी बेलाताल के राजा पारीछत जू की बीरता कौ साकौ, गाओ जात -
मऊआ भूँजें खपइया में, पारीछत ने घमकें दुपइया में।
गोंऊअन कीं रोटी औ मारूँ भटा, पारीछत के मारें कढ़ आये गटा।
भगे फिरंगी महुबे खों जाय, पारीछत राजा खदेरत जाँय।।

१७. विविध स्वाँग - बुन्देली स्वांगन खों समाज को तकता कओ जा सकत। इतै जुआरियन कौ स्वाँग, शराबियन कौ स्वाँग, ठगन कौ स्वाँग, बहुरूपियन कौ स्वाँग, सती लुगाई कौ स्वाँग, विदवा वैरागन कौ स्वाँग, गाँवन-गाँवन की बदली दसा कौ स्वाँग, परवार कम करवे को स्वाँग, मैगाई डायन कौ स्वाँग, गोरे तन करिया मन वारे नेतन कौ स्वाँग, नये नये विजूकन कौ स्वाँग... आदि।

बुन्देलखण्ड में खेले जावे वारे स्वाँगन की वेस-भूषा के लाने फटे-पुराने उन्ना, लाँगा, जोरे, लट्ठा की पियाजी रंग से रँगी धुतियाँ, बजवे के लानै नगड़िया, नगाड़ौ, तबला, सारंगी, झींका, हारमोनियाँ और डलिया-टिपरिया, सूपा, पन्नी, खजरी, बाँस, बाँस की झाड़ू, बेलन के झैला, माटी के वैला, डबुलिया जैसों स्वाँग ऊसो गानौ गुरियन कौ जे सबइ कामें आउत। कैबे कौ मतलब जौ आय जो मिलौ ऊसें स्वाग रच दओ।

आखिर में ऊपर बताये स्वाँगन के लाने खुदई तराँ-तराँ के अनोखे हैरानी करवे वाले अनुभव भरे धरे। सन् १९५९ सें पैलाँ अबै लौ गाँवन-गाँवन, घर-घर, गैल गली सँवरे हाँर खुदई सब सब रातन सब जगू के सुनो गुनो औ तानो बानो बुनो ऊको फल जो मिलौ। जीसे कभऊँ नई भुलावे वारे उन गाँवन के कलाकारन खों कभऊँ नई भुला सकत जो अपने फन के पृथ्वीराज, राजकपूर, राजकुमार, दिलीप कुमार से कम नइयाँ। अपनेई समाज में, नचबे वारी कोंसिया बेड़नी की उमड़ घुमड़ी सी फिरकी बैजन्तीमाला औ हेमामालिनी से कितऊँ नैकऊ हल्की, फीकी नइयाँ उनसई नई बीसइय कई जा सकत, निवारी के रावला कलाकारन में कैंचू बरेठा, चौदे काछी, गंगेसाद कोरी, दरऊ साव, बुद्दे साव, झगडू साव, कुंजी नाऊ, बलवान सिंह जू दाऊ, गजाधर दाँगी, छक्की नन्ना, कोंसिया बेड़नी, रमिया, पुनियाँ नचनारी, मऊरानीपुर के जट्टे के रावला कलाकारन जट्टे धोबी, लटोरे पैलवान, किसन मास्टर, प्यारे जू नर्तक आज लौ पिरानन में रचे बसे, जौ बिसराये नइँ बिसरत उनके स्वांगन कौ आकार पिरकार आँख में झूलत रत, कुंजी नाऊ कौ पलीता दिखावौ तौ अनोखो ऊ खेल होत तौ जितॉय कोसिया नचत नचत फिरकी खा खा दूनर होत ती। उताँय उताँय कुंजी के पलीता ऊके मौं में उजयारी करें रात तै, ऊ बेड़नी से जाँदा नचतती पै वारे गबरू जुवान नैक नई थकत तौ तबई तौ गावन गावन में जन जन कौ मन कौसिया की एक झलक खौं तरसत तौ। झलक पा मन में रंग रस बरसत तौ, गीत गूँजत रत तो - राते परदेसी संग सोई, छोड़ गओ निरमोई।

- १६३, कला निकेतन, नीरजा नगर,
जे.के. रोड, भोपाल (म.प्र.)

बुँदेलखण्ड की शिक्षाप्रद लोकोक्तियाँ

- हरगोविन्द तिवारी

वैभवशाली बुन्देलखण्ड में यत्र-तत्र-सर्वत्र ज्योतिर्मयी लोक साहित्य का भारी भंडार भरा हुआ है। यदाकदा लोगों की जुबान से इसका प्रस्फुटन भी होता रहता है। जिसमें अनेकानेक लोकोक्तियों का भी अपना अलग स्थान देखने को मिलता है। जिसे अपने दायरे में लेना तो असंभव ही प्रतीत होता है। फिर भी इसी प्रयास में प्रस्तुत हैं यहाँ बुन्देलखण्ड की शिक्षाप्रद लोकोक्तियाँ -

साँची बात सदुल्ला काबै-सबके मन सैं उतरौ राबै।
भावार्थ - सच बोलने वाला व्यक्ति सभी को खटकता है।

चुगलखोर चुगली करै, घर-घर पाँव परत फिरै।
भावार्थ - चुगली करने वाले व्यक्ति को जगह-जगह अपमानित होना पड़ता है।

ब्याज घूंस उर दच्छना, पाछूँ मिले कुच्छ ना।
भावार्थ - ब्याज, रिश्वत और दान दक्षिणा में प्राप्त होने वाला धन किसी के पास ठहरता नहीं है।

रांड़-सांड़ उर अरना भैंसा, बिगरैं होये तौ ऐंसा-वैंसा।
भावार्थ - बिधवा स्त्री, गर्रा बैल और पड़ा बिगड़ने पर विचित्र स्थिति निर्मित होती है।

वारे बाल मूँछ उर नारी, सब वारे सैंई जात संवारी।
भावार्थ - मूँछों के बाल, पत्नि और संतान इत्यादि सब को प्रारंभ से ही काबू में रखना चाहिये।

ठण्डौ नहाय उर तातौ खा, तौ ताकैं वैद कबहूँ नैं जाय।
भावार्थ - ठण्डे पानी से स्नान और गरम भोजन करने वाला व्यक्ति हमेशा स्वस्थ्य रहता है।

आई ताप जब खीरा पाई उर दौर भुटिया में जा बैठी।
जैसई मिली भुजी कदुआ की तुरतंई ताप झरझरा उठी।
भावार्थ - ककड़ी, मक्के की भुट्टियाँ और कद्दू के लगातार खाने से तत्काल ज्वर आ जाता है।

राबै जांकौ राजा नंगे पाँव, पिरजा पिट सरकौं बाके गाँव।
भावार्थ - यह कि जहाँ का राजा नंगे पाँव चलने वाला हो वहाँ की प्रजा भी पेट के बल चलने वाली होती है।

एक राम हते एक रावन्ना- जे छत्री बे वामन्ना
इनकी उनने नार हरी-इनने उनकी जान हरी।
येई बात कौ बातन्ना-तुलसी लिख दई पोथन्ना।
भावार्थ - राम एक क्षत्री थे और रावण एक ब्राह्मण था। राम की पत्नी का रावण ने अपहरण कर लिया तो राम ने रावण को मार डाला। इसी का विस्तृत वर्णन कर तुलसीदास ने एक बहुत ही बड़ा ग्रंथ लिख दिया।

बरसैं मेघ स्वांत बिसांत, चलै नें रांटा बजै नैं तांत।
भावार्थ - स्वांति नक्षत्र में वर्षा होने से कपास की पैदावार नहीं होती।

- शाहगढ़, जिला सागर (म.प्र.)

मंजिल की तलाश में भटकता बुन्देलखण्ड

- डॉ. लोकेन्द्र सिंह गुर्जर

किसे नहीं मालूम बुन्देलखण्ड का गौरवशाली, सौरभशाली पराक्रमों से अविभूत इतिहास? क्वचित् केन्द्र सरकार और प्रान्तीय सरकारों में बैठे देश के रहनुमा नेताओं को या देश की नीतियों और सोचों को निर्धारण करने वाले देश के आई.ए.एस. अधिकारी जिनके परिवारों ने स्वतंत्रता के आन्दोलन की धधकती आग में अपना कुछ खोया नहीं हैं आज मात्र वे राजसत्ता के हितचिन्तन में रत रहकर, यथार्थता की मूलभूत आवश्यकताओं को जानबूझ कर अनदेखा किये जा रहे हैं। देश की स्वतंत्रता के पश्चात् प्राथमिकता के आधार पर जो पुनीत कार्य होना चाहिए था वो हुए ही नहीं। न सही बहुत पीछे से लेकिन सन् १८५७ ई. से लेकर सन् १९४७ ई. तक देश के जो बलिदानी एवं स्वतंत्रता सेनानी गुमनाम मर गये। जिनके परिवार दाने-दाने को मोहताज हो गये, जिनकी अस्मितायें दाव पर लग गई और वे किन किन भीषण कष्टों से जूझ कर मर गये या मर रहे हैं। किसी ने पूछा, उनकी खोज खबर ली, कोई गहन सर्वेक्षण कराया? नहीं। सांसे सो फाँकैं करैं, लावर लड्डू खाय। कवचित राजनेताओं और केन्द्र की मुख्य आसन्दियों पर कुंडली मारे बैठे दक्षिण भारत और बंगाल के आइ.ई.एस. उच्च सचिव पद सबके सब अपने हित चिन्तन में लिप्त देश की पीड़ा को एक महान जंजाल समझ कर कचरे की टोकरी में फेंक चुके हैं। इनका सम्बन्ध न जनकवि की भावना से न इतिहासकार की भावना से होता ही नहीं है। जमाना गया। काहे के राष्ट्रकवि काहे के इतिहासकार? मानव संसाधन मंत्रालय हो या देश की एन.सी.ई.आर.टी.। सबको अपने पद और पइसा की पड़ी है भाड़ में जाये जनता।

मैं क्या समूचा बुन्देलखण्ड हतप्रभ है, हृदय से दुखी है कि सन् १८५७ ई. से लेकर सन् १९४७ ई. तक का ही इतिहास, देश के अन्य क्षेत्रों को तुलना में तुला पर रख लिया जाय तो स्वयं ही निर्णय हो जाएगा कि बुन्देलखण्ड को पृथक् राज्य पाने का अधिकार है। इतिहास के कैसे-कैसे क्रूर निर्णय झेलने पड़ रहे हैं बुन्देलखण्ड को। आज हमें पृथक बुन्देलखण्ड राज्य के लिये भीख मांगना पड़ रही है। केन्द्र सरकार से और चिरौरिया करना पड़ रही है, उ.प्र. और म.प्र. की उन सरकारों के उन मुखियाओं से जिनका १८५७ या १९४७ की लड़ाइयों से दूर का भी सम्बंध नहीं हैं जिनके पाँव न फटी बिबाई, वे का जाने पीर पराई। देश के वे नेता जिन्होंने देश की प्रथम बाग डोर सम्हाली उनकी क्रूर कूटनीति हमें हमारे बलिदानों का सम्मान परितोषक इस प्रकार देकर गये कि हमारी प्रान्तीय विन्ध्यप्रदेश सरकार को तोड़कर बुन्देलखण्ड को दो भागों में विभाजित कर गये। कारण तो बताना ही चाहिये क्यों? आखिर ऐसे दुखद निर्णय क्यों? हमने माना देश की स्वतंत्रता में उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता, तो यह भी सत्य है कि बुन्देलखण्ड के बलिदानों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती।

केन्द्र सरकार, छत्तीसगढ़ बना गईं, उत्तरांचल और झारखण्ड बना गई। हरियाणा बना दिया और अब आंध्र में तैलंगाना बनाना ही है, और बना ही देना चाहिए। बुन्देलखण्ड को भी प्राथमिकता के आधार पर पृथक राज्य निर्माण का सम्मान प्राप्त होना चाहिये। हमारी विवशता है मुंह खोलना, हमारे साथ खिलवाड़ किया जा रहा है, हमारे बलिदानों की उपेक्षा कर उपहास उड़ाया जा रहा है। काश! केन्द्र सरकार के समक्ष नेता साहवान एक बार भी एक पल को पलक उठा कर देखते तो उन्हें दिखता बुन्देलखण्ड कोई स्वाभिमान की रक्षा - ये चंदेरी के महाराजा शिशुपाल कलचुरी का शिरोच्छेदन। भगवान श्री कृष्ण का सुदर्शन चक्र प्रहार। ईसा की प्रथम शताब्दी में युगपुरुष कनिष्क की सत्ता का सूबेदार, वनस्पर जिसके वंशज ही हैं बनाफर, आल्हा-ऊदल वावन युद्ध जगनिक द्वारा उद्धृत। उन्हें दिखते दिल्ली सत्ता के पृथ्वीराज तृतीय के महोबा पर भीषण आक्रमण और रक्त स्नान करते बुन्देली वीर। उन्हें दिखते अकबर और औरंगजेब, कुतुबुद्दीन ऐबक और जवाहर सिंह जाट के फौजी अभियान और अपने मान सम्मान की रक्षा से जूझते प्राणोत्सर्ग करते बुन्देलखण्ड के स्वाभिमानी योद्धा और वीरांगनायें नारियों, उन्हें दिखते बुन्देलखण्ड के महावीर चम्पतराय और उनके पुत्र महावीर छत्रसाल। उन्हें दिखते १७वीं-१८वीं शताब्दियों में पड़े भीषण अकाल चार छै। इन अकालों से जूझते और वीर महाराणा प्रताप की तरह घास की रोटियाँ खाते, पेड़-पत्तों को नोंचते खाते, बुन्देलखण्ड के जीवन जिजीविषा के लोग। कहीं-कहीं अपने बच्चों को भी खा लेने वाले वीभत्स दृश्य। काश इतनी भीषण दुर्दान्त स्थितियों से भयाक्रान्त होकर इन्हें नहीं देखना चाहते तो, देख लेते दानवीर ऋषि दधीचि को, ऋषि अगस्त को। किसी को तो देख लेते। नहीं देखना, पीछे मुड़कर तो देख लेते वीर महारानी अवन्तीबाई को, मण्डला की दुर्गावती को, १८५७ की विश्व की एकल रणबाँकुरी वीरांगना लक्ष्मीबाई की तलवार की चमक-उनका बलिदान। इतनी जल्दी स्वार्थ की काली पट्टी बाँध ली आँखों पर। सन् १९४७ में ६७ महिलायें हैं, बुन्देलखण्ड की जिन्होंने भीषण यातनाओं का सामना किया है, जेलें भरी हैं, घर मकान खोये हैं।

मूलभूत समस्यायें तो अभी और भी तमाम हैं लेकिन हमारे सामने हमारी मूलभूत आवश्यकता है, 'पृथक बुन्देलखण्ड राज्य'। सन् १९४७ के पश्चात् विन्ध्य प्रदेश के विघटन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के लोग कहिये नेता काँग्रेसी की चकाचौंध में पथ भ्रष्ट हो गये कहिये उसी में खा गये और वे बुन्देलखण्ड को भूल गये। आज भी काँग्रेस के पश्चात् जनसंघ कहिये भारतीय जनता पार्टी, समाजवादी पार्टी या बहुजन समाजवादी पार्टी अपना-अपना वर्चस्व का युद्ध लड़ रही है, बुन्देलखण्ड के लोग लालच की झूठी पत्तल चाटने में लगे हैं वे अपने घर-परिवार को भूल कर सत्ता का भोग कर रहे हैं विलासिता का जीवन जीकर भिस्ती का सिक्का चलाने में मशगूल

है। हम उन्हें धिक्कारते तो नहीं है, लेकिन ध्यान दिलाते हैं कि बुन्देलखण्ड की माटी उनकी अपनी जन्मभूमि है उसके प्रति भी उनका कोई धर्म बनता है, कर्म बनता है।

सन् १९७४ ई. में बुन्देलखण्ड में एक बुन्देली लाल सपूत परिशेष शंकर लाल जी मेहरोत्रा ने अपने बुन्देलखण्ड की उपेक्षा और पीड़ा को समझा, उन्होंने पृथक बुन्देलखण्ड राज्य निर्माण हेतु एक विचार को जन्म दिया। उन्होंने एक संस्था का गठन किया 'बुन्देलखण्ड मुक्ति मोर्चा'। इसका रजिस्ट्रेशन चुनाव आयोग में हैं मेहरोत्रा साहब ने अपने रहते अपने पुण्य उद्देश्य की समूचे बुन्देलखण्ड में फैलाया। बुन्देलखण्ड मुक्ति मोर्चा के अभियान में उस अभिमन्यु का बलिदान हो गया। मोर्चा श्रीहीनता को प्राप्त हो गया और अब टिमटिमाते दिये की तरह अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा है।

आज ऐसा नहीं है कि बुन्देलखण्ड वीरों से खाली हो लेकिन समझ नहीं आता कि लोग इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अपना उपेक्षित भाव क्यों दिखला रहे हैं? क्या इसे ही वास्तविकता माना जाय कि बुन्देलखण्ड वासी भी अब देश के अन्य लोगों की तरह सुविधा भोगी और काहिल हो गये हैं, हमारी युवा पीढ़ी उद्देश्यहीन गप्प-सड़ाकों और चन्द समय की निठल्लेबाजी को ही जीवन का आनन्द समझ बैठी है। उसे यह आभास नहीं होता कि आने वाले हमारे बच्चों का भविष्य क्या होगा? क्या वे आने वाली पीढ़ियों को भी इस हालत में ही देखते रहना चाहते हैं कि वे दूसरों के सामने भीख मांगने को हाथ फैलाते रहे और दुतकारे जाते रहे। अपने लिये न सही ये। अपने बच्चों के भविष्य के लिए तो पृथक बुन्देलखण्ड राज्य निर्माण की लड़ाई में उठ खड़े हों। विश्व का इतिहास युवाओं ने रचा है सत्तायें पलटी हैं। मैं जानता हूँ कि अगर बुन्देलखण्ड का युवा सारे दल-दलदल भूलकर एकवार बुन्देलखण्ड की लड़ाई में गांधीवादी सिद्धान्त से सड़क पर उतर आये तो कौन रोक सकता है, पृथक राज्य निर्माण। युवाओं को ही त्याग करना पड़ेगा एक होना होगा, अपनी शक्ति दिखाना होगी। मैं सादर आव्हान करता हूँ वे उठे, वे जागें संगठित हों। राज्य निर्माण करायें।

मैं देख रहा हूँ शहीद शंकर लाल जी महरोत्रा के पश्चात् बुन्देलखण्ड के नाम पर तमाम संगठन खड़े हुये हैं, काम कर रहे हैं। कुछ संगठनों के संस्थापक धन बल सम्पन्न भी हैं, लेकिन उनके अपने उच्चस्तरीय अहं उनके सामने मूँह बायें खड़े रहते हैं और वे मात्र इस औपचारिकता की सीमा में बंधे रह जाते हैं कि कभी धोखे से बुन्देलखण्ड राज्य बन गया तो उनका नाम भी शहीदों में लिखा जाए। मेरा कहना हे प्रभु सब ठीक है, समर्पण और उदारता का क्षेत्र ही बड़ा होता है। इसे बढ़ाया जाना आवश्यक है अहं महत्वपूर्ण नहीं है।

बुन्देलखण्ड पृथक राज्य निर्माण के संगठन बरसाती मेंढ़कों की तरह चुनाव के समय आपको बड़े क्रियाशील दिखेंगे, लेकिन मदद करेंगे अन्य दलों की। बुन्देलखण्ड की लड़ाई लड़ने वाले प्रत्याशी या तो मिलेंगे ही नहीं और अगर किसी समर्थित ने साहस भी किया तो न तो उसे आर्थिक सहयोग करेंगे। न वोट देंगे न दिलवायेंगे। न जाने क्या हो गया है सोच को ऐसी कृतघ्नता क्यों? विश्वास के साथ और अपने आप के साथ धोखा क्यूं? क्या आपकी आत्मा आपको धिक्कारती नहीं है अवश्य ही। धिक्कारती है लेकिन क्षणिक स्वार्थ सबको पीछे धकेल कर वर्चस्व स्थापित कर लेता है। बस इसी क्षण पर काबू पाना होगा। अगर ऐसा कर पाये तो बुन्देलखण्ड एक ऐसा अजेय योद्धा बन कर उभर आयेगा कि उसके ही विधायक होंगे सांसद भी। फिर हमारा प्रतिनिधित्व होगा हमारी आवाज होगी और बनेगा हमारा पृथक बुन्देलखण्ड राज्य।

बुन्देलखण्ड में उत्तरप्रदेश के सात जिले हैं मध्यप्रदेश के तेईस जिले हैं बड़ा विशाल प्रदेश है। लेकिन केन्द्र सरकार जो दे दे सो देदे। केन्द्र सरकार सक्षम है और हम सब उसकी ओर ही आशा भरी दृष्टि से निहार रहे हैं। बुन्देलखण्ड में तमाम साहित्य संस्थायें, ऐतिहासिक संस्थायें बुन्देलखण्ड के स्वरूप को, संवारने में निरत हैं। जन जागृति के नाटक खेले जा रहे हैं बुन्देली मेले लग रहे हैं। जैसे एक चर्चित मेला है छतरपुर जिले में ग्राम बसारी का। इस भव्य मेले का आयोजन श्री शंकर प्रताप सिंह जू मुन्ना राजा कराते हैं इसकी साहित्यिक बागडोर डॉ. बहादुर सिंह परमार सम्हलते हैं। इसी तरह के आयोजन दमोह, हटा, झाँसी, महोबा, टीकमगढ़, आदि स्थानों पर हो रहे हैं।

हम सब पृथक पृथक कुछ कर रहे हैं। उत्कृष्ट है लेकिन सभी संगठनों के जुझारू और बुद्धिजीवी लोग कहीं एक साथ बैठकर एक मुखिया निश्चित कर ले और जन आन्दोलन में सब एक साथ होकर अपने शक्ति प्रदर्शन को दिखायें तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रयास छुटपुट हुये लेकिन व्यक्तिगत अहं में अपने भाव को नहीं छोड़ पा रहे हैं। इसी मैं के अहम में देश गुलाम हो गया था और बुन्देलखण्ड आज बंधुआ है। आठ कनौजिया नौ चूल्हे की कहावत कहीं हम मिटा पावें तो यह सत्य मानिये कोने में दुबका किसान, सड़कों पर अठखेलियां करता युवा उद्देश्य के साथ होगा और बुन्देलखण्ड अपनी समूची क्षमता के साथ अपनी एकता अपनी शक्ति बल पर सरकारों को विवश करने की क्षमता रखती है - बुन्देलखण्ड राज्य बनके ही रहेगा। आज समूचा बुन्देलखण्ड किसी एक ऐसे नेता के बिना दिशाहीन है भटका है जिसमें सभी का विश्वास बैठता हो। बुन्देलखण्ड को एक समर्पित, निष्ठावान, जुझारू, और साथ-साथ धन सम्पन्न नेता की अति आवश्यकता है। आवश्यकता है भामाशाह की, आवश्यकता है छत्रसाल की, आवश्यकता दद्दा मैथलीशरण जी गुप्त की, आवश्यकता लोककवि ईसुरी की।

आज के भटकते बुन्देलखण्ड को अपने गन्तव्य की प्राप्ति हेतु एक केन्द्रीय संगठन में सुदृढ़-दृढ़ इच्छा शक्ति वाले ईमानदार नेता की सख्त आवश्यकता है आवश्यकता है व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर दलगतता से ऊपर उठकर बुन्देलखण्ड के पानी की आन-बान और शान की।

आप अगर ठान लो तो क्या नहीं कर सकते हैं।
यह तो बुन्देलखण्ड है आप देश बदल सकते हैं।

- रघुवंश नगर, भांडेर मार्ग, दतिया (म.प्र.)

भक्तिकाव्य की रामकाव्य परम्परा में बुंदेलखण्ड का योगदान

- डॉ. (श्रीमती) पुष्पा दुबे, डॉ. (श्रीमती) प्रमोद पाठक

बुन्देलखण्ड में रामभक्ति का विकास राम के चित्रकूट आगमन के समय से ही हो जाता है। आदिकवि बाल्मीकि ने राम का महामानव के रूप में विकास दर्शाया है। कालांतर में उस महामानवत्व में जनता ने देवत्व का आरोपण कर श्रीराम को विष्णु का अवतार मान लिया। 'राम' के लिए 'दशरथ सुत' रुढ़ हो जाना उनकी सैकड़ों वर्षों की लोकप्रियता का प्रमाण है।

बुन्देलखण्ड में रामभक्ति का विकास वाकाटक और गुप्तकाल से माना जाता है। महाकवि कालिदास कृत 'मेघदूत' में रामगिरि आश्रम को एक प्रतिष्ठित रामतीर्थ कहा गया है। सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की सुपुत्री रामगिरि स्वामिनी की उपासना करती है। श्री सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य नाथमुनि नें चित्रकूट तीर्थ के दर्शन किये। श्री सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य रामानुजाचार्य (१०१६-११७७ ई.) ने शैव नरेश से चित्रकूट का उद्धार किया।[1] इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि ईसा की तीसरी चौथी शती से चित्रकूट रामभक्ति का प्रमुख केन्द्र रहा। मुस्लिम आक्रमणों से उसकी महत्ता और भी दृढ़ होती गई। चित्रकूट पहाड़ी भूभाग में था। चंदेल और बुंदेले जैसे राजवंशों के संरक्षण में यह स्थल था इसलिये रामभक्ति को सर्वाधिक प्रश्रय यहाँ मिला।

मध्ययुग में ओरछा रामभक्ति का प्रमुख केन्द्र रहा, महाराज मधुकरशाह की बुंदेला महारानी गणेशकुँवरि अयोध्या से श्रीराम को लाई थी तभी से रामराजा का प्रभाव यहाँ अत्यधिक रहा।

ग्वालियर नरेश डूंगरेन्द्र सिंह (१४२५-५४ ई.) के शासनकाल में 'रइधू' ने 'पद्मपुराण' की रचना की थी, जिसमें रामकथा के वर्णन को जैनमत के अनुकूल परिवर्तित किया गया। इसका प्रभाव भी हिन्दी रामकाव्य पर पड़ा। संस्कृत नाटकों में भी रामकथा का मार्मिक चित्रण हुआ है, जिसका प्रभाव हिन्दी रामकाव्य पर दिखाई देता है। संस्कृत नाटकों की अभिनव प्रणाली ने रामकाव्य को प्रभावित किया। केशव कृत 'रामचंद्रिका' की संवाद योजना में इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। बुंदेलखण्ड के 'कालपी' में उत्तर-भारत का 'नाट्यमंच' था। वहाँ भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' और अन्य नाटकों का मंचन हुआ करता था। ५७० वीं. ई. में बी.सी. मिरावी ने यह सिद्ध कर दिया कि 'भवभूति' के सभी नाटकों का मंचन 'सूर्यमंदिर' (वर्तमान में काल्पदेव का टीला कहते हैं) में हुआ। अतः इन नाटकों का प्रभाव यहाँ के रामकाव्य पर पड़ा।

चित्रकूट के निकटवर्ती क्षेत्र में रामकथा संबंधी नाट्य प्रचलित था। राउत कलाप्रिय थे। इसलिए वे लोकनाट्यों में अभिनय करते रहे। राउत बुंदेलखण्ड में अधिकांशतः बाँदा चित्रकूट और कालिंजर में बसते थे। कुछ विद्वानों की धारणा है कि रामलीला का उद्भव तुलसीदास द्वारा प्रेरित रामनगर में हुआ था। किन्तु रामचरित मानस में जो नाट्य योजना मिलती है वह किससे प्रेरित है? वस्तुतः रामचरित मानस के प्रेरणा स्त्रोत वहाँ के संस्कृत के नाटक और लोक नाट्य रहे होंगे।

इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड की रामकाव्य धारा का उद्गम तीसरी चौथी सदी से चली आई रामभक्ति के निरंतर प्रवाह से हुआ है। चित्रकूट और ओरछा में उसे विशेष प्रश्रय मिला। इस जनपद की विशिष्ट उपलब्धियाँ यह हैं कि एक तो राम उपासना का प्रमुख तीर्थ स्थल 'चित्रकूट' यहाँ स्थित है। दूसरे विष्णुदास ने रामायण कथा, तुलसीदास ने रामचरित मानस केशवदास ने 'रामचंद्रिका', पद्माकर ने 'राम-रसायन', वृन्दावन दास ने 'रामचरितावली' लिखकर इस परम्परा को अत्यधिक समृद्ध बना दिया। रामोपासक सम्प्रदाय के यहाँ रामानंदी सम्प्रदाय प्रमुख हैं। रामानंदी सम्प्रदाय की दो शाखाएं हुई वैरागी अवधूत या तपसी शाखा और दूसरी रसिक सम्प्रदाय की शाखा जिसमें माधुर्योपासना प्रधान है। इन शाखाओं के आधार पर रामकाव्य तीन भागों में विभाजित किया जाता है। १. ऐश्वर्य उपासक मर्यादामार्गी रामभक्त कवि, २. ऐश्वर्य रूपोपासक योगमार्गी रामभक्त कवि, ३. माधुर्योपासक रसिक रामभक्त कवि।

ऐश्वर्य रूपोपासक मर्यादामार्गी राम भक्त कवि - १५वीं शती से पूर्व बुंदेलखण्ड के शैव शाक्य धर्म एवं लिंगोपासना का प्रचार था। फलस्वरूप समाज में व्यभिचार फैला। प्रतिक्रिया स्वरूप संतों और वैष्णवों ने राम के चरित्र में आदर्श समाज का रूप देखा। अतः राम के ऐश्वर्य और मर्यादापरक रूप से उपासना का आधार बनाया। इस धारा के प्रमुख कवि विष्णुदास हुए, जिन्होंने रामायन काव्य की रचना की जो बुंदेली रामकाव्य परम्परा का सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रंथ है।

महाकवि तुलसीदास ने रामकाव्य धारा को विष्णुदास से एक शताब्दी बाद उत्कर्ष पर पहुँचाया और रामभक्ति परक १२ ग्रंथों की रचना की। महाकवि विष्णुदास और तुलसीदास के बीच के समय में रामकाव्य रसिक भक्ति परम्परा के रूप में प्रवाहित हुई। तुलसी ने राम का सम्पूर्ण जीवन चरित विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया। राम के चरित में और राम के राज्य में कवि ने राज्य और राजा के आदर्श रूप की स्थापना की। इस चित्रण में परोक्षतः बुन्देली संस्कृति का समुन्नत रूप दिखाई देता है। वस्तुतः तुलसी ने राम से सम्बंधित इतने बृहद और उत्कृष्ट साहित्य की रचना की कि राम का नाम आते ही तुलसी के 'राम' हमारे सामने आ जाते हैं। अपनी धर्मनीति संस्कृति और उत्कृष्ट समाज की अवधारणा को लेकर चलने

वाला यह महाकाव्य उत्कृष्ट साहित्यिक गुणों से विभूषित है। इसलिये धर्मनीति, दर्शन काव्य भाषा सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होने के कारण वेद पुराणों से भी अधिक लोकप्रिय हुआ। विनय पत्रिका में कवि का और आत्म निवेदन अत्यंत उत्कृष्ट है। कवितावली, दोहावली व अन्य ग्रंथों ने बुन्देली लोकजीवन अपने माधुर्य और शालीनता के साथ साकार हो उठा है।

संभवतः इन्हीं श्रेष्ठताओं के कारण रामविषयक अन्य महाकाव्य अपनी विशिष्टता रखते हुए भी तुलसी के राम विषयक साहित्य के आगे दब गये हैं।

तुलसी के उपरान्त रामकाव्यधारा की महत्वपूर्ण प्रबंधकृति 'रामचंद्रिका' है। कवि ने इस कृति में भक्ति और पाँडित्य दोनों की व्यंजना की है। केशव को पूर्व रामकाव्य परम्परा उपलब्ध थी। अतः जिन स्थलों पर तुलसी मौन रहे वहाँ केशव ने अपनी लेखनी चलाकर अपनी मौलिक प्रतिभा और व्यापक परिज्ञान का परिचय दिया है। वास्तव में 'रामचंद्रिका' अलंकृत प्रबंधकाव्य है। बुंदेलखण्ड में केशव की छंद योजना का वस्तुवर्णनों और प्रकृति चित्रण का अनुकरण परवर्ती कवियों ने बहुत किया है।

केशव के ही समकालीन 'मधुर अली' में उन्होंने रामचरित विषयक ग्रंथों की रचना की। मधुकरशाह के आश्रित केशरीसिंह ने बाल्मीकि रामायण की रचना की थी। आगे चलकर पर्वतदास और फिर छत्रसाल का योगदान इस परम्परा में सराहनीय रहा।

१८वीं शती तक आते-आते रामकाव्य में राजसी वैभव और विलासिता ने अपनी जड़ें जमा ली थी। खुमान, कुंजनदास, पद्माकर का नाम उल्लेखनीय है, पद्माकरकृत 'रामरसायन' प्रबंध काव्य की रचना इसी समय हुई, प्रश्नोत्तर शैली में लिखा यह प्रबंधकाव्य आकार में लघु होते हुए भी वृहद् भाव-भंगिमाएँ अभिव्यक्त करता है। मोहनदास मिश्र ने 'रामाश्वमेघ' और 'भावचंद्रिका' नामक ग्रंथों की रचना इसी समय की।

उन्नीसवीं शती में देवी प्रसाद कायस्थ ने 'नाममाला' रामायण, चित्रकूट के नाथूराम चौबे ने चित्रकूट शतक, चरखारी के बहादुर सिंह कायस्थ की वीर-रामायण, रघुवर विलास, लक्ष्मण सिंह कृत 'भक्ति-प्रकाश' राजापुर के हनुमानदीन मिश्र ने वाल्मीकि रामायण, चरखारी के मोहनकवि कृत 'रामाष्टक', ठाकुर प्रसाद कायस्थ कृत जानकी स्वयंवर, मंगलदीन उपाध्याय की 'रामायण महात्म्य' आदि १९वीं शती की श्रेष्ठ रचनाएं हैं। नाथूराम चतुर्वेदी 'ब्रज' ने सागर-समर में तुलसी की शैली का अनुकरण किया। प्रताप सिंह ने रामचंद्र जू की 'नख-शिख' जुगल नखशिख की रचना की। बल्देव प्रसाद मिश्र ने रामायण जानकी-विजय ग्रंथों की रचना की। हरिदास हरिजन ने तुलसी चिंतामणि की रचना की, जिसमें राम के चरित्र का वर्णन है। पुनः तुलसी कृत १९६५-१९२० ई. के काव्ययुगीन कवि ने हनुमत पताका नामक रामकाव्य संबंधी ग्रंथ लिखा जिसमें केशव के वस्तु वर्णन पद्धति का चित्रण है और रामजानकी के मर्यादित श्रृंगार का वर्णन है।

ऐश्वर्य रूपोपासक योगमार्गी रामभक्त कवि - रामानंद और उनकी शिष्य परम्परा में योगमार्गी भक्ति किसी न किसी प्रकार से नीतिवत रही। निराकार और साकार कवियों ने इस पद्धति को अपनाया। राजस्थान में वैष्णव धर्म का प्रसार हुआ और इसके प्रसार के लिए श्रीकृष्ण दास पयहारी ने नाथपंथी राजगुरु 'tाननाथ' को पराजित किया था। साम्प्रदायिक ग्रंथों से पता चलता है कि उन्होंने यह कार्य अपनी योग साधना के बल पर किया था। इसलिए उन्हें रामभक्ति योगमार्गी शाखा का प्रवर्तक माना गया है। पयहारी के शिष्य कील्हदास भी योगसाधक थे। बाद में वे तपसी शास्त्र के नाम से एक साधना पद्धति प्रसिद्ध हुई। रामभक्त नागाओं में भी योगसाधना पर बल दिया जाता है।

राठ (जिला हमीरपुर) के एक बड़ा मंदिर है, जिसमें योगमार्गी नौ महन्तों का उल्लेख मिलता है। वर्तमान में ये उत्तराधिकारी महन्त राम के ऐश्वर्य एवं लोकरक्षक रूप की उपासना करते हैं।

माधुर्योपासक रसिक रामभक्त कवि - रामभक्ति में रसिक भावना यहाँ विष्णुदास के समय से ही हो चली थी। चित्रकूट में उसका विकास और प्रसार हुआ। वैष्णव भक्ति के श्री सम्प्रदाय ने चित्रकूट की मान्यता दी थी रमावत सम्प्रदाय ने वहीं अपना पीठ स्थापित कर लिया था। चित्रकूट को सीता और राम की विहार भूमि माना। 'रामसखे', प्रेमसखी एवं कृपा निवास जैसे वैष्णव आचार्य वहीं साधनारत रहे।

कृष्ण भक्तों के प्रभाव से रसिक भक्ति भावना को प्रश्रय मिला। कालांतर में बहुत से कवि और कवयित्रियाँ हुई। जिनमें युगलप्रिया, वृषभानुकुँवरि, कँचनकुँवरि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। रामभक्ति विषयक विपुल साहित्य का सृजन इस अंग में हुआ। लोकगीत के रूप में ये भक्त कवयित्रियाँ विख्यात हुई। डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने अपने ग्रंथ राम रसिक भक्ति परम्परा में बुन्देलखण्ड के बहुत से कवियों का उल्लेख किया है जिनमें पर्वतदास (१६६४ ई.) का नाम अग्रगण्य है। रामकलेवा रहस्य, षट्रहस्य, एवं जानकी व्याह इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। परवर्ती रचनाकारों में नवल सिंह प्रधान (१८१६-१८६० ई.) कामदानाथ सीताहरण (१८५६-१९०६ ई.), जानकी प्रसाद रसिक बिहारी (१८६३-८२ ई.) रामशरण कनकने, पं. रामवल्लभाशरण प्रेमनिधि (१८८०-१९४१ ई.) सीतारामशरण रामरसमणि (१८८०-१९२१ ई.), सीतारमण शुभलीला (१८९०-१९०१ ई.) एवं रानी सुजानकुँवरि का नाम उल्लेखनीय है। वर्तमान में भैयालाल व्यास कृत रघुवंशम् महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ -

१. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. २२६-२७, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त

- नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर (म.प्र.)

बुंदेलखंड की धार्मिक लोकचेतना

- डॉ. विवेक निधि घोष

बुन्देलखण्ड की लोकचेतना धर्म से प्रभावित ही नहीं अपितु प्रेरित भी है। यहाँ का धार्मिक इतिहास धर्म की विभिन्नताओं से भरा हुआ है। यहाँ लोगों की धर्म-भावना, भूतवाद, बहुदेववाद, एकेश्वरवाद और सर्वेश्वरवाद तक सीमित हुई। एक ओर तो लोक-जीवन में धर्म की दार्शनिकता को अपनाकर जीवन के साथ अविच्छिन्न सम्बंध स्थापित किया, दूसरी ओर आध्यात्मिकता की भावना का उदय हुआ। धर्म की धारणा के अन्तर्गत लोक उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को ले आता है जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाए रखती है। हमारे पृथक-पृथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएँ होती हैं और विरोध ी आवश्यकताएँ होती हैं, जो बढ़ती हैं और बढ़ने की दशा में परिवर्तित भी हो जाती हैं। उन सबको घेरकर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना धर्म का प्रयोजन है। धर्म का सिद्धान्त हमें आध्यात्मिक वास्तविकताओं को मान्यता देने के प्रति सजग करता है। लोकधर्म का मूल सिद्धान्त है मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना, जो ईश्वर का निवास स्थान है। यह हमारे सम्मुख नियमों का एक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है और यह अनुमति देता है कि उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। यहाँ संकट के समय कर्तव्य के नियमों में अपवाद की भी अनुमति है।

बुन्देली-लोक में प्रचलित लोककथाओं का प्रारंभिक रूप भी हमें धर्म-गाथा के रूप में दिखाई देता है। धर्म ही लोकजीवन है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सर्वोच्च स्वर है जो लोक-वातावरण में ध्वनित हो रहा है। धर्म की प्रेरणा से ही लोकसाहित्य की रचना हुई। धर्म के कारण ही लोकसाहित्य को इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई। उदाहरण स्वरूप कार्तिक के गीत, देवी के भजन, बाबा के गीत और अन्य उत्सव त्योहारों के गीतों में धर्म ही धर्म दिखाई देता है। व्रतों और पर्वों के अवसर पर लोकगीतों के गायन और तत्संबंधी लोक-कथाओं के कहने का प्रचलन है जिनमें धर्म का स्वर सुनाई देता है। भले ही लोकगीतों में कर्म पर विशेष बल दिया गया हो किन्तु लोककथाएँ भाग्यवाद को ही अधिक महत्व देती हैं जो ईश्वरीय कृपा पर आधारित है।

बुंदेलखण्ड का जनजीवन प्राचीन काल में लोकधर्म से प्रेरित हुआ। सागर जिले में प्राप्त गुहा चित्रों में अंकित कल्पवृक्ष, सूर्य-चंद्र, स्वस्तिक आदि से इसकी पुष्टि होती है कि विशिष्ट धर्म का उदय यहाँ बाद में हुआ। शनैः-शनैः धार्मिक चिंतन में प्रौढ़ता आती गई और रामायण-महाभारत काल तक आत्मा-परमात्मा सम्बंधी आस्थाएँ दृढ़ हो गईं। पुराणकाल में बुन्देलखण्ड के जनजीवन में व्रत उपवास, धार्मिक अनुष्ठान और देवी-देवताओं पर विश्वास अत्यंत दृढ़ हो चुका था। इसके साथ ही विधि-विधानों में आडम्बरों ने ऐसा आवरण डाला कि आस्थाएँ रूढ़ बन गईं और मध्ययुग तक सम्प्रदायों ने अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया।

अध्ययन करने पर मालूम होता है कि रामायण काल तक बुन्देलखंड पुलिंदों, निषादों, शबरों, रामटों, दांगियों आदि आदिवासियों का निवास स्थान रहा। इस कारण यहाँ के लोकधर्म में इन वन्य जातियों की धार्मिक मान्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। गुफा युग में धर्म सामुदायिक या उनके देवता आध्यात्मिक न होकर जागतिक थे। उनकी अर्चना का उद्देश्य बाधाओं और विपत्तियों से रक्षा एवं सांसारिक सुखों की प्राप्ति था। उपयोगिता ही देवत्व की कसौटी थी। इस कारण फल, मांस, जल, शरण, रोशनी देने वाले, वृक्ष, पशु, नदी, सरोवर, गिरि, अग्नि आदि का अर्चन शुरू हुआ। सभी लोकदेवों की पूजा मानसिक थी। अधिकतर उन्हें फल और मांस की भेंट दी जाती थी, जो बाद में बलि की रूढ़ि में परिवर्तित हो गई। गुफाओं में अपने मन का कोई चित्र या आकृति बनाकर उसे रक्षा का प्रतीक मान लेना एवं उस पर विश्वास होना अँचल के देवता की पहली कल्पना थी।

कृषियुग के आरंभ के साथ ही लोक में उत्पादन एवं पशुपालन की व्यवस्था आई। पशुओं की रक्षा और अधिक लाभ प्राप्ति की लोकभावना ने पशुपति और पशुओं की पूजा को जन्म दिया। फसलों को विपत्तियों से बचाने के लिए जल, नदी, वर्षा इत्यादि को देवत्व मिला। भू देवी की पूजा भी इसी काल की देन है जो आज कि भियारानी या भुंइयाँरानी की रूप में वर्तमान है।

रामायण काल में उत्तरांचलों से ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के दलों नें यहाँ धीरे-धीरे बसना शुरू कर दिया था। इस प्रक्रिया से वैदिक देवता और वैदिक मान्यताएँ जो लोकधर्म के लिए उपयोगी सिद्ध हुई इस जनपद में घुल मिल गई। आर्यों के श्रेष्ठ देवता इंद्र आँधी-तूफान, बिजली, वर्षा के देव होने के कारण लोकदेवता बन गए, जिन्हें महाभारत काल में श्रीकृष्ण ने अपदस्थ कर गिरि की पूजा को लोकमान्य बनाया।

डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त ने यक्ष पूजा को यहाँ के लोकधर्म का महत्वपूर्ण अंग माना है। महाभारत में युधिष्ठिर और यक्ष वाली प्रश्नोत्तर शैली भी बुंदेली लोकगीतों में सुरक्षित है। वर्तमान काल में वरमदेव की पूजा के रूप में यक्ष की ही प्रतिष्ठा है। यक्षकाल नागों और वाकाटकों के राज्य की स्थापना तक अर्थात् पहली शती ईसापूर्व तक प्रसारित रहा। कनिष्क के समय भी यक्ष पूजा प्रचलित थी। यक्ष उपासना में सभी धर्म यानि कि वैदिक, ब्राह्मण, जैन, बौद्ध आदि के

अनुयायियों का मिलन बिना किसी भेदभाव के होता था। यक्ष, गंधर्व, किरात जातियों की देन तंत्रवाह है जिसने बौद्ध धर्म के वज्रयान संप्रदाय को प्रभावित किया था।

मौर्य काल में सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार सांची, जबलपुर और होशंगाबाद के जिलों तक किया था जिससे लोकधर्म के लोकतत्त्वों को और भी मजबूती मिली थी। इसके बावजूद यक्ष पूजा यहाँ तब तक सर्वोपरि रही जब तक शिव का वर्चस्व स्थापित न हुआ।[१]

ईसा की पहली शती से लेकर तेरहवीं शती तक यहाँ नागों एवं वाकाटकों के काल में शिव, नाग, चंद्र एवं नंदी की पूजा का महत्व बढ़ा। शिव की निषाद परंपरा को ही नागों ने अपना लिया और वाकाटकों ने भी शिव को ही मान्यता दी।[२]

हर्ष के पिता सूर्य की उपासना करते थे। किंतु हर्ष के समय बौद्ध धर्म प्रभावी हुआ। हर्ष के बाद लगभग ५०० वर्षों तक चंदेलों के आधिपत्य में रहकर यहाँ का जनजीवन धार्मिक आस्थाओं से पूरी तरह प्रभावित रहा। इस काल में शासकों की आस्थाएँ शैव-शक्ति की उपासना से जुड़ी थी, किन्तु विविध देवों की आराधना और अन्य धर्मों को भी सम्मान प्राप्त था। खजुराहो में चौसठ जोगिनी, जगदम्बिका, विश्वनाथ, ब्रह्म, वामन और दूल्हादेव के साथ ही, घंटाई, आदिनाथ और पार्श्वनाथ के जैन मंदिर भी धार्मिक जीवन में विविधता की गवाही देते हैं। इसके अतिरिक्त अचट्ट में भगवान विष्णु, गणेश, यक्ष-यक्षिणी, अम्बिकादेवी, हजारिया महादेव एवं महावीर और तीर्थंकर की मूर्तियाँ भी इस विविधता की पुष्टि करती है। तत्कालीन जन-सामान्य की धार्मिक आस्थाएं आल्हखंड से वर्णन से भी स्पष्ट होती है। जीवन के सभी कृत्य धर्म की जंजीरों से बंधे हैं। लोक परंपरागत रूढ़ियों पर विश्वास करते हैं, योगियों का सम्मान था। दैवीय चमत्कारों में आस्था थी और विभिन्न देवी-देवताओं से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहयोग की आकांक्षा धार्मिक आचरण से जुड़ी थी। वत्सराज के रूपकों से भी संकेत मिलते हैं कि उस युग के प्रमुख उपास्य देव शिव थे। चंदेल शासक शैव थे, किन्तु शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के बीच एकता का सूत्र बांधने का उनका प्रयास रहा। तांत्रिक चमत्कारों का भी लोगों में प्रभाव था। इस काल में शिव के साथ विष्णु, गणेश, सूर्य, मुरारिकृष्ण और अनेक छोटे देवों की पूजा भी होती थी।[३] देवियों में भवानी, पार्वती, या गौरी, लक्ष्मी आदि का अधिक महत्व था।[४]

चंदेल काल में यहाँ के लोकधर्म पर तंत्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था। भूत-प्रेत, मंत्रों के बल से सिद्धियों की प्राप्ति, रोगादि व्याधियाँ दूर करने एवं अनेकों मंत्रोपचार जैसे विश्वास इस युग में लोकप्रिय होने लगे। महोबा के मनियांदेव मणिभद्र यक्ष हैं, जो इतिहासकार स्मिथ द्वारा भ्रमवश गोण देवता मान लिए गए।[५] इस काल में भी यक्षों को स्वास्थ्य एवं अमरत्व का प्रतीक माना जाता था। लोक ने ही मणिभद्र यक्ष को मनियां देव बना दिया जो सहज एवं स्वाभाविक हैं।[६]

मध्ययुग में बुन्देलखण्ड का धार्मिक जीवन बुंदेलों के संघर्षपूर्ण उत्थान से प्रभावित हुआ। इस संक्रान्ति के समय धार्मिक स्थलों के पुजारी भी सुरक्षा के लिए सजग रहते थे और सैनिक सामर्थ्य भी रखते थे, ताकि आवश्यकता के समय राजा की सहायता की जा सके। डॉ. कामिनी ने इस सम्बंध में अपनी विवेचना प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि कलचुरि, परमार और बुंदेलों के काल में वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ। धार के पंवार शैव होने के बाद भी वैष्णव धर्म के प्रति उदार रहे। इस भू-भाग में वैष्णव धर्म की भांति शैव धर्म भी खूब पनपा।[७] डॉ. कामिनी की मान्यता सम्पूर्ण भारत के जन-जीवन की तत्कालीन धार्मिक आस्था के समग्र को समेट लेती है।

मध्ययुग में लोग बहुदेववाद में विश्वास करते थे। देवियों और देवों, लक्ष्मी से खेरमाता तक और महादेव से मंगलदेव तक विविध रूप हैं और वे सब लोक की आस्था के प्रतीक हैं। कुछ व्यक्ति अपने विशिष्ट गुणों के कारण देव-कोटि में स्थापित हो गये हैं जैसे हरदौल, मंगलदेव, अजैपाल, कारसदेव आदि। गौड़ देव की पूजा उच्च वर्ण के लोग भी करते हैं।

इसी काल में तुलसी की रामचरित मानस ने लोकचिंतन पर अपना पर्याप्त प्रभाव डाला। राम की उपासना ने समाज को नया आदर्श दिया जिसमें आदर्श व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य के लिए मर्यादा, त्याग, संयम, शील, कर्मनिष्ठा, शक्ति और धर्म परायणता का उचित समन्वय था। बुंदेलखण्ड में मध्ययुगीन जीवन का लोकआदर्श १२वीं शती के आल्हखंड से भी प्रभावित होता है। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त की मान्यता है कि मध्यकाल में विजातीय धर्म और संस्कृति के आक्रामक रूप के कारण यही लोक विश्वास क्षात्रधर्म के प्रतीक रूप में आस्था का संदेश देता रहा है। चंदेलकालीन नारी में सतीत्व के प्रति अनन्य विश्वास वाला आदर्श पूरे मध्य युग में प्रतिष्ठित रहा।[८]

पुनरुत्थानकाल में समकालीन विचारकों के विचारों का प्रभाव लोकधर्म पर भी पड़ता हुआ प्रतीत होता है। इस काल में धर्म में आ चुकी कुरीतियों को दूर करने का प्रयास हुआ है। इस काल में लोककवियों के विचार लोकचिंतन में धर्म के तत्व का संकेत करते हैं-

दीपक दया धरम को जारौ, सदा रात उजियारौ।
धरम करें बिन करम खुलै ना, बिना कुची ज्यों तारौ।
समझा चुके करें न रइयौ, दिया तरें अंधियारौ।
कात ईसुरी सुन लो प्यारी, लग जै पार निवारौ।।

इस युग में लोक धर्म का मानवतावादी पक्ष उभरा।

बुंदेलखण्ड में प्रकृति सम्बंधी लोक-विश्वासों को भी बराबर महत्व दिया जाता रहा। पीपल के वृक्ष पर वरमदेव का पूजन, महुआ के वृक्ष की पूजा, आंवले के पेड़ का पूजन एवं परिक्रमा आदि प्रकृति

सम्बंधी धार्मिक विश्वासों के परिचायक हैं। यहाँ तुलसी का पूजन नित्य आवश्यक माना जाता है, और सोमवती अमावस्या के दिन महिलाएं तुलसी का पूजन और १०८ परिक्रमा आदि अवश्य करती हैं इसी प्रकार महालक्ष्मी वृक्ष में हाथी का पूजन, नागपंचमी के दिन नाग का पूजन और गाय का नित्य पूजन मंगलकारी होने की मान्यता आज भी लोक मानस में सुरक्षित है।

आस्था और विश्वास धार्मिक जीवन के आधार हैं। बुन्देलखण्ड का जनमन परमसत्ता में अडिग विश्वास करता है। आराधना के तरीके अलग-अलग हैं। आराधना के स्थल भिन्न हैं किन्तु नित्य की आराधना नियमित हैं। धार्मिक पर्वों की परम्परा नहीं टूटी, लोक पर्व भी हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं इनमें अधिकतर महिलाओं के पर्व हैं। गनगौर पूजन, आसमाई, प्यास माई, अकती, बरा-बरसात, असाड़ी पूजन, शक्तिपूजा, सावन तीज, संतान सातें, करवाचौथ, हरछठ, कँजरियां, महालक्ष्मी पूजन, और ऋषिपंचमी आदि लोक पर्व अपना पूर्ण अस्तित्व बनाए हुए है। जवारों का पूजन शक्तिपूजा के रूप में अभी भी विद्यमान है। कन्याओं द्वारा मामुलिया का पूजन एक आस्था से जुड़ा है और नौरता मां गौरी के पूजन के साथ ही कुछ दंत कथाओं को लिए हुए हैं।

बुंदेलखण्ड में धार्मिक-जीवन जहाँ युग के साथ आगे चला है वहाँ सभी धर्मों के आस्था-विश्वासों का समन्वय भी होता गया और लोकधर्म प्रभावी बन गया। जैसे-जैसे लोक विश्वासों में जड़ता आई वे रूढ़ियाँ बन गई। छत्तीस करोड़ देवी-देवताओं की कल्पना किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव बनाए हुए हैं। इसके साथ ही लोक-देवताओं का प्रभाव भी बराबर देखने को मिलता है। विवाह में लाला हरदौल का पूजन और मनौती अत्यंत आवश्यक जानी जाती है। कुल देवता और ग्राम्य देवता कुछ विशेष जातियों और कुछ स्थानों से सम्बद्ध है। परन्तु यह निश्चित है कि उनके पूजन के बिना कोई मांगलिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। कारसदेव, दूल्हादेव, सिद्धबाबा, ग्वालबाबा और ठाकुर बाबा के चबूतरों पर आज की जात्राएँ लगती हैं। लोग एकत्र होते हैं और मनौती माँगते हैं। जवारों का रखा जाना, भाव खेलना और संबंधित मान्यताएँ अभी भी परंपरागत चल रही हैं। जादू का विश्वास भले ही कम हो गया हो किन्तु झाड़फूँक और तंत्र-मंत्र से आज भी जनमानस अलग नहीं है। धार्मिक विविधताएं कितनी भी हों अथवा संप्रदाय कैसे भी हों मानव मन लोक से जुड़ा रहता है और लोकधर्म मानवता से। बुंदेलखण्ड का जन मानस इसी लोकधर्म से प्रभावित है।

संदर्भ -

१. बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, १९९५, पृ. ११६
२. अंधकारयुगीन भारत, काशी प्रसाद जायसवाल, १९९५, पृ. १०४
३. चंदेल और उनका राजत्वकाल - केशवचन्द्र मिश्र, संस्करण २०११, पृ. २०८
४. दि. अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो - डॉ. एस.के. मिश्र, १९७७, ई.पू. २३७, कालिंजर प्रस्तर अभिलेख पृ. ५६
५. इंडियन एटिक्वेरी, १९०८, भाग ३७, पृ. १३६-१३७
६. वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा काण्ड, ११/६४
७. बुंदेली भाषी क्षेत्र के स्थान अभिधानों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. कामिनी १९८५, पृ. २६
८. मामुलिया अंक १५-१६, वर्ष चार, बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त पृ. ४८
९. बुंदेलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त १९९५, पृ. १२४

- घोषयाना, संकट मोचन रोड, छतरपुर (म.प्र.)

बुन्देली उत्सव २०१० में इन साहित्यकारों को सम्मानित किया गया

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०१०

(बुन्देली संस्कृति हेतु)

◆ श्री भानुप्रताप शुक्ल 'भानु' -

चुपचाप अपनी साहित्यिक व सांस्कृतिक साधना करने वाले श्री शुक्ल का जन्म महोबा जिले के ग्राम धवार में २ अगस्त १९३३ ई. को हुआ। आपके पिता का नाम श्री प्रभुदयाल शुक्ल व माता श्रीमती नन्हीबाई शुक्ला था। आपने एम.ए. हिन्दी तथा साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त की। आजीविका हेतु म.प्र. शासन के स्कूल शिक्षा में शिक्षक पद पर कार्यरत रहे। अब सेवानिवृत्त होकर लगातार साहित्य साधना में संलग्न हैं।

आपकी प्रकाशित रचनाओं में मानस महिमा, एक कलम कल्याण की, सार-वचन, सरयू महामहिमा, गीता-स्तवन, सरस्वती-सुयश, ओरछाविरद, गुरु-गरिमा, अयोध्या-चवालीसा, चित्रकूट-चालीसा, व्याटा बजरंग चालीसा, चौथी चालीसा, फाग-फुहार, शिक्षा सप्त शतक आदि हैं।

दीवान प्रतिपाल सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०१०

(बुन्देली इतिहास हेतु)

◆ डॉ. भवानी दीन -

हमीरपुर जिले के भरुआं सुमेरपुर में जन्में डॉ. भवानीदीन जी ने एम.ए. व पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आपके पिता श्री प्रभुदयाल थे। आप उत्तरप्रदेश की महाविद्यालयीन सेवा में विगत तीस वर्षों से सेवारत हैं। वर्तमान में स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर में इतिहास के एसोशियेट प्रोफेसर हैं। 'समर-गाथा', 'वैभव वहे वेतवा धार', 'जीवन मुक्ति के साकार विग्रह', 'अक्षरों की आहट' प्राचीरें बोलती हैं, मेरी कलम की कोख से आपकी प्रकाशित कृतियाँ हैं। आपके निर्देशन में छह छात्र शोध उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। आपको बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी द्वारा बेस्ट टीचर का सम्मान प्राप्त हुआ। उ.प्र. हिन्दी संस्थान से आप सम्मानित हो चुके हैं। आपकी रुचि बुंदेलखण्ड के सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन में है।

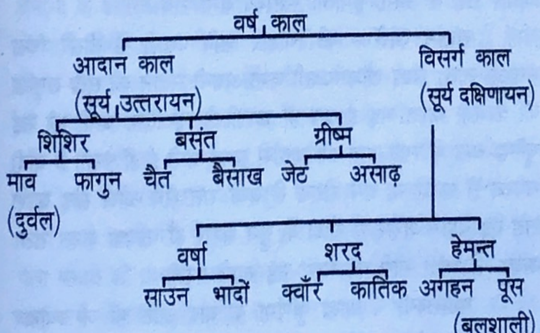
बुंदेली तीज-त्यौहारन के पाछें लुकी बैग्यानिकता

- डॉ. राघवेन्द्र उदैनियाँ 'सनेही'

अपने ई पूरे बुन्देलखण्ड में चैत सें लेकें फागुन लौ बारउ मइना कोनउँ न कोनउँ बहानें श्रद्धा और भक्ति में पगे तीज त्यौहार मनाए जात। अपने पुरखन नें इन सबरे तीज त्यौहारन में धार्मिक किसा कहानियन के सँगे कछू न कछू बैज्ञानिक तथ्य ऐसे लुका दये जैसें दिन में तारे, जौन होत भए लौ पै हमें नइ दिखात। जो हमाए पुरखन कौ स्यानपन आए। काए सें हमाए बुन्देलखण्ड के जनीं-मान्स धरम में इतने रँगे पगे हैं कै बे और कछू देखबोइ नइँ चाउत। इनकी ई मन्सा हाँ समज के पुरखन ने तीज त्यौहारन हाँ ई ढंग से मनाबे की जुगत बनाई कै सब उनके मन की हो जाय और ऊमें लुकी वैज्ञानिकता को फायदा उनें अबढ़ाइ मिलत राय।

ई बात हाँ समजबे के लानें हमें आयुर्वेद के अनुसार जौंन साल भरे को कालखण्ड बताओ गओ ऊहाँ देखनें आहै औ फिर ऊके अनुसार जौंन मइना बार तीज त्यौहार धरे गए उनके मनाबे को ढंग और उनमें खाबे-पीबे और पैरबे को विधि-विधान देखतँइ हमाइ समज में आ जैहे कै ईमें धरम और श्रद्धा भक्तिभाव के सँगै वैज्ञानिकता कैसें सियानपन सें लुकाइ गई कै धरम के आंगू बा दिखाकें लौ नइ दिखात।

आओ तौ अब हम साल भरे के कालचक्र औ हर मइना के तीज त्यौहारन हाँ एक-एक करकें देखें औ परखत चलें कै इनमें कौन ढंग सें का का समानौ है।



ई कालचक्र हाँ देखे सें पतो चलत के आदान काल में जौन छः मइना होत बे है भाव, फागुन, चैत, बैसाख, जेठ, अषाढ़ इनमें हमाए शरीर को बल घटत रात। काए सें गर्मी और बरसात के मारें खाना कम खबत औ पानी जादा पिबत सँगे हाजमा शक्ति कम रात। जौंन विसर्ग काल के छः मइना हैं बे हैं साबन भादों, क्वार, कार्तिक, अगहन, पूस इनमें खाना खूब खबत औ हजम हनकें होत रात। एइ सें बैद, डाक्टर इन मइनन हाँ 'हेल्दी सीजन' कात्। अब मजे की बात जा देखो के इन दोइ कालन के छः छः मइनन के बीचउ बीच तीन-तीन मइनन के अंतर सें नौ नौ दिना की नौ दुर्गा धरीं गईं जो मान्स जब नौ नौ दिना उपासो रैहै तो आयुर्वेद के अनुसार शरीर को साधन अवढाँई होत रैहे और मान्स बरदम स्वस्थ बनो रैहे और जौंन कसर रैहै बा हर मइना के तीज त्यौहार अपने ढंग से पूरी कर दैहैं। तो अब हम हर मइना के तीज त्यौहारन पै थोरो-थोरो विचार करत भए ऊके भीतर जौन बैज्ञानिकता लुकी है ऊहाँ देखें औ परखें। तो सबसे पैलां नवसाल शुरु होतनइ चैत की नौ दुर्गा से श्री गनेश करें।

चैत की नौ दुर्गा - जौ त्यौहार के बाद गर्मी शुरू होतनइ चैत की अमाउस के दूसरे दिना सें मनाओ जात ईमें सबइ जनें अपनी अपनी शक्ति के अनुसार पूरो उपास रैकें, एक ज्वार खाकें, कै केवल नोनइ छोड कें, कै सादा खाना खाकें जीपे जैसें सदत ऊसें अपने सरीर को सोदन करत। मुंडा, चप्पले आदि न पैर कें उपनाए चलत जीसें तरवन की तरप सें एक्यूपंचर क्रिया को पूरो पूरो लाभ होत जानें, अनगाने के रोग अबढ़ारेइ बिलात रात जौ हमें लो पतो नइँ चलत औ ई प्रकार नौ दिना में हरतरा से अपने सरीर को सोदन हो जात। श्रद्धा-भक्ति सें सबइ जनें शक्ति रूपी मइया की नारियल अठवाइ सें पूजा करकें अपनो भक्ति भाव समेटत भए त्यौहार पूरो करत।इके बाद बैसाख मइना लगतनइ बैसाख की शुक्ल पक्ष की तीजा हाँ अक्षय तृतीया हाँ हम अकती के नांव से जानत।

अकती - ई दिन घर के सियाने माटी के धैला भरकें उनके ऊपरे छोटे-छोटे सकोरन (मिट्टी के कुल्हड़) में देउल डारकें फुलाउतीं हैं, जिनें साम कें गाँव के बायरें छेवला के पेड़ हाँ पूजकें अकती के गीत गावतीं ई के पीछे क्वारी बिटियन हों प्रशिक्षित करबे की भावना लुकी के तुमें सोउ एक दिना अपनी ससुरार में जाकें नए ढंग से रेने आहे। सँगै छेवला के आयुर्वेदिक गुण अवढारेइ ऊके पूजवे सें सरीर हा चर्म रोगन सें छुटकारो दे देत अब आई जेठ में अपनी भीमसेनी एकादशी।

भीमसैनी एकादशी - जा जेठ मइना की शुक्ल पक्ष की एकादशी हाँ मनाइ जात। इ दिना पूरे बुन्दलेलखण्ड में हर घर को एक बुजुर्ग निर्जला व्रत रेकें बिना खाए-पिए अपने इष्ट की आराध ाना में लगो रात। ई के पाछें जो मुख्य तत्थ है वो जो है कि जौन बुजुर्ग एसी गरमी में जब एक घरी बिना पानी के रेवो मुश्किल है, ऊमें पूरे दिन निर्जला रैगओ तों ऊके शरीर में अबे इतनो बल है के ऊँ एक साल और जी सकत जो सक्ति परीक्षण अवढारो हो जात। औ शरीर के जल को विशाक्त दोस अबढ़ारोइ मिट जात जी से जलंध र जैसो रोग होइ नइ सकत।

सावन सुम्मवार - अब ई मइना से सूरज दक्षिणायन हो जात औ सावन भादो में आयुर्वेद के अनुसार खाबो पीबो कम कर दओ चाइये। बेसइ अपने बूढ़े बुजुर्गन ने कइ कै सावन ब्यारी जब तब करिये भादों ब्यारी नाव न लइये, जौन दिना सें आय दिवारी, पेलम पेल फिर करौ बियारी। कैबे को मतलब जो कै सावन में पेट की अग्नि मंद हो जात है, ईसें जौ त्यौहार पूरे बुन्देलखण्ड में विशेष तौर से लुगाइयन हां जे सावन सुम्मवार बनाए गए, बरदम सुहागन मानी जाबे बारी तुलसी के पेड़ की परकम्मा व पूजा करती हैं। जी

के पाछे जा धारना है के तुलसी की तरा हमाओ सुहाग अमर बनो राय औ तुलसी बेसइ ऐसो पेड़ो है जो सौ दवाइयन की दवाई है जा श्यामा तुलसी को पेड़ो रेहे उते भगदर आइ नइ सकत। एइ व्रत के बहाने कम से कम हर घर में तुलसी कौ पेड़ौ तो रैहे। ऐई इकी वैज्ञानिकता है। जी से घर सें कैउ रोगदोग अवदारेइ दूर रये आउत।

आद्रा पर्व - ई दिना किसान अपने हर वैलवा खुरपी कुलरिया हँसिया सबइ औजारन की पूजा करत जौन उनके किसानी के कामें आउत एई दिना सें खरीफ की फसल की बोनी की सुरुआत करत। सबइ घरन में लाल गेंउन हाँ उसे के घी गुर मेवा मिलाके अपने बूढ़े बुजुर्गन के पाँव छूकें आसीरवाद लेत जी से नइ पीढ़ियन हाँ बड़न कौ सम्मान करवे की सीक मिलत औ किसान समय पै काम करें जां शिक्षा दइ जात। काए से बुजुर्गन ने पेलइ केदई कै असाड को चूको किसान और डार को चूको बंदरा सालभर ठिकाने नइ लगत, एइ ईकी वैरगनिकता व शिक्षा है।

नागपांचे - जो त्यौहार नागन को पर्व मानोजात। घरन में नागदेव की पूजा करी जात। कटोरन में दोनन में उनके पीवे के लाने दूद धरो जात। ई के पाछें जा धारना रइ आउत कै हमें सवइहाँ कोनउ विषेले जीवन हाँ उपत कें पैलाँ सें न सताओ चाइये और जब हम इने न सताहैं इनकी पूजा कर हैं तो जे हमें न काटें अब ईहाँ बैज्ञानिकता कैलो चये जियो औ जीने दो की उक्ति कैवे एकइ आय।

साउन (रक्षाबंधन) - जौ त्यौहार राखी को त्यौहार मानो जात। सबइ घरन में बैनन के लानें ईको विशेष महत्व रात। हर बहिन चायें बूढ़ी काए न होय बा चाहत कै मैं सोउ आज के दिना अपने भइया की कलाइ में एक प्रेम को डोरा बादों। जो त्यौहार भइया वेन के प्रेम को अनूठो प्रतीक है ई दिना भइया बहिनन के जीवन भर की रक्षा करवे की प्रतिज्ञा करत, ई से बड़ी प्रेम की गैराइ औ का मिलहै।

कजरिया - सावन के दूसरे दिना जो त्यौहार मनाओ जात। ई दिना नागपंचे हाँ खप्पर में वोई कजरिया (ज्वारे) लेंके नदिया तलवा में सिराई जातीं और उनइ में से कछू लेंकें एक दूसरे हाँ दइ जातीं, कँऊ कँऊ अखाड़न में कुस्ती सोइ होतीं जिनमें गांवन-गांवन से आए पहलवान कुस्ती जीत कें इनामें लेत। ई के पाछें जा बैज्ञानिकता छुपी दिखात कै जब हमाइ मंदाग्नि रात, असमय हमाए नौजवान (नई पीढ़ी) हाँ अपने सरीर हाँ वरजिस करके सबल बनाए रखो चाइये जी से हमाए सरीर को बल न घट पाए। संगे कजरियन सें जौ अंदाज लग जात के आसों फसल कैसी हूए।

हरछट - जा साउन की पूने के बाद छटें हाँ मनाइ जात। ई दिना जनी बिना जुतो - पुवो नाँज खाके उपासी राती जी में मउआ के फूल अटककें खाये जात। लुंगाई एक निश्चित जंगा इकट्ठी होके गाड़ी गइ हरछठ की पूजा सात भांत के नाजन हाँ (गेऊ, चना, ज्वार, वाजरा, चाउर, जवा, तिल औ मउआ) भूंज के करतीं हैं। सँगे किस्सा व गीत गाती जी को उद्देश्य जौ रात के घरै कभउँ धान्य की कमी न परै। एई में जा वैज्ञानिकता लुकी के ई भादो के मइना में जाँ लौ अन्न बचाउत बनै बचाओ औ मोटो नाज भुजे मउआ तिली खांव जी से हमाओ पेट खराब न हो पाये औ कऊ हो लो जाय तो जे मउआ के फूल उए अवढारे सइ करदें। काए से जे मउआ सबसे जादा पाचक औ पोस्टिक होत।

कनइया आठें (जन्माष्टमी) - ई हाँ को नइजानत। गली गली में लरकावारे गाउत फिरत हुक्कू हुक्कू पालकी जै कनइया लाल की जा हरछट के दूसरे दिना मनाइ जात ई दिना सबइ घरन में से एक दो सदस्य उपासे रात। रात के खीर लुचइ साग आदि साजे साजे पकवान बनाके औ कनइया जू को जनम करकैं उनकी पूजा करकैं औ प्रेम से उनइ को प्रसाद पाउत। ई की वैज्ञानिक्ता उपढारी झलकत के ई मौसम में खीरा जैसे पानीदार फल कौ सेवन करके अपने पेट की मंदाग्नि हाँ सबल बनाए राँय। औ दही के पंचामृत के संगे पंजीरी खाके अपनी की पाचन शक्ति की थांय मिल जात।

तीजा - जौ त्यौहार जब लगभग बरसात के मौसम की समाप्ति होन लगत तबइ बुन्देलखण्ड में लुगाई निर्जला उपासी रैके इ व्रत हाँ मनाउती जीसे पूरे बरसात में जौन अटर पटर खाकें कब्जियत आदि भइ होत व चौबीस घंटा कछु न खाके औ निर्जला रैके पैट के सवरे रोग खतम करवे को प्रयास करो जात। औ जैसे पार्वती जू ने निर्जला उपासो रैके शंकर जू हाँ पावे के लाने जौ व्रत रओ तो उसइ लुगाईं अपनौ मन चाओ वर पाने के उद्देश्य से इये करतीं जे दोइ चीजे धरम औ बैज्ञानिकता एक दूसरे की इतनी पूरक राती कै जी हाँ जानकारइ जान कसत ऐरा गेरा नइ।

रिक पाँचें - जा भादौं सुदी की पांचे हाँ मनाइ जात। ई दिना लुगाईं आदमी अपने पुराने ऋषियन की पूजा करत औ ईसें जौ जान परत कै जैसे अपने ऋषि आयुर्वेद के सहयोग से सैकरन साल जियत रात ते ऊसइ हमाओ स्वास्थ्य बनो राय।

संतान सातें - जौ त्यौहार ऋषि पंचमी के तीसरे दिना मनाओ जात। सबइ सौभाग्यवती जनी अपनी संतान की सुख समृद्धि की कामना करत भइ ई व्रत हाँ करती है। ई दिना चांदी की नई चुरिया बना के रखी जात औ बाद में सबई जनी ई हाँ पेरती हैं चाँदी सपरवे सें सरीर के चर्म रोगन से बचो रात सँगै ओज सोइ बड़त रात ऐइ बहाने शरीर में चांदी के गुन सरीर हाँ फायदा करत रात। अलग से चांदी सोने की भस्में नइ खाने परती।

महालक्ष्मी - श्राद्ध पूर्णिमा के बाद आठे हाँ जौ त्योहार मनाओ जात। ईमें लुगाई उपासी रैकें सामके माटी के हाथी की पूजा करती काए से ऐसी मान्यता है कै द्वापर में कुन्ती ने महराज इन्द्र के एरावत हाती की एइ दिना पूजा करी ती। बरसात के दिन बीत गए सो जोन जनावर पानी सबसे ज्यादा पियत उए पूजके जौ इसारो देयो जात के अब पानी की बरबादी न करियो क्रायसें अगर एइ पानी हराँ हराँ साल भरे लो चलाउने।

नौरता - अगहन महिना के शुक्ल पक्ष की परमा से नोमी के जो त्योहार चलत इए नारे सुअटा सोइ कात ईमें मुहल्ला भरे की क्वारी बिटियाँ अदयारें उठकें झार पोछ कें जा नौरता कौ खेल खेलतीं उत गोबर से लीप कें शंकर पारवतीं (पंथौला-गौर) की पूजा वन्न-वन्न के चौक पूरकें करतीं। ईसें पूरे बुन्देलखण्ड में लोक संस्कृति के दरसन हो जात।

दशहरा - जौ त्यौहार बड़े अनूठे ढंग से मनाओ जात। ई दिना गाँव गाँव में हर घर में मान्स अपने-अपने दुआरे पान औ लोंग सुपारी धर के बैठ जात औ गाँव के सबइ जने एक दूसरे के घरै पान लोंग सुपारी खावे जात औ एक दूसरे सें मन कौ सबइ मलाल बैर बुराइ निकार कें गरे मिलत, बड़न के पाँव छूकें, आशीष लेत ईसें जौ सिद्ध होत कै आज के दिन बुराई पै भलाई की विजय भई ऐई से इहां विजय दसमी कओ जात अब देखी जाय तो आज सें पान पूरी तरा पक जात औ इसे बैज्ञानिकता के तौर पै पान के सबरे गुण सरीर में आजइ सें लाभ करन लगत इके पैला पान कच्चे जौन कोनउ करम के नइमाने जात नइ खाए जात ईकी एइबैज्ञानिकता है।

शरद पूने - अगहन मइना के आखिरी पूने शरद पूने के नाव से जानी जात। ईमें लोग-मान्स उपासे रैकें खोवा शक्कर के सात बड़े खोवा के लडुआ बनाके तुलसी की पूजा करत जीमें एक लडुआ गर्भवती लुगाइ एक लडुआ मंदिर एक अपने पति हाँ एक अपनी सखी हाँ एक कोनउ लरका हाँ और एक खुद खाकें व्रत पूरौ करत। ई तरा जौ 'वसुधैवकुटुम्बकम्' हाँ साकार करवे कौ पर्व है। संगे एई दिना सें जाड़े की रितु की सुरुआत मानी जात, अब जौ जाड़े के आउतनइ खोवा व शक्कर खाए सै जौ सरीर में कोनउ विकार न झलके समझ लो अबे हमाइ जीवनी शक्ति ठीकठाक है, ऐई ई की वैज्ञानिकता है। नइतर उसे सर्दी हो जाओ चाइये जौन पेट खराब होवे को इसारो दें तो काए सें सर्दी होवे को मतलबइ पेट खराब होवो है।

करवा चौथ - लुगाई अपने सुहाग की लम्बी उम्मर के लाने जौ त्यौहार मनाउतीं। पूरे दिना निर्जला उपासी रैकें रात कें चन्द्रमा के दरसन करकें पति परमेसुर की पूजा करकें उनइ के हाँत सें पानी पीकें उपास टोड़तीं फिर भोजन करतीं यानी कऊँ तनक मनक कौनऊ कसर रेइ गइ होय तौ जा निर्जला रैकें पूरी तराँ सरीर कौ सोदन करकें खतम कर दइ जाय एई ई कौ राज है।

धनतेरस - कइ गई जौन दिन से आए दिवारी पेलमपेल फिर करो बियारी। यानि अब पूरी तरां सरीर बनावे को मौसम आ गओ जाड़े अपने रंग पे आ गए ईसे जो त्यौहार दिवारी के दो दिना पेला मनावे की प्रथा है आज के दिन सबइ घरन में कोनउ न कोनउ धन चाये वो चांदी सोनोहोय चाए बासन भाड़े हो खरीदवे की प्रथा ई बहाने घर में हराँ हराँ धन जुरत रात औ उदार लेवो देवो वरजित है ईसें जा उदार की आदत छूटत रात एइ इ त्यौहार की विशेषता है और आजसें मन-मन कौ खा पी सकत।

दिवारी - जौ त्यौहार हिन्दुअन को सबसे बड़ो त्यौहार मानो जात, और जौ बरसात के तुरतई बाद में आउत है, ईके मनावे के लाने मइनन से तइयारी होन लगत। ई के बहाने घरन की सबइ तंरा से अच्छी खासी सफाई होकें चूना कलइ से साजी साजी भांत-भांत की पुताई करी जात जीसें बरसात के दिनन में लगे सवरे मकरजारे छूट जात कोनउ विसेले कीरा पतींगा घरन में पैदा हो गए होए तो वे चूना कलइ के प्रभाव सें अवढारे मर जात एइ के संगे जौन इ की पूजा से शुद्ध घी के दिया जराये जात ऊसें पूरो वातावरण जीवाणु रहित शुद्ध और पवित्र हो जात साल भरे के लाने फिरसें जौ त्यौहार पूरे वातावरण हाँ शुद्ध कर देत।

इन्छा नौवी - जा कार्तिक शुक्ल पक्ष की नौमी तिथि हाँ मनाइ जात। अपने देस में औरा जी हाँ सबइ अमरत फल कात और जौन अपने आप में आयुर्वेद के अनुसार एक रसायन है। ऊ ई तिथि हाँ पूरी तराँ खावे के लाने परपक्क हो पाउत। ईसें अपने पुरखन ने ईकौ महत्व धरम सें जोर कें ई पेड़े हाँ जी हाँ अपुन सबइ औरी कात की पूजा करी जात। बुन्देलखण्ड की सवइ जनी आज के दिना ईकी। पूजा करके ई के तरें बैठकें भोजन करतीं जी से ई को हमें पूरो पूरो लाभ मिले और हमाई समझ में आज सें औरा खाये जाँय।

बुड़की (मकर संक्रान्ति) - एई के संगे आगे पीछे जो त्यौहार मनाओ जात। कवउ पैला तौ कवउँ बाद में पै ई त्यौहार से अब फिर सूरज करौटा लेन लगत और जाड़ो खतम होवे को समय आउत इसे मौसम बदलवे को हमाए ऊपर कोनउ असर न होवे सो ई दिना जब सूरज मकर राशि ना कत ओइ समय हमाए पुरखन ने सपरवे कौ विधि-विधान बना दओ और ई सपरवे सें कोनउ नुकसान न होय सो संगे तिली गुर के लडुआ और तिली के तेल से बने खुरमा पपरिया, ढडूला सबइ कछू खा कें सरीर हाँ पूरी पोस्टिकता देवें।

बसंत - जौ त्यौहार माघ शुक्ल पक्ष की पाँचे हाँ होत। ई दिना से जाड़े खतम माने जात, ऐइ से पुरखन ने ई दिना पीरे उन्ना पैरवे को विधान बनाओ। अब सूरज हरा हरा जादाँ गरम लगन लगत सो ऊकी गरमी अवढारइ हमें मिलत कारे रंग की जरूरत नइयाँ। जो गरमी हां सोखत ते अब उसे हल्को रंग पेरो संगे नइ चनन की भाजी वेलपत्री जवा की वालें धतूरो आदि आदि चीजन से ई त्यौहार में पूजा होत जौन सरीर व पेट के लाने सबसे जादा फायदेमंद रात, जेसइ चना उसइ बेल, उसइ जवा सवइ पाचन हाँ बल देवे वारे व हल्कौ भोजन कहाउत ईसें इने पूजा में चड़ाके आज सें खावौ सुरू करो जात। जीसें हमाए पेट में कोनउ विकार न होन पांए।

महाशिवरात्रि - पेला के बूढ़े पुराने मान्स कान लगत ते के आज से ठंड शिव शिव करके कुआ में गिर परत। आज सें कुआँ कौ पानी जूड़ो लगन लगत।

होरी - होरी साल कौ आखिरी त्यौहार मानो जात काए सें जौ त्यौहार फागुन की पूने से पाँचे लौ धुड़ेरी और रंग पाँचे के रूप में मनाओ जात। ईकी सबसे बड़ी खासियत जा रात कै सबइ हाँ जौ त्यौहार अपने मन की बुराई हाँ प्रेम की आग से जरा के खतम करकें सब पै प्रेम कौ रंग डारो जाय, ऐई सें जौ रंग को त्यौहार कओ जात और उसे देखो जाय तौ ई दिनालो छेवला यानि टेसू के फूल (पलास के फूल) फूलन लगत जिनको रंग बनाके हमाए पुरखन ने एक दूसरे के ऊपर डारवे की सीक दई जीसे सरीर के सबइ चर्म रोग अवढारे बिना दवाइ के मिट जात और गर्मी की लपट उमस सें हमें वचाउत रात। कान लगत कै जों कउँ लपट लग जाय तौ पिसुआ के फूल और सकसा (सूखी चनन की भाजी) तरवन में मले से लपट ठीक हो जात ई सें आज के दिना ई पिसुअन के फूल कौ सबसे जादा महत्व मानो जात।

- सरानी दरबाजा के बाहर, छतरपुर (म.प्र.)

आधुनिकता के फेर में लुप्त होते बुंदेली-शब्द

- सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

अनाबौ = नारियों का केश धोना
अथानों = अचार
अहानौ = लोकोक्ति
अटका = पहेली, जरूरत
अठाई = ऊधमी
अटावौ = अनुभव होना
अटक कें = जानबूझकर
अटका बिबूच = आकस्मिक जरूरत
अखल-बखल = आकुल-व्याकुल
अगरासन = दान हेतु पहली रोटी
अंत पंत = अन्यत्र
अथय = शाम को
अंतै = दूसरे गाँव या स्थान
अनुवाँ = उपद्रव को छोड़/दोषारोपण
अत्त = अधिक सताना
अनार = शैतानी, अधम
अनारी = शैतान, ऊधमी
अतपर = बीच में, न ऊपर न नीचे
अदबीच = आधे में, बीच में, पूर्णता से पूर्व
आगौनी = आतिशबाजी/बारात का स्वागत
इक जाई = एकत्र, योग
इकड़ा = अकेलेपन को पसंद करने वाला
इकडू = अकेलेपन को पसंद करने वाली
इकड़ दुकड़ = अकड़ना, ताव दिखाना
इकमिल = सबको मिला देना, छूत व अछूत को मिलाना
इकारी-इकारी = दुबली काया का/की
इतराबौ = घमण्ड करना
उचलाचाली = ऊधम
उचक्का = उठाईगीर, चरित्रहीन
उचक्कोंइँ = उठाईगीरी
उरइयाँ = भोर की धूप
उरीलवौ = केश सुलझाना
ऊँछवौ = कंघी करना
उराव = हर्षयुत उमंग उत्साह
उकास = फुरसत
उखम = उमस
उदमया = ऊधमी
उसनींद = अर्ध निद्रा

ऐंड़वेंड़ = अटपटा
ऐंगर-ऐंगरें = समीप, पास में
औछौपन = संकीर्णता, छोटापन, नीचता
औखद = दवा
ओंन पोंन = अपूर्ण
क्यांयें = कहाँ
केंना तौ = कहाँ तो
ककवा-ककइ = कंघा,कंघी
कड़ियल = हुष्ट-पुष्ट, कड़ी देह वाला
कलदार = रुपये का सिक्का
कलारवौ = दुखभरी आवाज करना/ थोड़ा तैल/घी डाल तवापर सेंकना
कलेवा = नाश्ता
केंनी = वस्तु क्रय हेतु दिया गया अनाज
करतूत = किया गया गलत काम
कारोंच = कालिमा
कारख = कालिख, अपयश
कुसगनया = जिसका देखना अपशकुन हो
कुसगनयाऊ = जिसका देखना अपशगुन जैसा हो वह स्त्री
कुटैलयाऊ = सदा पीटी जाने वाली स्त्री
कुतका दिखावौ = कुछ न देना
कुजानें = अनजान बनना, पता नहीं
कानों = बड़े आ की मात्रा, कहाँ तक, एक आँख का
कूताँ = बिना नापतौल अनुमान से
कैबौ = कथन, वचन
कटसिर्री = अधपगला
कुड़मुता = गलत काम करने वाला
कुड़मुतू = गलत काम करने वाली
खस्मामुरी = (गाली) पति को खा जाने वाली
खुरूरू = नारियल की गरी/गिरी
खसम करवौ = दूसरा पति अपनाना
खालें = नीचे
खटोली = चारपाई
खमकें = रुक रुककर, धीमे
खड़ें खड़ें = तुरंत, खड़े होकर के
गँधाबौ = बदबू देना
गजबीती = असामान्य, असाधारण

गजा साई = पुराने चादी के रुपये वाले सिक्के
गिट पिट = अस्पष्ट
गपड़तान = गप्पें करना, अशुद्ध
गड़इ = लोटा
गानेरु = ग्रहण काल में पैदा, अपंग
गत = हालत
घप्पू/घपोला = कम बुद्धि वाला
घमैल्या = धूप में मुरझाया, सिकुड़न भरा
घामौ/घाम = धूप
घरइया = पति, घर के लोग
घंटी = छोटा लोटा
घरघूला = बच्चों के बनाए मिट्टी के घर
घरघुसा = अधिकतम समय घर पर रुकै
घूम घुमारौ = बड़े घेरे वाला
घुमाड़ौ = पेट में वायु का घूमना
घुमकें = चक्कर खाकर
घुप्प = पूर्णतः
घासलेट = वनस्पति घी/मिट्टी का तेल
घैरा फट्टे = बनावटी दिखाऊ कष्ट जताना
चेंगारौ = बीमारी के बाद स्वस्थ
चुरू भर = गदेली भर
खोवा = मिली अँजुलि
चलाव = गौना, चलाइए
चलउआ = गौने की विदा को गए लोग
चलवइया = चालक
चूल = सम्पूर्ण परिवार मय अतिथि
चँगेल = शिशु को लिटाने की बाँस की बनी क्रमशः गहरी होती चौड़ी टोकरी
चकौटी = बाँस की बनी परातनुमा टोकनी
च्योंटा = थोड़ी मात्रा में गोबर की
चुरुभर = थोड़ा सा
चाल = ऊधम, चलने का ढंग
चाली = ऊधमी
चाँवने = चाहिए
चुलिया = सिर से पैर तक के अंगों के गहनों का एकत्र नाम
छरक = घृणा, नापसन्द होना
छ्योंटवौ = कम पड़ना, घट पड़ना

छुवा छुवौअल = बच्चों का छूने वाला खेल
छिपी = दर्जी, छुपी हुई
छन्न-छन्न होवौ = जी में जलन होना, पश्चाताप होना
छुन्न मुनइयाँ = बिना सहारे खड़ा होना
छनक्वारी = स्फूर्ति
छनकवौ = कम रह जाना, छनन छनन होना
जोर = वश, ताकत, समय (बेरा), तेजी
जमकें = बहुत, जोर सें
जुरैबौ = चुगली, जोड़ना
जेंवनार = भोज
जेंवौ = भोजन करना
झट्टइँ = शीघ्रतापूर्वक, जल्दी से
झेल = देर
झोंर = समूह, दल
झलर मलर = जगमग
झुट्टा = झूँठ बोलने वाला
झुट्टू = झूँठ बोलने वाली
झड़ास = शौच जाने की इच्छा
झाड़े जंगल = शौच
झुंड विदार = बिखराये केशों वाली
टटकरौ-टटकौ = पुष्ट शरीर वाला
टौनक टउआ = छोटे-मोटे काम
टिरउआ = कलावा
टिपरिया = टोकनी
ठक्काठाई = बिना लाज-शरम, बेलिहाज निःसंकोच
ठसक = घमंड
ठेलवौ = धक्का देना
ठूँसा = मुक्का
ठेंसकें = भरपेट, पूर्ण रूपेण भरा
डढ़ियल = बढ़ी दाढ़ी वाला
डरइया = डाल, डालने वाला
डरवइया = डरा देने वाला, डलवाने वाला
डीलडौल = शरीर, शरीर की बनावट, कद-काठी
डलिया = टोकरी, फूलों-फलों से भरी छोटी टोकनी
डाँड़ = भीतरी बड़े दाँत, दण्ड, पतवार
डँड़बौ = बाँटा जाना, विभाजन, दण्डपाना
डँड़ी = विभाजित
डड़ींच = लकीर
ढरौं = चलन, रीति-रिवाज, परम्परा

ढँड़कउआ = रंग को ऊपर से ढड़काकर लकीर बनाना
ढँड़क पैला = अस्थिर
ढँड़क = ढलान, ढालदार रास्ता
ढँड़कावौ = चलाना, आगे बढ़ना, गिरा देना
ढँककवौ = अनुत्तीर्ण होना, असफल होना, चलना
ततोस = गुस्सा
तुलवौ = वजन करना, कार्य हेतु, कमर कसना
तरइया = छोटा तारा, चश्मे का काँच, आँख की पुतरी
तुतइया = टोंटींदार लोटा
तातौ/ताती = तप्त, गर्म
तिपाइ = वेंच
तखतिया = नीचे बैठकर लिखने पढ़ने की छोटी मेज
तै तवा = तय होना, दो की सहमति
तुर्त फुर्त = तुरन्त
थराई = अहसान, कृतज्ञता
थरिया = थाली
थमके = रुककर
थिंगरयाऊ = थिंगरे लगी हुई
थिंगरा = फटी जगह पर सिला गया दूसरा कपड़ा
दमचक/दौर-पदौर = शीघ्रता
दौल्ला/दौरिया = बाँस का तसलानुमा बर्तन
दिसामैदान = शौच
दोगला-दोगलू = दो प्रकार की बात करने वाला/वाली, चुगली करने वाला/वाली
दइजार = (गाली) ईश्वर तुमे जलायें
दँदकवौ = चोंकना
धमधूसर = बहुत मोटा ताजा
धकापेल = बेरोकटोक, लगातार
धन्ना-सेठ = अमीर
ध्वाई = कसम (रामध्वाई)
धूर दैवौ = ललकारना
धँधकानों = नगर भोज (ददिकाँदौ), मटकी फोड़ उत्सव।
नरइया/नरिया = छोटा नाला
निपनियाँ = बिना पानी वाला
नचनियाँ = नाच करने की आदत
नचनारी = नर्तकी

नचना सुभाव = कमर मटकाने वाला, अस्थिर
नचा डारो = परेशान कर डाला
नपो तुलो = सम्यक, उचित, सीमित
न्योंतौ = निमंत्रण भोजन हेतु
न्योंतवौ = निमंत्रित करना भोजन हेतु
पाँत/पँगत = भोज, सामूहिक भोजन
पचोतरा = वस्तु की १०० इकाइ क्रय करने पर साथ में पाँच वस्तु निःशुल्क देना।
पुरापालौ = पड़ोस
पिंदोला/पिंदा/पिंदवा = स्त्री जैसी क्रियायें करने वाला पुरुष
पुछइया = खबर (हालचाल) लेने वाला, पूँछ-ताँछ करने वाला।
पठौनी = विदा के समय उपहार में प्रदत्त गेहूँ चना दालें आदि
पैठाई = बारात की साज सज्जा
पुँगरिया = नाक का स्वर्ण आभूषण
पुंगा/पोंगा = कम अक्ल, अल्पबुद्धि
पानी पंगल = जलपान
पाँवनें = प्राप्त करना है
पनयाँ = पानी का
पॉवने = अतिथि
फुट्टफैल = बिखरे, अलग-अलग
फटकी = धमकी, किबरिया
वरौंटी = सपना
बरोंटन = सपनेमें
बापोती = पिता से प्राप्त
बकझकिया = अधिक बोलने वाला
ब्याँन = प्रसव
बाँगी = लालच जगाना
बुलयावौ = प्रेम भरी चुहलमय बातें व क्रियायें
बुलउआ = पास आने को संदेश
बिलावौ = गायब होना, दही मथना
बिलात = बहुत, गायब होता हुआ
बासेरौ = पिछले दिन बना भोजन
ब्यावता = विवाहित
बींग/बींगें = कमियाँ, दोष
बिंगेल्या = कमियाँ निकालने की आदत वाला
बज्जुर = बज्र
बिबूचवौ = संशययुक्त होना,
बिबूंचन = अड़चन
बजरौटी = ढोलों की तीव्र आवाज लगातार,

भली-भली = हितकारी
भलें = चाहें,
भले = परोपकारी, सज्जन
भोंथरी = धार रहित (चाकू, कुल्हाड़ी)
मउआ-मूसर की = इधर उधर की गप्प
भर्त = भुरता
भन्ना = फुटकर पैसा रुपया
भुमकें = चक्कर खाकर
भँड़या-भँडउ = चोर-चोरनी
भँड़याई = चोरी
भाँड़ = नाच गाना स्वाँग नौटंकी करने वाले नर्तकियों के साथी, हिजड़े
भड़ेंती = भाँड़ों का अभिनय प्रदर्शन हास परिहासयुत
मात = वर्ण की मात्रा, माँ, देवी माँ
मरगुल्ला/मरगुल्लू = दुर्बल, क्षीणकाय
मिठ बोला = मीठा बोलने वाला
मुलयावी = मोल भाव करना
मुखारी = दातौन
मुस्क्याँन = मुस्कान
मूसरचंद = मूर्ख
मसकरया = मजाक करने वाला
रेलमपेल = भीड़-भाड़
रुगैल्याऊ = रोगों से भरी
रखैल = बिना ब्याह की पत्नी
राइ भरौ = शिशु
रत-रत = रहते हुए
रुगंटयाई/रुंटयाई = बेईमानी
रुखंट = रुखापन
लिहाजन = संकोचवश
लोला = कम अक्ल, नादान
लजैल्याऊ = कार्यों से लज्जित करने वाली
लुखड़िया = जड़ी-बूटी
लड़इया = सियार, लड़ाकू स्वभाव वाला
लाड़लौ = बहुत प्यारा
सिरी = पागल
सिर्रयाट = पागलपन
सिड़ी = सुस्त, आलसी
सँगाती = साथी
संगामित्तू = मिलकर के
सुभाव = स्वभाव
सिलविल्ला = सूझबूझहीन
सेत-सुपेत = सफेद
सुपेती = रजाई
सेंतमेंत = बिना दाम
सुलयावौ = सहमत करना
सावकौ = मौका
सब्यार = संपूर्ण
सोंजिया = व्यापार में संग में धन लगाने वाला
समैया = उत्सव
साग = शपथ (विद्या साग)
सर्र भर्र = जल्दबाजी
सतजतू = अलग जाति के कई मर्दों के संसर्ग में रहने वाली स्त्री
हलाकान = परेशान, त्रस्त
हिली मिलीं = संग में
हरइँ-हराँ = धीमे
हरियर = हरा-भरा
हलर-मलर = कमजोर
हितुआ = हितैषी
हँसतोरा = हँसी लगाने वाला

- आदर्श मार्ग, शुक्लाना, छतरपुर (म.प्र.)

दद्दा-बाई बता रये

- डॉ. हरिसिंह घोष

कीरे सें लग बिटिया सुन रई, दद्दा बाई बता रये।
सोरई में लग जाने मौड़ी, लड़का ढूड़ न पा रये।।

जमींदार कौ लरका ऊसें, करत-धरत कछु नइयाँ।
पढ़वे-लिखवे की कैलो पै, ओइ ठिकानों नइयाँ।।
देखे-सुनवे में मौड़ी सें आठाना भर नइयाँ,
घर-द्वारी, कछु ठीक हतो पै, बेई उभाँड़ौ गा रये।।१।।

ऐसी नोंनी मौड़ी अपनी ऐंसइ काँ दै दइये।
घर में भलैं कछू न होवै, लरका नौनो चइये।।
लरका वाले आज-काल के सूधें बात न बोलें,
रैबे चाय टपरिया नइयाँ, सुरसा सौ मों बा रये।।२।।

बिटिया के अनुरूप सुभग वर मिलै व्याव तब कन्ने।
गाने खेत धरौ, घर बैंचौ अपनो काय बिगन्ने।।
इतनी कात चिबक दद्दा सें बाई सुबक धर रोई,
बिटिया ठाड़ी कीसें का कय तरतर अँसुआ जा रये।।३।।

- घोषयाना, छतरपुर (म.प्र.)

गाँवों की ओर

- मुक्ता प्रसाद गुप्त 'रत्नेश'

साँझ भई ग्वाल बाल हँक चले ढोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।
राहों में मौज मस्ती सबै रही भा, गोधूली बेला में धुन्ध गयी छा।
धुन्ध कों बादल समझ नाच उठे मोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
सारन में गायें बाँध दूध दोंय ग्वाल, रोज गोरस पियें बतरायें चौपाल।
लासानी न्याय मिले खुशियन कौ शोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
यहाँ भुंसारें उठ बैठें नारियाँ रोज, नये नये गीत गाँयें लायें खोज खोज।
पीसलें निकरन न पाये सूरज की कोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
पानी भरें कण्डा पाथें और हार जायें, राई भरी लयें तोऊ खेत कों रखायें।
मेंड़न पे बैठ नित करें खूब शोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
हरे भरे खेत हैं पहाड़न की गोद, नर खेतन की पारें डारें माटी कों खोद।
ग्वालिनियाँ गीत गायें होकें विभोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
नदियाँ किनारे पीपल की छाँव, दिखें प्रेम के मेला चहुँदिखि ठाँव ठाँव।
वासन्ती वायु रही सबै झकझोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।
फग्गुन में चौपालन फगुवा गायें लेद, दिखाई न देत यहाँ कछु जाति भेद।
परस्पर प्रीति कान दिखे ओर छोर, गाँवों की ओर अपने गाँवों की ओर।।

- आलमपुर, भिण्ड (म.प्र.)

मोय लै देओ चुनरिया मोरन की

- श्रीमती ब्रजलता मिश्र

आदर्श एवं सुखी परिवार की नींव पति-पत्नी के पारस्परिक सहयोग तथा प्रेम पर आधारित है। वे अपने विवाह में अग्नि के सात फेरे लगाकर सुख-दुःख में जीवन-पर्यन्त एक-दूसरे का साथ निभाने का संकल्प लेते हैं, जिसे आजीवन निभाते हैं। पारस्परिक प्रेम, सम्मान और विश्वास से परिवार पल्लवित और पुष्पित होता है। कभी-कभी उनकी मीठी नोंक-झोंक जीवन को गति प्रदान करते हुए सरसता लाती है।

प्रत्येक नव-विवाहित युवक तथा युवतियों का सपना होता है कि उनका जीवन-साथी सुन्दर, सरल, सुशील, गुणी और शौकीन हो। ऐसी ही एक नई दुल्हन अपनी सहेलियों के साथ बैठकर अपने शौकीन दूल्हा की प्रशंसा में कह रही है कि - 'बलम सौकीना मिले मोरी गुइयाँ।' वर्षा ऋतु में जब काले बादल घिर आते हैं और उस समय शौकीन पति पगड़ी बाँधकर कहीं जाने को तैयार होते हैं तो बारिश में भींगने की आशंका से वह उन्हें रोकती है - 'मोरे राजा न बाँदौ पाग, दबन भई बादर की।' साथ ही, उन काले बादलों से बरसने का आग्रह भी करती है, ताकि उसके प्रियतम घर पर ही रहें। वह कहती है -

बरस जा दो बुँदिया रे।
दो बुँदियाँ रे मोरे कन्ता घरइ रै जाएँ रे।
बरस जा अरे हो।

पति अपनी प्रिया की प्रेममयी मनुहार से वे रुक जाते हैं। लेकिन घर बैठे तो गृहस्थी नहीं चलती। जीविकोपार्जन के लिये तो उन्हें परदेश जाना ही होगा। सावन के महीने में जब वे जाने की तैयारी करते हैं तो वह पुनः अनुरोध करती है कि अगले वर्ष का सावन परदेश में बिताना। इस वर्ष सावन में यहाँ पर ही रहो आसों के सॉउँन राजा घर करौ, पर के करियो बिदेस। पत्नी के हाथों बना स्वादिष्ट भोजन पति की कमजोरी होती है। इसी का लाभ उठाकर वह प्रलोभन देती हैं - 'जाओ तौ राँदौं राजा खिचरी, रैहौ तौ राँदौं रसखीर।'

इस लालच का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे नौकरी के लिये विवश हैं। यहाँ कैसे रुक सकते हैं? उनके जाने पर प्रियतमा प्रतिदिन काले बादलों को देखकर अपने प्रियतम को लाने का सन्देश देती है। उसके शब्दों में - 'कारे बदरा रे! पिया कौं लैकें आ जइयो मोरे देस।' मेघदूत के माध्यम से वह अपने मनोभावों को व्यक्त करती हैं। किन्तु निर्मोही प्रियतम की बहुत प्रतीक्षा के बाद भी कोई पाती नहीं आई, तो बरबस ही कह उठती है - 'प्रीतम की पाती ना आई, आय गई बरसात रे।'

धीरे-धीरे समय बीता। वर्षा ऋतु के पश्चात् शरद, शिशिर और हेमन्त ऋतुएँ भी चली गईं। ऋतुराज बसन्त में पलाश के फूलों को देखकर उस विरहिन की वेदना देखिये, जो अपने प्रिय की प्रतीक्षा में होकर कह रही है - 'लख फूले पलाश जिया दरके। घर आए नहीं अब लौं घरके।' परदेश में धनोपार्जन करके कुछ दिनों बाद प्रियतम आए। प्रिया को अति दुर्बल देखकर जब कारण पूछा तो वह बताती है कि विरह-वियोग में उसका वजन फूल के बराबर भी नहीं रहा। वह कहती है -

'फूलन जिन तौलौ मोय समलिया फूल बिरोबर ना रही।
जैसी पैलें हती सो ना रही, मोरी पिंजरा हो गई देहरी।'

इस तरह प्यार-मनुहार से दिन बीतते रहे। एक दिन उसने कुछ दिनों के लिये मायके जाने की प्रियतम से अनुमति ली। जब वह सामान लगाने लगी तो वह देखती है कि - 'मायके खों डुलिया सजाई, बलम हिलकीं लै-लै रोवें।' उसके मित्रों ने जब रोने का कारण पूछा तो उसने बताया कि अब उसे रोटी बनाकर कौन खिलाएगा? वह कहता है - 'धना चलीं मायकें को पैहै फुलकियाँ?'

भावुकता में आकर प्रिया भी मायके जाना निरस्त कर देती है। अपनी सहेलियों के साथ बैठकर आधुनिक तौर-तरीकों को सीखते हुए धीरे-धीरे वह भी फैशन करना सीखती है। एक दिन उसके पति की मित्रमण्डली का चाय-पानी हो रहा था, उसी समय उसने एकान्त में उनको जताया कि -

'ऊपर रेडुआ कौ तार, नैंचे चाय-पानी।
पिया! हमखों लिया दो सिंगारदानी।।'

प्रियतम ने श्रृंगारदान खरीदकर दिया तो पत्नी सुरुचिपूर्ण ढंग से श्रृंगार करने लगी। अपनी सहेलियों की होड़ में वह अपने पति से सोने के कंगन बनवाने का आग्रह करने लगी। एक दिन थके-माँदे पति को द्वार पर आते देखकर उसने किवाड़ बन्द कर दिये -

हँस दै लए झँझ किवार, सजन! ककना बनवा दो सोने के।

जब सोने के कंगन नहीं मिल पाए तो वह चाँदी की करधनी के लिए जिद करने लगी - 'सैंया! लै दै करधनियाँ, मँगाय दै करधनियाँ, में तोसें बिरजी।' शौकीन पति अपनी शौकीन पत्नी की फरमाइशें कहाँ तक पूरी करे? ईमानदारी की नौकरी में जब शौक पूरे नहीं हो पाये, तो वह जुआ खेलने लगा। इस दुर्व्यसन के फलस्वरूप धीरे-धीरे उसने पत्नी के आभूषण गिरवी रखे और बेचे। अब पत्नी भी कहाँ तक चुप रहती? एक दिन उसने याद दिलाया -

जुआ में धर दई बिंदिया मोरी, अब लौं नहीं उठाई।
बिक गई नाक की नथनियाँ, में तोसें विरजी।

जब पत्नी ने पति के अवगुण गिनाये तो उसे बहुत बुरा लगा। उसने पत्नी से हँसना-बोलना छोड़ दिया। यहाँ तक कि पत्नी द्वारा सरौता से काटी सुपारी भी नहीं खाते। पत्नी इस नीरसता में कैसे रह पाती? एक दिन उसने अपनी सहेलियों को बुलाया। सभी सहेलियाँ

रंग-बिरंगी चुनरियाँ पहनकर आईं। उसके पति घर पर नहीं थे। मनोरंजन हेतु गाना-बजाना आरम्भ हुआ। उसने गाया - 'हमसें बलम सें ऐसी बिगरी, मोरी कतरी सुपारी न खाएँ।'

सहेलियों ने पति में बचपना मानते हुए गाया -

'ऐसी जमाने की रीत बलम छोटे पाए री,
छोटे खों दै दो गुल्ली डण्डा, सड़किया पै जाखे लैरी।'

एक दिन की बात है कि भूख लगने पर पत्नी के मायके से आये हुए लड्डू वे कैंथ की तरह फोड़कर खा रहे थे। जरा सोचिये, यह दृश्य देखकर किसे हँसी नहीं आएगी? इसी का वर्णन पति ने सुनाया -

बड़े मिजाजी राजा मोसें मुखइ न बोलें।
ऐसे बेदर्दी राजा मोसें मुखइ न बोलें।
मोरे ही मायके सें आए लडुआ,
बैठे कैंथ-से फोरें, मोसें मुखइ न बोलें।

सभी सहेलियाँ मिलकर हँसती रहीं। फिर वे सब आपस में एक दूसरे की चुनरी की प्रशंसा करनें लगीं। बातों-बातों में इसकी चुनरी देखनी चाही तो इसने कहा कि मेरे पास चुनरी नहीं है। सहेलियों ने कहा कि अपने पति से कहकर एक सुन्दर सी चुनरिया मँगवा लो। वह हँसकर बोली कि मेरे पति चुनरी की खरीद में कुछ नहीं जानते, क्योंकि -

बलम मोरे बारे के बरेदी रे।
बारे के बरेदी बे का जानें चुनरिया के भेद रे
बलम मोरे हो!

उसी समय एकाएक उसके पति घर में आ गए। उन्होंने सुना कि उनकी पत्नी उन्हें बरेदिया अर्थात् चरवाहा कह रही है, तो उन्हें बहुत बुरा लगा। यह बात उन्होंने अपने मन में रख ली।

कुछ दिनों के बाद पति को प्रसन्न देखकर पत्नी ने कहा -

मोय लै देओ चुनरिया मोरन की।
मोरन की रे पपीरन की।।

पति यह बात भूले नहीं थे। उन्होंने कहा - मुझे समय नहीं मिलेगा, तुम ही ले आना। एक दिन पत्नी बाजार गई और चुनरी लिये बिना ही लौट आई। पति के पूछने पर वह कहने लगी -'करत चुनरिया कौ मोल, बजजवा ने कैसी जिया मोय लओ।' पति को बहुत ठेस लगी। कुछ महीनों के बाद पत्नी को चुनरी पहने देख पति ने पूछ ही लिया -

बुँदकिन बारी छींट कहाँ से ल्याई?
कै तैने यार करौ रँगरेजा,
कै काउ छैला सें ठग ल्याई

पत्नी ने बड़े स्वाभिमान से उत्तर दिया -

ना मैंने यार करौ रँगरेजा,
ना काउ छैला सें ठग ल्याई।
नमएँ मईंना ललना भए ते,
मायके सें पच में आई।

यह सुनकर पति को अपनी भूल पर पश्चाताप हुआ कि उसने व्यर्थ में ही अपनी सच्चरित्र तथा देवीस्वरूपा पत्नी पर सन्देह किया था। उसने पत्नी से क्षमा-याचना की। पुरानी बीती बातों को भुलाकर वे दोनों फिर से प्रेमपूर्वक रहने लगे। पत्नी की समझ में आ गया कि -'तेते पाँव पसारिये जेती लाँबी सोर।'

अर्थात् जितनी लम्बी चादर हो, उतने ही पाँव फैलाना चाहिए। अपनी आय के अनुसार ही व्यय करना चाहिए। पति ने भी जुआ न खेलने की सौगन्ध खाई। सन्देह को स्थान न देने के कारण उनके परिवार की दीवारें सुदृढ़ हो गईं।

- ३५२, केशवकुल, नानकगंज, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

बुन्देली उत्सव २०१० में इन साहित्यकारों को सम्मानित किया गया

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०१०
(बुन्देली साहित्य हेतु)

◆ डॉ. अवधकिशोर जड़िया -

छतरपुर जिले के हरपालपुर में राजवैद्य श्री ब्रजलाल जी एवं श्रीमती ब्रजरानी के पुत्र श्री जड़िया का जन्म १७ अगस्त १९४८ को हुआ। आपने ग्वालियर से बी.ए.एम.एस. स्वर्ण पदक प्राप्त करते हुए किया। आपने आयुर्वेद चिकित्सा अधिकारी के रूप में ख्याति प्राप्त करते हुए सन् १९७३ से मंचों पर बुन्देली कविता पाठ प्रारंभ किया, जो आज भी जारी है। डॉ. जड़िया ने बुन्देली कविता को छांदिक व आलंकारिक सिद्धहस्तता से नई ऊँचाइयाँ प्रदत्त की हैं।

वंदनीय बुन्देलखण्ड, डॉ. जड़िया के श्रृंगार गीत, स्तुति की शब्दभूमि, गोपी-गीता, कारे कन्हाई के कान लगी है, उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं। आपका जबलपुर, छतरपुर तथा नागौद में नागरिक अभिनन्दन किया जा चुका है। इसके साथ मथुरा, ग्वालियर, आगरा, आदि स्थलों से विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया गया है।

राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान २०१०
(बुन्देली आलोचना हेतु)

◆ डॉ. परशुराम शुक्ल विरही

अक्षर आदित्य, साहित्य वाचस्पति, सहस्राब्दि हिन्दी सेवी सम्मान आदि अनेक सम्मानों से अलंकृत डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' का जन्म २५ मार्च १९२९ को तालबेहट (ललितपुर) में हुआ। तीस वर्षो तक परास्नातक शिक्षण और शोध कार्य का मार्ग-दर्शन करने के बाद वे म.प्र. की उच्च शिक्षा सेवा से निवृत्त हुए। लगभग सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित होती हैं तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित होती हैं।

आपके प्रकाशित ग्रंथ - अनथके प्राण, आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, आधुनिक कवियों के जीवन दर्शन, लोक संस्कृति अवधारणा और तत्व, संस्कृति के दूत, तात्याटोपे बुन्देलखण्ड में, बुन्देलखण्ड की संस्कृति, नवजागरण और साहित्य, बुन्देली लोकगीत और लोकसंस्कृति दोहा से बोली गजल आदि हैं।

खरी-खरी बातें-छद्म खोटे खलों की

- डॉ. रमेश चन्द्र खरे

आज हम एक विशाल व्यंग्यायन-व्यंग के बड़े घर में रहने को अभिशप्त हैं। चारों ओर समाज, साहित्य, शिक्षा, राजनीति या धर्म-कर्म के परिवेश में जो विद्रूपतायें, विरोधाभास और विसंगतियाँ व्याप्त हैं उनसे हर संवेदनशील हृदय करुणार्द्र होकर विक्षुब्ध है। हमारी विवशता एक विचार-क्रांति चेतना जगाने के सिवाय और क्या है? ऐसे में बुन्देलखण्ड के वरिष्ठ साहित्यकार एवं व्यंगशिल्पी डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया' के बुन्देली में ही एक वृहत काव्य 'खरी-खरी' ने १७५ पृष्ठों में ७०४ कुण्डलियों के कलेवर में एक व्यापक कथ्य को समेटकर अपनी वाग्विदग्धता से अभिनव शिल्प गढ़ा है। एक स्थापित समालोचक एवं निबंधकार के साथ व्यंग विधा में आपके तीन संकलन आ चुके हैं। तब 'खरी-खरी' की अन्तर्कथा अपनी स्पष्टवादिता से सभी को झकझोर देती है - किसी को अच्छी लगे या बुरी। एक समाचार पत्र के छतरपुर संस्करण में विवश आग्रह पर शरद जोशी के 'प्रतिदिन' की तरह यह स्तंभ भी लोकप्रियता की सीमा छू गया था। ये कटाक्ष किसी व्यक्ति पर नहीं, किसी घटना या प्रवृत्ति पर केन्द्रित हुआ करते थे। बुन्देली आंचलिकता में जन-मन को आन्दोलित करने वाला यह श्लाघनीय प्रयोग है।

पाठकों और सामाजिकों को सोचने-विचारने के लिए व्यक्ति और समाज के विविध रूप और पक्ष इसमें प्रतिबिम्ब हैं। बकौल कवि - ''आँखन देखी घटनाओं ने कई बार आँखों को गीला किया है, मन में आक्रोश से भरा है, भावनाओं को विचलित किया है। जब पीड़ा का प्रतिकार क्रिया या प्रतिक्रिया से नहीं हो पाता तब वह कलम के माध्यम से शब्दों में व्यक्त होकर समाज को जगाती झकझोरती है। पाँच वर्षों में लिखी पंक्तियों में से कुछ अंश यहाँ संकलित हैं। आइये हम भी उनसे कुछ रूबरू हों -

खरी-खरी का खरा कुंडलीचक्र आध्यात्मिकता से शुरू होकर आधुनिकता में मानवीय कमजोरियों पर कटाक्ष करते हुए, कभी निरभिमानी दूत की लघुता में महानता और कभी पत्थर के आघात सहन से मूर्ति की सुन्दरता के अन्योक्ति कथन द्वारा सद्संदेश देता है। एक कवि कथन भी है - 'मूर्ति वंदनीय है चूँकि उसने तराशे जाने का दर्द सहा है।' सँग्रह में कई शाश्वत सत्य बार-बार प्रकारान्तर से उभरे हैं - मनुस नहिं होत है समय होत बलवान। (छन्द-४६ जैसे-१३२, २२३, ३३७, ४२९ आदि) जिनमें लाक्षणिक रूप से समय साध्य शक्ति की उज्ज्वल संभावना का अलंकारिक चित्रण भी है - 'गगन बिजुरिया अंधकार को आँख दिखावै।' समय की बलिहारी, यह भी विडम्बना है कि कभी के स्वर्णाक्षरी सत्याग्रह में देखिये - '. ..... प्रगति की खाना पूरी। आग्रह रह गओ शेष सत्य से हो गई दूरी।' और आज धनलिप्सा इतनी बढ़ी की सब जान गये - 'लक्ष्मी भौतई चंचला, धारत कित्तउ रूप (५४) और फिर लक्ष्मी है अतिचंचला, रहत न एकउ ठौर' (४०७) स्वाभाविकतापूर्ण कथन है।

कवि आज की अपसंस्कृति से भी मर्माहत है, जिसकी सीता आतंकी रावण से प्रताड़ित है वह आतंकी नरकासुर का भी रौद्र रूपक गढ़ता है। (५०) 'कैसी बिगरी संस्कृति, कैसो सोच विचार' तथा 'नग्न नृत्य व्यापार, कष्ट में संस्कृति सीता' (६०) दृष्टव्य है। एक सामान्य भोक्ता की तरह 'दानवता ने जे गतिकर डारी' के साक्षात्कार का द्रावक दृश्य देखिए -

मानवता रस्ते मिली, भौतई दुखी मलीन।
अंग अंग घायल हते, मुखड़ा अतिशय दीन।

राजनीति की ओर मुड़ते हुए कवि आज के नये धर्म सेकुलरिज्म पर भी प्रहार करता है, जैसा कि प्रसिद्ध व्यंग्य कवि गोपाल व्यास ने घर में पूजा-पाठ, नमाज-बन्दगी, इबादत-प्रेयर के बाद बाहर सेकुलर धर्म अपनाने का रिवाज बताया है-

ओढ़ धर्म निरपेक्षता, कर रये बड़ो अनर्थ।
धर्म कर्म और संस्कृति सबई हो गई व्यर्थ।

क्या इसे अधर्म सापेक्षता कहें? अपने श्रद्धास्पदों के अपमान पर धन्य है हमारी सहनशीलता - 'जब साम्प्रदायिक भये राम, जमाना बेढब आया।' 'रावन धर्मनिरपेक्ष कै रये बड़े-बड़े ज्ञानी।' आज की अवसरवादी राजनीति में 'विकृत भये आदर्श नई पीढ़ी बरबादी' के अलावा क्या है? बस, 'सब खाँ चइये, पद पइसा सत्ता की गाड़ी। कोउ न पूछत अब जनता की फूटी हाँड़ी।' क्या विडम्बना है कवि ने इतने विविध कोणों से समाज को देखा है कि नये-नये आयाम उद्घाटित हुए हैं। हरिशंकर परसाई ने एक निंदारस की अवधारणा दी थी। कवि भी सहज प्रवृत्ति पहचानते हुए -

निंदा भौतई रस भरी, पोर पोर सुख देत।
मनो दसहरी आम कौ चूस चूस रस लेत।

कहकर स्याने दद्दा के जिन्दा का भी आधार वही मानते हैं -

जबरन खोजत खोट, करत बे सबकी निंदा।

लक्ष्मी महिमा तो वे पहले ही गा चुके थे। फिर गिरधर कविराय की तरह 'पइसा में दम बहुत है, पइसा को संसार' और 'पइसा से सब सुख मिलत, पइसइ कलह कुसंग' का लाठी जैसा गुणगान करते हैं। मायावी मीडिया को भी वे नहीं छोड़ते जो तिल का ताड़ और पर्वत को राई बनाने में माहिर है और प्रिंट मीडिया की अखबारी दुनिया के दृष्टिभेद के विरोधाभास को जाता है - 'एक कैत भारत उदै, एक कैत अवसान।' विकास या विनाश क्या मानें? उन्होंने आज 'वस्तु

हो गई है नारी, सारे जहान में' के बदले देवी स्वरूपा रूप को देखा। सत्ता में शतरंजी दावा करने वाले खेल में बजीर और पैदल का उलट-फेर देखा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के तिरस्कार पर भी बेचैनी दर्शाई - 'अपनी माँ को माँ कहबे में लाज लग रई', 'हिन्दी हिन्दुस्तान पूजिये जैसे माता।'

कवि की 'खरी-खरी' का फोकस देश के कैंसर भ्रष्टाचार पर है - 'जगा-जगा पै मचो है खुलकै भ्रष्टाचार', 'जाँ देखो ताँ हो रुओ निर्मम भ्रष्टाचार', 'जा अंधी सरकार, न दिखवै भ्रष्टाचारी' 'जायज भ्रष्टाचार को करबे को अभियान' आदि। ८२ से ३४२ तक कई छंद इस भंडाफोड़ यज्ञ की आहुति को समर्पित हैं। ऊपर ये उसकी संरक्षक विधायिका के भीतर के फूहड़ व्यापार के अवमूल्यन को देख कवि की आत्मा रोती है -

संविधान की आत्मा करवै हाहाकार। कारण?
मूल्य सबई खंडित भये, भ्रष्ट भये आदर्श।
संस्कार कलुषित सबई, बचो न सत्य विमर्श।।

महाभारत के पौराणिक मिथक के माध्यम से भी कवि वर्तमान शासन अनुशासन में हो रही खासी जंग की अन्योक्ति करता है और मिलजुलकर सबकी पोल खोलने के उपाय की संभावना बताता है -

आज की दूषित शिक्षा-पद्धति भी उनकी निगाह से अछूती नहीं बची। वे स्वयं शिक्षाशास्त्री हैं। क्या गिरावट है इसे खूब जानते हैं-

शिक्षाकर्मी बन गये, गुरुजन श्रेष्ठ महान
सरस्वती के पुत्र अब भये दाम के दास।
शिक्षक व्यवसायी बने, बैठे खोल दुकान।

१०४५ छंदों में कवि ने इस दुर्दशा को दिखाया है। सर्वशिक्षा अभियान और मध्यान्ह भोजन का भी यही परिदृश्य है। ऊपर से 'खुद अंधे आँखन वारेन को आँख दिखावैं।' 'अज्ञानी स्वार्थी देश को राह बता रये।' अब खोजिये निदान?

पत्रकार अधिकारी नेतन के सिंहासन।
वैज्ञानिक शिक्षक ज्ञानिन के गायब आसन।

यह है लब्बोलुआब-देश की वर्तमान निराशाजनक दशा का।

बरसैंया जी ने छन्द-छन्द, क्षण-क्षण, नये-नये क्षितिज को छूकर अपनी घूमती काव्य-धरा पर इतनी गति से उभारा है कि दृष्टि ठहर नहीं पाती। बेहतर होता कि वे कुछ उपशीर्षकों में कुछ प्रमुख विषयों को संजोकर 'व्यवस्था' पर एक सुसंपादित खंडकाव्य प्रस्तुत कर देते।

कुण्डलिया छंद में तीखे तेवर और तासीर के तथ्यों की यह कुण्डली जैसे अभिशप्त देश की एक नकारात्मक जन्मपत्री है। शिल्प की दृष्टि से कहा जाता है कि एक रोला और एक दोहा का यह छंद जिस शब्द से प्रारंभ होता है, उसी शब्द पर समाप्त होता है। कई जगह खरी-खरी में यह खरा है, पर कई जगह कवि स्वातंत्र्य का उपयोग करके इस व्यवस्था को तोड़ा भी गया है। काव्य में विंध्या की घाटी और बुन्देली माटी की सोंधी गंध बसी हुई है, पर एक जगह 'मिर्ची की कड़वाहट' (१३१) मुझे तो चिरपिराहट महसूस हुई। कुछ विद्वान पाठक प्रतिदिन प्रकाशित 'खरी-खरी' का पाठकर अपनी खरी टिप्पणी देते रहे हैं - यथा श्री वेदप्रकाश वर्मा

खरी-खरी वह कह सके, जिसके खरे विचार।
खरे काम के साथ ही, रखें खरा व्यवहार।

साहस और ईमानदारी व्यंगकार की पहली शर्त होती है, जिस पर गुप्त जी खरे उतरे हैं। देश सेवा एवं समाज सेवा मूल्य पर इस कृति को प्रसारित प्रचारित कर अपने कर्तव्य पालन हेतु वे बधाई के पात्र हैं।

एक व्यंग्य यात्रा है आजीवन अनन्त,
जिसका पाथेय पथिक का संकल्प है।
जितने सहयात्री हैं - 'चरैवेति, चरैवेति'
उनका रहस्योद्घाटन-ध्येय निर्विकल्प है।

कृति - 'खरी-खरी' (बुन्देली व्यंग्य काव्य)
रचनाकार - डॉ. गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया'

- ७३, विवेकानन्द नगर, दमोह (म.प्र.)

नई-नई पोथीं अपुन के लाने

- बुन्देलखण्ड का इतिहास (१२ भाग में) - लेखक- दीवान प्रतिपाल सिंह, सम्पादक - डॉ. बहादुर सिंह परमार
  प्रकाशक - श्री पृथ्वी सिंह बुन्देला छतरपुर, रु. ३६००/-
- अवतंस (खंडकाव्य) - श्रीप्रकाश पटैरिया 'हृदयेश'
  प्रकाशक - अभिनव प्रकाशन, छतरपुर, रु. ५०/-
- व्यास निधि राष्ट्रकवि पं. घासीराम व्यास
  प्रकाशक - व्यास स्मृति न्यास, झाँसी
- सामाजिक समरसता में मुसलमान हिन्दी कवियों का योगदान - डॉ. लखन लाल खरे
  प्रकाशक - रजनी प्रकाशन, दिल्ली, रु. २००/-
- बुंदेलकेसरी महाराजा छत्रसाल और उनका पन्ना राज्य - पं. रूपराज शर्मा, प्रकाशक - श्री १०८ प्राणनाथ मंदिर ट्रस्ट पन्ना, रु. ५०/-
- अरविन्द के फूल - पं. पन्नालाल उपाध्याय 'अरविन्द'
  प्रकाशक - सरस्वती सदन, कोतवाली बाजार महोबा, रु. १००/-
- बुन्देलखण्ड के कटक काव्य - डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त
  प्रकाशक - जनसंपर्क संचालनालय, भोपाल
- रस विमर्श - डॉ. लक्ष्मी पाण्डेय, सागर
  प्रकाशक - उर्मिल प्रकाशन, गाजियाबाद, रु. ३००/-
- हिन्दू-मुस्लिम एकता - डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी
  प्रकाशक - कृष्णा पब्लिसिंग हाउस स्लीमनाबाद, रु. ३००/-
- फ्रेम से बड़ी तस्वीर - डॉ. अश्विनी कुमार दुबे, पन्ना
  प्रकाशक - ज्ञान गंगा, चावड़ी बाजार, दिल्ली रु. २००/-
- संसदीय पत्रकारिता और हिन्दी प्रेस - डॉ. ललित मोहन
  प्रकाशक - सरोज प्रकाशन सागर, रु. ३००/-
- मीरा चरितामृत - अवध बिहारी श्रीवास्तव बस स्टैण्ड के पास, टीकमगढ़, रु. ५१/-

(शेष पृष्ठ १३८ पर)

समीक्षा -

भूले-बिसरे पात्रों को उजागर करता दस्तावेज : बुन्देलखण्ड का इतिहास

- सत्यम श्रीवास्तव

बीती सदी अस्मिताओं के उभार और उनकी अभिव्यक्तियों की सदी रही है। इस सदी में उन अस्मिताओं की शिनाख्त हुई जो इतिहास की तथाकथित 'मुख्यधारा' के नीचे कहीं दबी रह गई थी। निम्नवर्गीय (सब-अल्टार्न) इतिहास लेखन ने अपने आप में इतिहास की एक भिन्न प्राविधि और विषय-वस्तु के तौर पर न केवल सार्थक हस्तक्षेप किया बल्कि इतिहास लेखन में छूट गए प्रसंगों को मान्यता दिलाने में भी अकादमिक पहल की। इसी प्रकार दलित-विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी समाजों के साथ साथ हाशिए पर छूट गए विभिन्न ऐसे समुदायों को अभिव्यक्त करने और उनके मूल सरोकारों को व्यापक मान्यता दिलाने में सफलता पाई। यह कहना शायद थोड़ा जल्दबाजी हो पर कुछ हद तक इन हाशिए के समुदायों और इतिहास के भूले-बिसरे पात्रों को राजनैतिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व मिला या कम से कम यह तथ्य तो स्थापित हुआ ही कि एक परिपक्व लोकतंत्र में इन सभी अस्मिताओं को प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। साहित्य/इतिहास लेखन और राजनैतिक क्षेत्र के परस्पर सम्बन्धों में एक नई ऊष्मा भी देखने को बीती सदी में मिली है। हालाँकि राजनीति ने अपने निहितार्थ ही इन संबंधों में तलाश किए हैं और उन्हें ही तरजीह दी है।

इक्कीसवीं सदी निश्चित ही बीती सदी का एक रेखीय विस्तार है। इसकी तारतम्यता में कोई आमूलकारी परिवर्तन नहीं हुआ। इतना जरूर है कि पूँजीवाद का नया राजनैतिक चेहरा यानी नव उदारवाद अपनी पूरी तैयारी के साथ हमारे सामने है। वर्तमान सामाजार्थिक विश्लेषकों का एक तबका इन अस्मिताओं के उभार के पीछे इसी पूंजीवादी आर्थिक तंत्र और उसके नव-उदारवादी चरित्र को देखता है। इस पृष्ठभूमि में दीवान प्रतिपाल सिंह जी द्वारा लिखित १४०००० पृष्ठों के विवरणात्मक इतिहास ग्रन्थ 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' को पढ़ना कई तरह के सवाल (निश्चित ही कई समाधान) मुहैया कराता है।

भारतवर्ष या राष्ट्र-राज्य के रूप में 'इंडिया' के भौगोलिक पुनर्गठन की कवायदें जिस तेजी से बीसवीं सदी में हुई और आज भी जारी हैं, उसकी एक परिणति सन् २००० में तीन पृथक राज्यों झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड के निर्माण में हुई और तेलंगाना, विदर्भ, पूर्वांचल और बुंदेलखण्ड की मांग राजनैतिक हलकों में जोर पकड़ रही है। इन छोटे राज्यों के पुनर्गठन की मांग के पीछे प्रायः विकास के मुद्दे के साथ-साथ सामाजिक व सांस्कृतिक अस्मिताओं के तर्क भी जोड़े जाते हैं और निश्चित रूप से इनका भी उतना ही बड़ा दाय इन मांगों को ठोस आधार प्रदान करने में होता है। इस तरह हम देखते हैं कि भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता का मूल सूत्र 'अनेकता में एकता' इन मांगों का कोई अनुकूल जवाब नहीं दे पाता। ऐसे ही सवालों का समुचित समाधान इस विशद ग्रन्थ में प्राप्त होता है। विशाल भारत की इस अखण्डता का मूल स्रोत इसकी विविधता है। इसमें कोई संदेह नहीं, प्रायः गैर-भारतीय पर्यटकों को इस बात पर आश्चर्य होता है कि भारत २८ राज्यों का एक संयुक्त देश नहीं बल्कि २८ देशों का एक विश्व है, यानी इतनी सांस्कृतिक विशिष्टता, हर राज्य की अपनी अद्वितीयता है, और ये तब भी बहुत हद तक बरकरार है जबकि भूमंडलीकरण सभी को एक बनाने के प्रति कृत संकल्पित है, भारत की वर्तमान राजनीति भी इसी तरह का भारत देखना चाहती है जिसमें एक ओर 'एक जैसापन' हो, फिर भी विविधता बनी हुई है।

सांस्कृतिक विशिष्टता और भौगोलिक अवस्थिति के बीच सीधा सम्बंध देखा जाता है और इसी लिहाज से भारत में इतनी विविधता है क्योंकि यहाँ का भौगोलिक पार्श्व में हर तरह की जलवायु और मौसम व्याप्त है। लेकिन कुछ मसले ऐसे हैं जो लगभग सभी स्थानों पर व्याप्त हैं और जिनसे देश का एक विशिष्ट लक्षण पैदा होता है। मसलन जाति-व्यवस्था, स्त्री का दर्जा, सामाजिक सोपानीकरण, संसाधनों पर कब्जा आदि। दीवान प्रतिपाल सिंह जी 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' में इस भौगोलिक क्षेत्र की सभी महत्वपूर्ण विशेषताओं का महीन विवरण प्रस्तुत किया है, जो कि अपने आप में एक दुसाध्य कार्य है। किसी भौगोलिक क्षेत्र को सीमाबद्ध करना और उसमें एक सातत्य देखते हुए किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना कई तरह के खतरे भी पैदा करता है और प्रायः इतिहास लेखक इसके लिए किसी विचारधारात्मक कसौटी का सहारा लेकर इन विस्तृत विवरणों से अपने निश्चित/बद्ध नजरिए के अनुसार सामग्री का चयन करते हैं। दीवान प्रतिपाल सिंह द्वारा लिखित इतिहास इस मायने में भिन्न हैं क्योंकि यहाँ इतिहास को अपनी विवेच्य विचारधारा की पुष्टि के लिए कच्चे माल की तरह इस्तेमाल नहीं किया गया बल्कि उसमें सभी कुछ को पूरी इयता के साथ शामिल किया गया है, जैसा कि उन्होंने इसके पहले खंड की भूमिका में स्पष्ट किया है - ''अपने प्यारे वीर-देश बुन्देलखण्ड के वास्तविक इतिहास का अभाव देखकर हमारे मन में १८९८ ई. में ही उसके लिखने की इच्छा हुई थी।''

लेखक ने आद्योपांत कहीं भी इस संकल्प को नहीं तोड़ा, इतने महीन विवरण इस पुस्तक में हैं कि कोई भी पाठक महज इस किताब को पढ़कर इसे इतिहास का ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि अन्य इतिहासों की तरह यह नीरस नहीं है जैसा कि इतिहास की पुस्तकों के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की आम राय होती है। यह महज घटनाओं का इतिहास नहीं है, जैसा कि प्रायः माना जाता है कि इतिहास युद्धों और राजा-महाराजाओं का होता है और आम जन

उसमें से नदारद रहता है दरअसल इतिहास का मूल स्रोत और इसका आधार होता है। दीवान साहब की यह संकल्पना कि वो अपने प्यारे देश का 'वास्तविक इतिहास' ही लिखना चाहते हैं इतिहास लेखन की परिपाटी से उन्हें अलगाती है और पुस्तक को भिन्न कलेवर प्रदान करती है। यही कारण है कि इसी पुस्तक में दो भिन्न-भिन्न विवरण पाठकों को एक आम राय बनाने का मौका नहीं देते। उदाहरण के लिए अगर हम जाति-विषयक उनके विवरणों को देखें। एक अवसर पर वह समाज के सोपानीकरण को बहुत ही संरक्षणवादी नजरिए से व्याख्यायित करते हैं कि फलानी जाति, उससे छोटी है या उससे बड़ी है, इसका यह पेशा है उसका यह वगैरह, और इसी सोपानीकरण को ज्यों का त्यों आदिवासी समुदायों पर भी लागू करते हैं, मसलन सौंर आदिवासी, गौंड़ों से छोटे होते हैं या कोल किसी से बड़े। यह विवरण वर्ण-व्यवस्था से बाहर रहे आये आदिवासी समुदायों पर लागू करना उचित नहीं है। पर वर्ण-व्यवस्था की मजबूत व्याप्ति का अंदाजा इससे जरूर होता है आखिर इसके प्रभाव से तो इस्लाम और ईसाइयत भी भारत में नहीं बची, खैर, दूसरी तरफ जब छोटी-छोटी रियासतों के विवरण दीवान साहब ने दिए हैं तब उनमें गैर-क्षत्रियों के राज्यों की भी सूची बिना किसी पक्षपात के दी है। इससे जाति-व्यवस्था पर निष्कर्ष निकालने की पूरी छूट पाठक पर छोड़ते हुए दीवान जी ने इतिहास को शुद्ध ब्यौरों को विषय बना दिया है।

इतिहास को इतना आसान और पारदर्शी बना पाना पुस्तक की उपादेयता है। इस महत्वपूर्ण समय में इस विशद ग्रन्थ का प्रकाशन स्वागतयोग्य है, क्योंकि यह किताब केवल ऐतिहासिक विवरणों का संग्रह नहीं है बल्कि इसमें बुन्देलखण्ड के लोगों की 'स्थानीय ज्ञान व्यवस्था' की भी महीन से महीन जानकारियाँ हैं। केवल सिंचाई के तरीकों को ही ले लें तो इस किताब में इतने विविध और जलवायु के अनुकूल सिंचाई के विवरण मिल जायेंगे और मात्र इन्हीं तरीकों को समझकर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस जमाने में 'सस्टेनेबल' शब्द पर इतना जोर क्यों नहीं था।

बहरहाल, पुस्तक बहुत रोचक है, पठनीय है और प्रूफ की गलतियाँ न के बराबर हैं, संपादक श्री बहादुर सिंह परमार जी ने पूरी सतर्कता से इस थाती को आने वाली पीढ़ियों के लिए सहेजने का सफल और सार्थक प्रयत्न किया है। निःसन्देह लेखक की अपनी वैचारिक सीमाएं हैं जो इक्कीसवीं सदी के बहुत सारी विचार सारणियों पर खरे नहीं उतरेंगे पर मुझे लगता है कि इस दस्तावेजीकरण का यह वह पक्ष है जिसके बिना इसने शुद्ध इतिहास की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

पुस्तक का नाम - बुंदेलखण्ड का इतिहास
लेखक - दीवान प्रतिपाल सिंह
प्रकाशक - पृथ्वी सिंह बुन्देला
सम्पादक - डॉ. बहादुर सिंह परमार

- ग्राम पोस्ट देरी, वाया पलेरा जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

राष्ट्रकवि भूषण और छत्रसाल

- डॉ. जगदीश प्रसाद रावत

बुंदेलखण्ड की वीरभूमि में सदैव साहित्य, कला और संस्कृति के सम्मान की समृद्धशाली परम्परा रही है। यही कारण है कि छत्रसाल जैसा राजा महाकवि भूषण की पालकी को कन्धा लगाकर साहित्य को राजनीति और राज-काज से सर्वोपरि होने का प्रमाण देता है। शायद इस तरह की यह घटना विश्व इतिहास में प्रथम हो। जब राजा नीचे और राजकवि उसके कन्धों पर सवार होकर सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी बना हो। ऐसा उल्लेख तो रामचरित मानस में एक बार आया है - "प्रभु तरु पर कपि डार पर, ते किए आप समान-तुलसी कहूं न राम से, साहिब शील निधान।"

यहाँ बुन्देलखण्ड केशरी महाराजा छत्रसाल साहिब और शील निधान की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। जो भूषण को छत्रसाल सर्वोपरि मानकर काव्य कला शिल्पी को अपने सिर-आँखों बैठाकर मान-सम्मान दे रहे हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय भूषण की कविता ने आजादी प्राप्ति के प्रयत्नों के बीज बोए। जिसे सन् १८५७ के पूर्व की क्रान्ति की संज्ञा दी जा सकती है। भूषण ने मुगलों से देश आजादी का सपना देगा, तो १८५७ में अंग्रेजों से दासता से मुक्ति का शंखनाद स्वतंत्रता के प्रथम महासमर में फूँका गया।

राजाश्रय से पूर्व भूषण ने जनता के लिए देश की अस्मिताके लिए लिखा। राजाश्रय का उनका लेखन भी देश के स्वाभिमान एवं विदेशी क्रूर आक्रान्ताओं के विरुद्ध ही रहा। यह काव्य कला के प्रति प्राणपण से ईमानदार थे। उनकी कथनी-करनी में कोई अन्तर नहीं था। इस परिप्रेक्ष्य में भूषण महाकवि और राष्ट्रकवि की श्रेणी में सुमार किए जाते हैं। भूषण के काव्य में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं है, भले ही उनके जीवन वृत्त और जन्मतिथियों को लेकर विवाद हो, उनकी कृतियों को लेकर विद्वानों में परस्पर मतभेद हो।

भूषण रीवा, बूँदी, अलीगढ़, चित्रकूट, जयपुर और पन्ना आदि तेरह राजाओं के पास देश की एकता अखण्डता के खातिर घूमे। इस प्रकार उन्होंने कवि कर्म के साथ एकता के सूत्रधार और श्रेष्ठ राष्ट्रीय समन्वयक की भूमिका का भी निर्वाह किया। वह समय बेचैन थे जब हर राजा की रियासत उसका अपना देश समझी जाती थी। जब अन्य कवि राजाश्रय पाकर सुरा-सुन्दरी की बातें कर रहे थे, तब भूषण की कलम राष्ट्रवाद का ओज उगल रही थी। इसे अगर राष्ट्रकवि नहीं कहेंगे तो फिर किसे कहें। सच्चे मायने में भूषण देश के पहले राष्ट्रकवि थे।

भूषण जब चित्रकूट के रुद्रशाह के राज्याश्रय में पहुँचे तो वे घनश्याम से भूषण कहलाये। लेकिन उनका तन, मन और काव्य आभूषण देशप्रेम और राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक समरसता से ओतप्रोत था। यह उनका देशप्रेम और आत्मबल ही था जो उन्हें औरंगजेब के दरबार में टीस के विरुद्ध कविता पाठ को उत्प्रेरित करता रहा।

- थाने के पास ओरछा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)

पन्द्रहवें "बुन्देली उत्सव-2011"

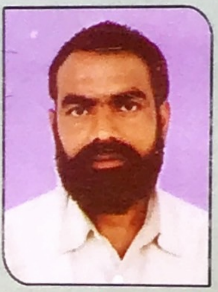
में पर्यटक ग्राम बसारी (बुंदेलखंड) में पधारे अतिथियों एवं कलाकारों का हम हार्दिक अभिनंदन करते हैं

योजनाएं :

1. पात्र हितग्राहियों को वृद्धावस्था पेंशन का लाभ दिलाना।
2. रोजगार गारंटी योजना के तहत हर हाथ को 100 दिन के काम की गारंटी।
3. समग्र स्वच्छता अभियान के तहत शौचालयों का निर्माण करवाना ।
4. भू–जल संवर्धन के लिए वृक्षारोपण करवाना।
5. कपिल धारा योजना के तहत कूपों का निर्माण करवाना।
6. शासन की मंशानुरूप गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों को योजनाओं का लाभ दिलाना।

अपील -

1. जन्म-मृत्यु का पंजीयन अवश्य कराएं।
2. नगर को साफ स्वच्छ और हरा भरा बनाएं रखने में मदद करें.
3. पानी अमूल्य है कृपया इसे बर्वाद न करें।
4. बच्चों को नियमित स्कूल भेजें ।



ओमशरण पटेल (हल्के भैया)
उपाध्यक्ष

बी.के. सिंह
सीईओ



सिद्धार्थ शंकर बुन्देला
अध्यक्ष

सौजन्य से -

जनपद पंचायत राजनगर

जिला - छतरपुर (म.प्र.)